जैन सिद्धान्त भास्कर

जैन-सिद्धान्त भवन आराका

ऐतिहासिक मुखपत्र

सम्पादक और प्रकाशक

पदमराज रानीवाला

मूल्य ३ रु. एक प्रतिका १ रु.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लेख-सूची.

		पृष्ठ
१	प्रार्थना-चतुष्टय [ले. पण्डित हरनाथ द्विवेदी]	१
२	महाराज चन्द्रगुप्तका इतिहास [ले. सम्पादक]	२
३	चन्द्रगिरिका परिचय [ले. सम्पादक]	६५
४	दिगम्बरमतपर एक विदेशी विद्वान्की सम्मति [ले. अनुवादक सम्पादक]	२१
५	विक्रमादित्य सम्वत् [ले. श्रीयुत परेशचन्द्र बन्द्योपाध्याय एम. ए. सब जज आरा कोर्ट]	२७
६	सेनगणकी पट्टावली	३२
७	सेनगणकी पट्टावलीका भाषानुवाद [अनुवादक पं. हरनाथ द्विवेदी]	३४
८	पद्मपुराण	३९
९	पद्मपुराणकी प्रशस्ति और मंगलाचरणका आशयानुवाद [ले. अनुवादक पं. हरनाथ द्विवेदी]	४४
१०	भगवज्जिनसेनाचार्य्यका पाण्डित्य [ले. पं. हरनाथ द्विवेदी]	४९
११	हरिवंशपुराण	६६
१२	हरिवंशपुराणकी प्रशस्ति और मंगलाचरणका आशयानुवाद [अनुवादक पं. हरनाथ द्विवेदी]	७५
१३	शाका सम्वतकी उलझन [ले. सम्पादक]	८४
१४	सुभाषित [ले. पं. हरनाथ द्विवेदी]	१०
१५	भगवज्जिनसेनाचार्य्य और कविवर कालिदास [ले. सम्पादक]	१०
१६	भारतवर्षीय प्राचीन शिल्पकला [ले. सम्पादक]	११
१७	शास्त्रमहत्त्व [ले. पं. हरनाथ द्विवेदी]	११
१८	परिशिष्ट शिलालेख	११
१९	परिशिष्ट शिलालेखका भावानुवाद [अनुवादक पं. हरनाथ द्विवेदी]	१२
२०	सम्पादकीय टिप्पणी	१२
२१	पुस्तकपर्य्यवेक्षण [ले. सम्पादक]	१४
२२	धन्यवाद-धारा [ले. सम्पादक]	१५
२३	आवश्यक सूचना [ले. सम्पादक]	१५

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ऐतिहासिकपत्र ।

१] अक्टोबर से मार्चतक १९१३ आश्विन से फाल्गुन वीर नि० २४३९ [किरण २-३

प्रार्थना-चतुष्टय

सर्वज्ञ ! अज्ञताकी विषलतिका बढ़ती । भारतद्रुमपर यह फैल फैल कर चढती ॥
ढकती विद्याविनयादिगुणोंकी ज्योति।अवनतिसब उच्चविषयकी दिन दिनहोती॥
यह 'भास्कर' 'भवन' भुवनमें ज्योति जगावे।अज्ञान-लता मुरझाय ज्ञान दरसावे ॥
इतिवृत्त-कोशकी अँधियारी हटजावे । सद्वृत्त-कमल संसृति-सरमें खिल जावे ॥२॥
मत-भेद-कुमुदिनी मुद्रित हो सुखजावे । ईर्षा-उलूककी कभी नहीं बन आवे ।
हो चक्रवाक संयोगी ऐक्य सभीमें । धर्माभिमान सज्जनता शान्ति सभीमें ॥३॥
सर्वेश ! यही है विनय हमारी तुमसे। है छिपी नहीं कुछ बात जगतकी तुमसे ॥
करुणाकर!करुणावरुणालय! भारतमें । महिमा-मरीचि छावे शुभ हो भारतमें॥४॥

पण्डित हरनाथ द्विवेदी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अन्तिम श्रुतकेवली श्री१०८ भद्रबाहु स्वामी और उनके शिष्य मगधाधिपति महाराज चन्द्रगुप्तका इतिहास.

(२)

रे पठको ! यद्यपि हम " भास्कर " की गत किरणमें श्री १० भद्रबाहु स्वामी और मगधाधिपति महाराज चन्द्रगुप्तके समय तथा उनके जीवनचरित्र लिखनेकी प्रतिज्ञा कर आये हैं, तो हम आप लोगोंका अमूल्य समय विशेष कारण-वश चन्द्रगुप्त जैन होनेका प्रमाण, इसपर अनेक विद्वानोंकी सम्मति, गत किरणमें प्रकाशित शिलालेख नं. १ में भद्रबाहुस्वामीके शिष्य-रूपसे जिस प्रभाचन्द्रका वर्णन हो चुका वे प्रभाचन्द्र यही चन्द्रगुप्त थे, ग्रीक इतिहास-लेखकोंके मान्य सन्ड्रकोटस, मेगस्थनिजद्वारा वर्णित जन्ड्रमस ऐन्ड्रकोटस, मुद्राराक्षसके प्रधान नायक, मसिडोनिय अलेकजेन्डरके करालग्राससे भारतवर्षके मुख्य उद्धारकर्त्ता, अलेकजेन्डरके सेनापतिः पूर्णरूपसे परास्त कर उसके अधीनस्थ अनेक प्रदेशोंको भेंटस्वरूपसे लेनेवाले, भारत इतिहासके प्रथम वीर, श्री १०८ भद्रबाहुस्वामीके मुख्य शिष्य और गत किरण शिलालेख नं. १ में वर्णित प्रभाचन्द्र यही चन्द्रगुप्त थे; इसका प्रमाण वर्त्तमान इतिहासकी मुख्य आधारभूत सामग्री प्राचीन शिलालेख, पुरातत्त्ववेत्ता इतिहासलेखकोंकी सम्मतिद्वारा आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित कर सदुपयुक्त करना चाहते हैं। वर्तमान समयमें पाश्चात्य विद्वानोंने भारतवर्षका गौरव-शाली प्राचीन इतिहास मुख्य तया शिलालेख और ताम्रपत्रादिकों ही पर निर्भर कियाहै। अपने पास ऋषि-प्रणीत शास्त्रीय और पौराणिक अनेक प्रमाण रहते भी उपर्युक्त पद्धति-द्वारा ही चन्द्रगुप्तके जैन होनेका प्रमाण पाठकोंके सामने हमे प्रमाणित करना है।

वर्तमान समय तक इतिहास-लेखकोंने जितने भारतीय वीर, राजा महाराजा और भारतविजेताओंके समय निश्चित कियेहैं, उनसबोंमें प्राचीनतम निर्णीत समय अलेकजेन्डर (सिकंदर) का और इसके उद्दण्ड भुजदण्डसे विलोड़ित भारतवर्षका उद्धार करनेवाले महाराज चन्द्रगुप्तका ही है। आजपर्यन्त हमारी न्यायप्रिय गवर्नमेन्टने तथा इतिहास पुरातत्ववेत्ताओंने जितने सर्व-प्राचीन शिलालेख एकत्रित किये हैं, उनसबोंमें भी प्राचीनतम स्थानका सौभाग्य महाराज चन्द्रगुप्तके " भास्कर " की गत किरणमें

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चन्द्रगिरि पर्वतकी शिलालेख नं० २

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

प्रकाशित शिलालेखको ही है । हम यह भी यहाँ कहदेना अनुचित नहीं समझते कि महाराज चन्द्रगुप्तके जैन होनेके कारण **भारतवर्षके प्रथम उद्धारका यश जैनियोंको ही प्राप्त है** ।

गत किरणमें शिला-लेख नं. १ में श्री १०८ भद्रबाहु स्वामीके साथ साथ आचार्य **प्रभाचन्द्र** के कटवप्रनामक पर्वतपर ठहरनेका जो हमने उल्लेख किया था उसपर हमारे कई जैन तथा अजैन मित्रोंने चन्द्रगुप्तके जैन होने तथा प्रभाचन्द्रके चन्द्रगुप्त होनेमें शङ्का उपस्थित की है। हमारी तो इच्छा थी कि अपने जैनी भाइयोंकी शंका जैन शास्त्रों तथा पुराणोंहीसे दूर करें किन्तु हमें अजैन मित्रोंके भी चन्द्रगुप्त-विषयक सन्देहको निरसन करना है। इसलिये सर्वमान्य शिलालेखादि ऐतिहासिक प्रमाण ही द्वारा हम अपने सभी मित्रोंकी सन्देह-राशि दूर करना उचित समझते हैं। प्रथम शिलालेख-द्वारा यह बात तो स्पष्ट हो ही चुकी है कि कटवप्रपर्वतपर जब भद्रबाहुस्वामीने समाधिमरण किया (स्वर्ग-धामको प्रयाण किया) तो उस समय उनके साथ एक शिष्य था और उस शिष्यका नाम **प्रभाचन्द्र** था[1]॥

अब विचारणीय विषय यह है कि भद्रबाहुस्वामीके साथ जो शिष्य थे, वह वास्तवमें कौन थे। सुविज्ञ पाठको! आइये इस विषयके प्रसिद्ध प्रमाणकी खोजके लिये हम आपसबोंको मैसोर राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोल गाँवके चद्रगिरि पर्वतकी ओर परिभ्रमण करावें और कर्नाटकके दो महाकवियोंके कर्नाटक साहित्यकी अपूर्व छटाके दर्शनके साथ साथ चन्द्रगुप्तविषयक-शङ्का-समूह निरसन करावें। विज्ञ पाठकोंसे हमारा सानुनय अनुरोध है कि वे निम्नोद्धृत शिलालेखोंका मनोयोग-पूर्वक पर्यालोचन करें.

शिलालेख नं २. कनडी भाषाकी

नागराक्षरमें प्रतिलिपि

श्री **भद्रबाहु सचन्द्रगुप्त** मुनीन्द्र युग्मादी नोप्पोवल भद्रभाग इदाधर्म्मअन्दुवलि केवन्द इनिपलकुलो....विद्रुमधरे शान्तिसेनमुनीशनाक्कि एचेलगो.....राआद्रि मेल अशनादि विट्टूपुनर्भवकिर.....गी ।

भावार्थ—

शान्तिसेनकी धर्मपत्नी यह कहती हुई पहाड़पर चली गयीं कि **श्रीभद्रबाहु** तथा महामुनि **चन्द्रगुप्त**के अनुकूल चलना ही परम सद्धर्म है। बल्कि वह भोजनादि छोड़कर अनेक परिसहोंको सहन कर मुक्ति पदको प्राप्त हुई।

१—भास्करकी प्रथम किरणका १५ वाँ पृष्ठ देखो ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शिलालेख नं. ३

....

श्री भद्रस्सर्वतोयोहि भद्रबाहुरितिश्रुतः ।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरमः परमो मुनिः ॥
चन्द्रप्रकाशोज्ज्वल-सान्द्रकीर्त्तिः
श्रीचन्द्रगुप्तोऽजनि तस्य शिष्यः ।
यस्य प्रभावाद्वनदेवताभि-
राराधितः स्वस्य गणो मुनीनाम् ॥

....

भावार्थ—चारोतरफ भद्र यानि कल्याणकी परिवृद्धि होनेसे इनका नाम **भद्रबाहु** पड़ा। यह श्रुतकेवलियोंमें अन्तिम मुनि हुए। चन्द्रमाकीसी उज्वलकीर्त्तिवाले चन्द्रगुप्त नामके इनके शिष्य हुए कि जिनके प्रभावसे वनदेवताओंने मुनि-संघोंकी आराधना की।

शिलालेख नं. ४

वर्ण्यः कथन्नु महिमा भण भद्रबाहोः
मोहोरुमल्लमदमर्दन-वृत्तबाहोः ।
यच्छिष्यताप्तसुकृतेन च चन्द्रगुप्तः
शुश्रूषतेस्म सुचिरं वनदेवताभिः ॥

भावार्थ—भला कहो तो मोहरूपी बड़ेभारी मल्लके मदको मर्दन करनेवाले भद्रबाहु-स्वामीकी महिमा कौन नहीं वर्णित करसकता है। इन्हीके शिष्य होनेके पुण्यसे वन-देवताओंने चन्द्रगुप्तकी शुश्रूषा की।

शिलालेख नं. ५

तदन्वये शुद्धमतिप्रतीते समग्रशीलामलरत्नजाले ।
अभूद्यतीन्द्रो भुवि भद्रबाहुः पयः पयोधाविव पूर्णचन्द्रः ॥
भद्रबाहुराग्रिमस्समग्रबुद्धिसम्पदा शुद्धसिद्धशासनः सुशब्दवन्धसुन्दरम् ।
ईद्धवृत्तिशुद्धिरत्र वद्धकर्मभित्तपोऋद्धिवर्द्धितप्रकीर्तिरुद्धधीर्महार्द्धिकः ॥
यो भद्रबाहुः श्रुतकेवलीनां मुनीश्वराणामिहपश्चिमोऽपि ।

१—पूर्ण शिला-लेख परिशिष्ट भागमें देखो।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिंगरी गौड़ाके खेतका शिलालेख नं० ३

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

अपश्चिमोऽभूद्विदुषां विनेता, सर्वश्रुतार्थप्रतिपादनेन ॥
यदीय शिष्योऽजनि चन्द्रगुप्तस्समग्रशीलानतदेववृद्धः ।
विवेश यत्तीव्रतपःप्रभावात्प्रभूतकीर्तिर्भुवनान्तराणि ॥

भावार्थ—१ जिसमें सभी शीलरूपी रत्न-समूह भरे हुए हैं और शुद्ध बुद्धिसे परिपूर्ण उस वंशमें क्षीरसमुद्रसे परिपूर्ण चन्द्रमाकेसे **श्रीभद्रबाहु** स्वामी हुए।

२—अखिल बुद्धिशालियोंमें **भद्रबाहुस्वामी** अग्रगण्य थे। शुद्ध—सिद्धैः शासन और सुन्दर प्रबन्धसे शोभा-पूर्वक बढ़ी हुई है व्रतकी सिद्धि जिनकी और बद्ध कर्म्मको छेदन करनेवाले तपसे भरी हुई है कीर्ति जिसकी ऐसे महान् मतिमान् महर्द्धि-शाली **श्रीभद्रबाहुस्वामी** थे। जो भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवलियोंमें अन्तिम थे तौभी बिल्कुल शास्त्रके प्रतिपादयिता होनेसे विद्वद्वरोंमें श्रेष्ठ थे। आपके शिष्य **चन्द्रगुप्तने** अपने शीलसे बड़े बड़े देवताओंको भी नम्रीभूत करदिया है। इनकी तपश्चर्याके प्रभावसे आज तक इनकी कीर्तियां भुवनान्तरमें व्याप्त हो रही हैं

इन उपर्युक्त चार और गत किरणमें प्रकशित एक शिलालेख (पांच शिलालेखों) से इस प्रश्नका उत्तर तो उचित रीतिसे होजाता है कि **भद्रबाहुस्वामीके** साथ रहने वाले शिष्य महाराज **चन्द्रगुप्त** ही थे। चन्द्रगुप्तका जैन होना तो इससे स्वयं सिद्ध होही जाता है।

अब हम पाठकोंके हृदयमें यह प्रश्न—कि, ये सब शिला-लेख चन्द्रगिरि पर्वतपर ही क्यों मिलते हैं?—उपस्थित होनेके पूर्वही इनके अतिरिक्त गौतमक्षेत्रके अपरभागवाहिनी कावेरी नदीके पश्चिमभागमें जो रामपुर नामक ग्राम है, उसी ग्रामके अधिपति सिंगरी गौड़ाके खेतमें प्राप्त दो शिलालेख यहां उद्धृत किये देते हैं।

शिलालेख नं. ६

श्री राज्यविजय सम्बत्सर सत्यवाक्य परमानदि गलु आलुत्त नाल्किनेय वर्षात् मार्ग-शीर मासद पेरतले दिवास भागे स्वस्ति समस्त बिद्यालक्ष्मी प्रधाननिवास प्रभव—प्रणत सकल सामन्त--समूह **भद्रबाहु चन्द्रगुप्त** मुनिपति चरणलाञ्छनाञ्चित बिशाल सिरकल वप्पु गिरिसनाथ वेलगुलाधिपति गणधा श्रीवर मतिसागर पण्डित भट्टार वेसदोल अन्नयनुं देवकुमारनुं धोरनुं इलदुर आरण्णे वाणपल्लिय कोण्ड श्रीके सिग..... तले नेरिपुल कट्टन कट्टु सुडरके कोट्टस्थिति क्रमवएन्तुव यन्दोदे बंडर नियनीर वयगिय गिड़ वरिस पेत्तोन्दि ऐरेदनेय वरिसमेड़ अलविमुरने यवरिस दन्दिगे यडलवीयेलाकलाकं यल्लं इल्द युललु सलगु।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भावार्थ—सम्पूर्ण लक्ष्मी सरस्वतीका निवासस्थान बेलगोलाधिपति और समस्त सामन्तोंद्वारा नमस्कृत श्रीमान् **भद्रबाहु** और **चन्द्रगुप्त** महामुनियोंके चरणोंसे मण्डित कटवप्रनामक पर्वत सदा विजयशील रहे।

सत्यवाक्य परमानदी महाराजके राज्यके चौथे वर्षमें मार्गशीर्ष शुक्लाष्टमीको श्रीमति-सागर पण्डित भट्टारककी आज्ञानुसार अन्नय्या, देवकुमार और घोरा इन तीनोंने बेनपल्लीके खरीददार केशाके लिये तेल्लुरमें सेतु–निर्म्माणके बदलमें निम्न–लिखित दान दिया, है:—

सम्पूर्ण ग्रामवासियोंनें खेतीके लिये इस सेतुसे जलाहरणका प्रयोग किया। प्रथमवर्षमें बिना कुछ दिये ही जलका उपयोग करना, द्वितीयवर्षमें कुछ देकर उपयोग करना और तृतीयवर्षमें जो कुछ दियाजायगा वही निश्चितरूपसे निर्द्धारित कर समझा जाय।

शिला–लेख नं. ७

शिलालेख लिखनेका समय नवम शताब्दि।

भद्रमस्तु जिनशासनाय। अनवरत.....अखिल सुरासुर नरपति मौलिमाला.... चरणारबिन्द युगल सकल श्रीराज्य युवराज्य **भद्रबाहु चन्द्रगुप्त** मुनिपतिचरण मुद्र-णाङ्कित विशाल..... मान जगल ललामायित श्री कलवप्पु तीर्थसनाथ वेलगुल-निवासि....श्रव (म) णसंघ स्याद्वादाधारभूतरप्पा श्रीमत्स्वस्ति सत्यवाक्योङ्गुणि वर्म्मा धर्म्म महाराजाधिराज कुबलाल पुरवरेश्वर नन्दि गिरिनाथ स्वातिसमस्तभुवनविनुत-गङ्गकुलगगनर्निमलतारापतिजलधिजलविपुलविलयमेखलाकलापालङ्कृतैलाधिपत्य लक्ष्मीस्वय-म्वृतपतितवद्य अगणितगुणगणभूषणभूषितविभूति श्रीमत्परमानदि गडु येरेयप्पसरं इल्डुचगि परमनदि गल कलावसाद आय्यरप्पा परपिङ्गे कुमारसेन भट्टारकपदे स्थिति-विलय अक्कियं सोल्लगेयु विट्टिउनट्टपरमन यल्लाकलकम् सर्वबाधा परिहरं आगे विदिसिदार इदन लिड़ अड़ोनं कोंडन पशुवं परवरं केरेयं अर्मेयं बर्नासियुनं अलिडं पञ्चमहापातकं।

देवस्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते।
विषमेकाकिनं हन्ति देवस्वं पुत्रपौत्रकं॥

उल्लिखित शिला-लेख क्यातन हल्ली ग्रामके दक्षिणभागमें जो वस्ती है वहीं है।

भावार्थ—सम्पूर्ण देव राक्षस तथा राजा लोगोंके मस्तक नत होनेसे मुकुटमणिकी चमकसे प्रकाशमय चरणकमलवाले श्रीमान् **भद्रबाहु** स्वामीको नमस्कार करो।

नोट—१ एपिग्राफिका कर्नाटिकाकी दूसरी जिल्द (वाल्युम २) का १४८ वां शिलालेख देखो।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिंगरी गौड़ाके खेतका शिलालेख नं० ७

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मोक्षराज्यके युवराज, स्याद्वाद-संरक्षक, वेलगोलेस्थश्रमणसंघाधिपति अपने चरणकमलसे जगद्भूषण कटवप्र (कलवप्पू) नामक पर्वतको पवित्र करनेवाले श्रीमान् **भद्रवाहु** और **चन्द्रगुप्त** मुनि हमारा संरक्षण करें। गङ्गराजकुलाकाशके निष्कलङ्क-चन्द्रमा और कुवलयपुर तथा नन्दिगिरिके स्वामी **श्रीसत्यवाकोङ्गुणि वर्म्मा** धर्म्म-महाराजाधिराजकी स्तुति सभी संसारने कीहै। समुद्र-मेखलासे परिवेष्टित तथा पृथ्वीके स्वयम्बरित पति सकलगुणालङ्कृत श्रीपरमानदिएरेयप्पसरप्पाने जिनेन्द्रभवनके लिये श्रीमान् कुमारसेन भट्टारकको निम्नलिखित दान दिया है: —

एक ग्राम-स्वच्छ चावल-बेगार-घी इन दानकी सामग्रियोंके अपहरण करनेवालों को हिंसा और पंच महापापका पातक लगेगा।

केवल विषही विष नहीं कहलाता किन्तु देवधनको भी घोर विष समझना चाहिये। क्योंकि विष एकको मारता है पर देवद्रव्य विष सपरिवार समूल विनष्ट करता है।

अब इन शिला-लेखोंद्वारा निश्चित किये हुए **भद्रवाहु** स्वामीके साथमें रहनेवाले शिष्य **चन्द्रगुप्त** ही थे इसमें कोई सन्देह नहीं रहता। क्योंकि गत किरणके शिला-लेख नं. १ में यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि जब **भद्रवाहु** स्वामीको अपनी मृत्युकी निकटता जानपड़ी तो उन्होंने **प्रभाचन्द्र** (चन्द्रगुप्त) को अपने साथ में रखकर अन्य संघको चोलपाण्डदेशमें भेजदिया। अन्य शिलालेखोंमें **भद्रवाहु** स्वामीके शिष्य **महामुनि चन्द्रगुप्त** ऐसा उल्लेख मिलता है इसलिये सिद्ध होता है कि प्रथम शिला-लेख के **प्रभाचन्द्र** और अन्य शिला-लेखोंमें उल्लिखित **चन्द्रगुप्त** दोनों एकही थे। दूसरी बात यह है कि भारतवर्षकी प्रचलित प्रथाके अनुसार व्यावहारिक नाम दीक्षा लेनेपर परिवर्तित हो जाते हैं और वे पारमार्थिक नाम कहे जाते हैं। यहां पाठकोंको केवल यह प्रथा स्मरण करादी है। इसके उदाहरण असंख्य हैं। यहां उनसे इस पृष्ठ का भरना हम कोई महत्वकी बात नहीं समझते। हमारे चरित्रनायक महाराज **चन्द्रगुप्त**का भी दीक्षित नाम **प्रभाचन्द्र** पड़गया था जो प्रथम शिला-लेखमें है तीसरी बात यह है कि प्रथम शिला-लेखके बादके जो पूर्वलिखित शिला-लेखोंमे **चन्द्रगुप्त** यह नाम आया है उसका कारण यह है कि महाराज **चन्द्रगुप्त** अपने समयके एक सर्व-प्रसिद्ध राजा होगये. हैं। इन का नाम **चन्द्रगुप्त** ही सब जगह प्रचलित था। दीक्षाके नाम **प्रभाचन्द्र** का उतना प्रसार नहीं था। इसलिये पीछेसे लोगोंने इनका चन्द्रगुप्त ही नामसे उल्लेख किया है। चौथी बात यह कि दूसरे शिलालेखमें **मुनीन्द्र चन्द्रगुप्त**, तीसरे शिला-लेखमें **चन्द्रप्रकाशोज्ज्वलसान्द्रकीर्त्ति**

१—हिंसा करना झूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना, और विशेष परिग्रह करना पंचमहापाप है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चन्द्रगुप्त और कावेरी शिलालेखमें **मुनिपति चन्द्रगुप्त** ऐसे उल्लेख मिलते हैं। इस लिये यह निश्चय होता है कि शिला-लेखोमें जिस **चंद्रगुप्त** का नाम आया है वह एक बड़े प्रभाव-शाली मनुष्य थे । उल्लिखित शिलालेखोंमें लिखित **मुनीन्द्र** आदि गौरव-सूचक विशेषण इनके महत्वका सूचन कर रहे हैं। इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि **चन्द्रगुप्त** नामक किसी बड़े प्रभावशाली मनुष्यने ही **कटवप्र** नामक पर्वतपर रहकर **भद्रबाहु** स्वामीकी निरन्तर चरण-सेवा कीथी। वह **चन्द्रगुप्त** के सिवा दूसरा *होही नहीं सकता। क्योंकि जैनग्रन्थ और* जैन-पट्टावलियोंके द्वारा जिस समय भद्रबाहु स्वामीका अस्तित्व माना गया है वह समय मौर्य्यवंशीय महाराज चन्द्र-गुप्तके समयसे बडी अभिन्नता-पूर्वक मिलता है । अर्थात् मौर्य महाराज चन्द्रगुप्त और भद्रबाहु स्वामीकी समकालिकतामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता ।

इन उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा हम पाठकोंके सम्मुख प्रकटित कर चुके कि **भद्रबाहु** स्वामीके साथ जो **प्रभाचन्द्र** थे वह **चन्द्रगुप्त ही** थे, **चन्द्रगुप्त** निस्सन्देह **जैन** थे और यह **भद्रबाहु** स्वामीके समसामयिक शिष्य थे। किन्तु अब इसके विषयमें निरपेक्ष इतिहासमर्मज्ञ विद्वानोंकी क्या राय है ? वह मैं नीचे निवेदन किये देता हूं ।

१—जब अलेकजेन्डर (सिकंदर) के भूतपूर्व सेनाध्यक्ष और ग्रीकसेनाधिपति सल्यूकसने मेगस्थनिज (Magasthenes) को प्रधान दूत वा राजकीय प्राड्विपाक (वकील) रूपसे भारतवर्षमें महाराज चन्द्रगुप्तकी सभामें भेजाथा तब महाराज **चन्द्रगुप्त** के राज्यशासनकी बहुतसी बातें जानकर अपने इतिहासमें उसका बड़ा विस्तृत वर्णन कियाहै । उस वर्णनमें जहां भारतवर्षीय ऋषियोंका उल्लेख कियाहै वहां श्रमणोंका भी वर्णन आयाहै। दूसरी जगह जहां उन्होंने भारतीय दार्शनिकों (Philosophers) की चर्चा कीहै वहा श्रमणों(जैनमुनि) काभी उल्लेख किया है। उनका कथन है कि ये श्रमण, ब्राम्हणों तथा बौद्धोंसे भिन्न थे। इनका घनिष्ट संबन्ध महाराज चंद्रगुप्तसे था। वे अपने राजनीतिक विषयमें जहां तहां दूतोंको भेजकर उन श्रमणोंकी सम्मति लिया करते थे। वे स्वयं अथवा दूतों-द्वारा बड़ी विनय और भक्तिके साथ उन श्रमणोंकी पूजा किया करते थे। उन्हें बड़े महार्द्धिशाली जानकर महाराज चंद्रगुप्त सदा उनके कृपाभिलाषी रहा करते थे और उन्हें बड़ी पूज्य दृष्टिसे सम्मानित कर प्रायः देवताओंकी पूजा और आराधना उन्हींसे कराया करते थे[1]।

२—जब सिकंदरने भारतवर्षपर आक्रमण कियाथा, उससमय उनको अनेक साधु और जैनाचार्योंका साक्षात्कार हुआ था। कहा जाता है कि सूर्यकी प्रखर धूपमें खड़े हुए दिगंबर (नग्न) साधुओंसे आलेकजन्डरनें पूछा कि आप लोग क्या चाहते है; उन्होंने

१ नोट देखो—(Magasthenes Indica by Mac Crindle)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उत्तर दिया कि, आप अपने साथियोंके साथ कहीं छायाका आश्रय लें। बस हमको यही चाहिये।

हम समझते हैं कि, दयादाक्षिण्यादि गुणयुक्त साधुओंने उन्हे सूर्यके तापके असहिष्णु समझकर शीतल प्रदेशके उपभोगका उपदेश दिया होगा। और इससे यहभी निश्चित होता है कि, हमारे तपमें किसी प्रकारकी बाधा न हो ऐसा समझकर भी श्रमणोंने उन्हे अन्यत्र जानेको इंगित किया हो।

जब अलेक्जंडर तक्षशिलामें पहुंचा तो भारतवर्षीय दार्शनिक नग्न साधुओंका एक संघ देखा। उनकी सहिष्णुता, तार्किकशक्ति और भविष्यद्वक्तृत्वको देखकर वह यहां तक मुग्ध हो गया था कि, उसने संघाधिपतिसे बड़े विनीत भावसे प्रार्थना की कि, आपमेंसे कोई महात्मा हमारे साथ चलें। किन्तु हमारे संघनायकने उसकी प्रार्थनाको स्पष्टवादितापूर्वक अस्वीकृत किया और अपने किसी साधुको जानेकी अनुमति नहीं दी। बल्कि उससे आपने बड़ी निर्भीकतासे कहा कि, आपही कीसी हमारी भी शक्ति है। तथा उन्होंने यह भी कहा कि, आपसे हमे किसी वस्तुकी प्राप्तिकी आशा नहीं। हमारे पास जो शक्ति है वही हमारी ऐहिक तथा पारलौकिक मनष्कामना पूरी करनेके लिये पर्याप्त है। तुम अपने कर्म-चारियोंके साथ साथ जो स्थल तथा समुद्रमें अविरत परिभ्रमण कर रहे हो यह बिल्कुल निरर्थक है। **इस परिभ्रमणका कभी अन्त होनेवाला नहीं**। हमारे आहारके लिये भारतवर्षीय फलादि ही यथेष्ट है। जब हमारी मृत्यु हो जायगी तो **इस शरीर और आत्माका जो अस्वाभाविक मिलन है वह संबंध छूट जायगा**। यद्यपि संघाधिपतिने किसी महात्माको उनके साथ जानेकी अनुमति नहीं दी तौभी संघके एक महात्मा अलेकजंडरके साथ चले गये*। ग्रीक इतिहासकारोनें इनका नाम **कॅलोनस** (Calanus) लिखा है। अलेकजंडरके भारत वर्षमें आनेपर उनका कई श्रमणों तथा जिम्नासोफिस्टों (Gymnosophist †) से बहुत दिनोंतक संबंध रहा।

३—मि. **ई. थॉमस** कहते हैं कि :—महाराज चंद्रगुप्त जैनधर्मके एक नेता थे। जैनियोंने कई शास्त्रीय और ऐतिहासिक प्रमाणद्वारा इस बातको प्रमाणित किया है। और आपका यहभी कथन है कि **चंद्रगुप्त** के जैन होनेमें शंकोपशंका करना व्यर्थ है। क्योंकि इस बातका साक्ष्य कई प्राचीन प्रमाणपत्रोंमें मिलता है और वे प्रमाणपत्र (शिलालेख) निःसंशय अत्यन्त प्राचीन हैं। महाराज चंद्रगुप्तका पौत्र **अशोक** जो

* इस घटनाका पूर्ण उल्लेख हम सिकंदर तथा **चन्द्रगुप्त**के जीवन-चरित्र लिखती बार करेंगे।

† जिम्नासोफिस्ट शब्दको ग्रीक विद्वानोनें दिगंबर मुनिके अर्थमें व्यवहृत किया है। इस विषय पर एक लेख भी अन्यत्र इस किरण में प्रकाशित किया है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

एक प्रबल सार्वभौम नृपति था। वह यदि अपने पितामहके धर्मका परिवर्तन नहीं करता, अर्थात् बौद्ध धर्मका अंगीकार नहीं करता तो उसको जैनधर्मका आश्रयदाता कहनेमें किसी प्रकारकी अत्युक्ति नहीं होती। मेगास्थिनिजका कथन है कि ब्राह्मणके विरुद्ध जो जैनमत (श्रमणमत) प्रचलित था उसीको **चन्द्रगुप्तने** स्वीकार किया था।

४—मि. **थॉमस** 'अशोकका प्रारंभिक धर्म' (The Early faith of Asoka) नामक निबंधमें फिरभी कहते हैं कि:—अकबर बादशहाको अबुलफजल नामक एक सर्व गुणालंकृत मंत्री थे। इन्होंने जैनसाधु और जैनसम्प्रदायकी बहुतसी बातें ज्ञात की थीं, क्योंकि भूतकाल-संबंधिनी ऐतिहासिक घटनाके आप अच्छे मर्मज्ञ थे। इसके अतिरिक्त राज्यभूमि जमाबन्दी और भिन्न भिन्न जातियोंकी गूढ गूढ बातें सरलतासे जाननेमें आप बड़े सिध्दहस्त थे। आपका आ.इ-ने-अकबरी नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ बड़े महत्वका है। इसमें आपने लिखा है कि, 'अशोकने काश्मीरमें पहले पहल जैनधर्म्मका प्रचार किया'। इससे ज्ञात होता है कि, अशोक कुछकालों तक जैनधर्मावलम्बी था[1]।

५—मि **बिल्सन** साहेब कहते हैं कि:—यदि मुझे जैनधर्मालम्बियोंकी समालोचना करनी होगी तो भारतवर्षपर आक्रमणकर्ता मसीडोनियन अलेकजंडर तककी ऐतिहासिक बातें खोज करनी पड़ेंगी। अर्थात् मेगेस्थनिजने जैनियोंका वर्णन किया है। जिसका 'एरियन' 'स्ट्रेबो' इन प्रसिद्ध ग्रंथकारोंने पूर्ण उल्लेख किया है और मेगेस्थनिज लगभग उसी समयमें (आलेक्जंडरके समयमें) भारतवर्षमें आयाथा।

६—प्रसिद्ध इतिहासज्ञ और पुरातत्ववेत्ता मि. बी. लुईस राइस साहेब कहते हैं कि:-**चन्द्रगुप्त** के जैन होनेमें कोई संदेह नहीं है। और ये यहभी मुक्त कण्ठसे कहते हैं कि, निस्संदेह **चद्रगुप्त** भद्रबाहु स्वामीके समसामयिक शिष्य थे[2]।

७—एन्सायक्लोपीडिआ ऑफ रिलिज़नमें लिखा हुआ है कि, बी. सी. २९७ में संसारसे विरक्त होकर **चन्द्रगुप्त** मैसोर प्रान्तस्थ श्रवण बेलगुलमें बारह वर्षतक जैन दीक्षासे दीक्षित होकर तपस्या की और अन्तमें तप करते हुए स्वर्ग धामको सिधारे।

८—मि. जॉर्ज सी. एम् बर्डऊड लिखते हैं कि:—**चद्रगुप्त** और बिन्दुसार ये दोनों बौद्ध धर्मावलंबी नहीं थे। किन्तु **चंद्रगुप्त**के पौत्र अशोकने जैनधर्मको * छोड़कर

१ नोट—अशोकका विस्तृत वृत्तान्त लिखनेके समय हम निश्चयपूर्वक लिखेंगे कि, अशोक कबतक जैनधर्म ग्रहण किए हु आथा।

२ नोट—एपिग्राफिका कर्नाटिका, मैसूर और कूर्ग शिलालेख तथा मैसोर गजेटिअर देखो.

* नोट—देखो—Industrial Art of India

Ac. Gunratnasuri MS　　Jin Gun Aradhak Trust

बौद्धधर्म स्वीकार किया। पीछे इस धर्मकी इतनी उन्नति की कि, प्रायः इसको राष्ट्रीय धर्म बना दिया।

९–मि. जे. टालवाइस व्हिलर्स लिखते हैं कि:–चंद्रगुप्त बौद्ध‡ नहीं था।

१०–हमारे श्रीरत्ननन्द्याचार्य्य कहतेहैं कि[1]:–

चन्द्रावदातसत्कीर्ति श्चन्द्रवन्मोदकर्त्तृणाम्। **चन्द्रगुप्ति** नृपस्तत्राचकचारुगुणोदयः ॥ ७ ॥
राजंस्त्वदीयपुण्येन **भद्रबाहुः** गणाग्रणीः। आजगाम तदुद्याने मुनिसन्दोह-संयुतः ॥२१॥
चन्द्रगुप्ति स्तदावादी द्विनयान्नवदीक्षितः। द्वादशाब्दं गुरोः पादौ पर्य्युपासेऽतिभक्तितः॥८॥
भयसप्तपरित्यक्तो **भद्रबाहु**र्महामुनिः। अशनाय पिपासोत्थं जिगाय श्रममुल्वणम्॥ ३७ ॥
समाधिना परित्यज्य देहं गेहं रुजांमुनिः। नाकिलोकं परिप्राप्तो देव-देवी-नमस्कृतः ॥३९॥
चन्द्रगुप्ति र्मुनिस्तत्र चञ्चच्चारित्रभूषणः। आलिख्य चरणौचारू गुरोःसंसेवते सदा ॥४०॥

भावार्थ—चन्द्रमाके सदृश कीर्तिवाले और चन्द्रवत् संसारको समाल्हादित करनेवाले सुगुणी महाराज **चन्द्रगुप्त** अवन्तीमें हुए। हे राजन्! तुम्हारे पुण्य-बलसे संघाधिपति **श्रीभद्रबाहु** स्वामी संघोंके साथ उस उद्यानमें विराजमान हुए हैं। इसके बाद नव-दीक्षित विनयी **चन्द्रगुप्त** बोले कि मैं बारह वर्षसे अपने गुरु (श्री १०८ **भद्रबाहु** स्वामी) के चरणों की बड़ी भक्ति के साथ पूजा करताहूं। इसके बाद भय सप्तको छोड़कर **महामुनि भद्रबाहु** स्वामीने बलवती क्षुधा और पिपासा को रोका। पश्चात् स्वामीजीने सांसारिक देह और गेहको छोड़कर देवाभिनन्दित स्वर्गधामको विभूषित किया। सच्चरित्र गुणधारी **चन्द्रगुप्त** मुनि वहांपर अपने गुरु **भद्रबाहु** स्वामीका चरण अङ्कित कर उसकी सदा पूजा करने लगें।

११—श्रीहरिषेण आचार्य्य–कृत "बृहत्कथाकोश" और देवचन्द्रकृत "राजबली-कथा"में उपर्युक्तकथन अर्थात् **चन्द्रगुप्त**को भद्रबाहु स्वामीके शिष्य होने और जैन होनेके मत की पुष्टि बड़े युक्ति–युक्त कथनसे की गयी है[2]।

सुहृत्पाठको! उपर्युध्दृत छः शिला–लेख और ग्यारह पुरातत्ववेत्ता विद्वानोंकी सम्मतिद्वारा मौर्य्यवंशीय महाराज **चन्द्रगुप्तका** जैन होना हमने प्रमाणित किया है। हमे पूर्ण

‡ नोट–देखो–J. Telboys Wheelers Ancient India.

१– देखो– "भद्रबाहु-चरित्र"

२– उपर्युक्त जिन तीन आचार्यों की सम्मति हमने उल्लिखित कीहै उनमें "बृहत्कथाकोशके' कर्ता हरिषेणाचार्य्यका समय ९३१ A.D, "भद्रबाहु चरित्र"के कर्त्ता रत्ननन्द्याचार्यका समय १४५० A.D. और "राजबली" के कर्त्ता देवचन्द्रका समय लगभग १८०० A. D. निश्चित होता है। यदि पाठकोंको इसमें सन्देह होगा तो हम फिर कभी समय-निश्चायक प्रमाण उपस्थित करेंगे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आशा है कि हमारे पाठकों तथा मित्रों को जो चन्द्रगुप्तके जैन करनेके लिये सुदृढ प्रमाणकी चाह थी, वह इन शिलालेखादि प्रमाणों द्वारा पूर्ण होजायगी। यद्यपि इन उपर्युक्त विद्वानों की सम्मतिपर कुछ लिखना " पिष्ट-पेषण " मात्र है।

तौभी उन सम्मतियोंमें वाक्यगत कुछ भिन्नता आजानेसे संभव है कि, पाठकोंके मनमें इससे कुछ सन्देह बीज अङ्कुरित हो जाय, अतः उस भिन्नताको अभेद रूपमें लानेके लिये यहां कुछ लिखना मैं अपना कर्तव्य समझा ताहूं। प्रथमही जो हम ऊपर लिख आये हैं कि अलेकजेंडर जब भारतवर्षमें आयाथा तो श्रमणोंने (दिगंबर मुनियोंने) उनसे कहाथा कि, " इस परिभ्रमणका कभी अन्त नहीं होगा " इस वाक्यमें मुनिने जैनसिद्धान्तका मर्म आंकित कर दिया है। क्योंकि जैनधर्मका यह सिद्धान्त है कि, जबतक प्राणी मुक्त नहीं होते तब तक उनका सांसारिक भ्रमण पीछा नहीं छोड़ता। मुनियोंका दूसरा सैद्धान्तिक बात यह है कि, " शरीर और आत्माका जो अस्वाभाविक सम्बन्ध है वह मरनेके बाद छूट जायगा " ठीक है, इसमें कैसा जैन सिद्धान्तका सार भरा हुआ है। क्योंकि जैनसिद्धान्तका यह मत है कि, शरीर और आत्माका अस्वाभाविक संबंध है। अर्थात् आत्मा चेतन और शरीर जड़ है। इन वाक्योंसे यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि वे श्रमण दिगम्बर मुनि थे बल्कि अलेकजेंडरने साफ साफ लिखही दिया है कि, वे जैनमुनि थे। इससे यहभी ज्ञात होता है कि, महाराज **चंद्रगुप्त** के समयमें जैन धर्मकी परिवृद्धि ' दिनदूनी रात चौगुनी ' थी और जैन ऋषिके रोमरोमसे जैनसिद्धान्तकी दीप्ति छिटिकती थी। अतएव एक विदेशीय वीरसे साधारण बातचितमें भी ऋषियोंके मुखसे जैनसिद्धान्तकी अंप्रतिहंतवेगा पवित्रमयी वाग्धारा प्रवाहित हुई है। दूसरा यह कि, ऊपर एक विद्वान्की सम्मतिमें **नग्नदार्शनिक** और **जिम्नासॉफिस्ट** ये दो शब्द इस बातको और प्रमाणित कर देते हैं कि, वे श्रमण दिगंबर जैनमुनि थे और इन्ही मुनियोंसे महाराज चन्द्रगुप्त राज्य संबंधिनी कार्यवाहियोंमें मंत्रणा लिया करते थे।

तिसरी बात यह है कि 'आइने आकबरी' नामक इतिहास पुस्तकमें जो लिखा है कि, महाराजा चन्द्रगुप्तके पौत्र अशोकने काश्मीरमें जैन धर्मका प्रचार किया। निरपेक्ष इतिहास-ज्ञाता अबुल फजलकी इस उक्तिसे यह बात स्वयं निश्चित हो जाती है कि, जब महाराजा चन्द्रगुप्तके पूर्वपुरुष तथा परपुरुष जैन थे तो चंद्रगुप्त अवश्य

१ नोट – कलिंग देशके खंडगिरि और उदयागिरिकी हाथीगुफाके शिलालेखद्वारा महाराजा चंद्रगुप्तके पूर्वपुरुषके जैनत्वका प्रमाण मिलता है। खंडगिरि और उदयागिरिके इतिहास लिखतीवार हम उसे प्रकाशित करेंगे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैन थे। इन प्रमाणोंके रहते यदि किन्ही विज्ञोंको मौर्यवंशीय महाराज चन्द्रगुप्तके जैनत्वमें किसी प्रकारकी शंका होतो उसको एक विनोदमात्र समझना ठीक है।

समय निर्णय.

अभीतक हमने चंद्रगुप्तको भद्रबाहुके शिष्य होने, चंद्रगुप्तका दीक्षानाम प्रभाचंद्र होने और चंद्रगुप्तके जैन होनेहीके प्रख्यात प्रमाण पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किये हैं। किन्तु अब मैं इनके समयकाभी कुछ उल्लेख करदेना उचित समझताहूं। जैनाचार्योंकी पट्टावली[1] तथा अन्यान्य जैन-ग्रंथोंमें श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामीका समय अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीके लगभग १६२ वर्ष पीछे[2] माना गया है। अर्थात् इनका समय ईस्वी सनके ३६४ वर्ष पूर्व निश्चित होता है, और मौर्यवंशीय महाराज चंद्रगुप्तके राजत्वका समय प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मि. बी. ल्युई. राईस साहेब, विन्सेंट स्मीथ और आर. सी. दत्त आदि महोदयोंने लगभग ३२० बी. सी. से लेकर २९० बी. सी. तक माना है। इसके बाद महाराज चंद्रगुप्तने लगभग १० वर्ष तक भद्रबाहुके साथ तथा पीछे एकाकी होकर तप कियाथा। इससे यह बात सिद्ध होती है कि, २९० बी. सी. तक इस संसारमें महाराज चंद्रगुप्तका अस्तित्व था।

इन उपर्युक्त कथनोंसे यह बात निश्चित होजाती है कि, मौर्य्य महाराज **चंद्रगुप्त** श्रुतकेवली **भद्रबाहु** स्वामीके शिष्य और समकालीन थे। क्योंकि जैन-पट्टावलीमें दूसरे भद्रबाहुका समय लगभग बी. सी. १० से १३ ए. डी. तक मानागया है, किन्तु यह भद्रबाहु श्रुतकेवली नहीं थे तथा उससमय चन्द्रगुप्तका भी अस्तित्व नहीं था। मि. विन्सेन्टस्मीथने अपनी इतिहास-पुस्तकमें गुप्तवंशीय प्रथम चन्द्रगुप्तका समय ३०८ और द्वितीयका ३७५ ए. डी. लिखा है। किन्तु उस समय **भद्रबाहुका** अस्तित्व नहीं मिलता। अर्थात् जब दूसरे भद्रबाहुका अस्तित्व पायाजाता है तो उस समय किसी चन्द्रगुप्तका अस्तित्व नहीं मिलता और जब गुप्तवंशीय दूसरे **चन्द्रगुप्तका** अस्तित्व पाया जाता है तो उस समय भद्रबाहुका ही अस्तित्व नहीं मिलता। अर्थात् मौर्य्यवंशीय महाराज चन्द्रगुप्त श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामीके शिष्य थे। और इनका अस्तित्व २८० वी. सी. निश्चित हो जाता है। इन उपर्युक्त दो परस्पर विरोधी वाक्योंसे चन्द्रगुप्तका निश्चित समय कहाँ तक प्रमाणित हो सकता है, यह विचार हम अपने विज्ञ-पाठकोंकी मीमांसा ही पर निर्भर करते हैं। दूसरी बात यह है कि जो नं. १ का

---

१ नोट – गत किरणमें प्रकाशित ४१ वें पृष्ठमें सेनगणकी पट्टावली देखिये।

२ नोट–श्वेताम्बरी लोगोंने १७० वर्षबाद चंद्रगुप्तका समय मानाहै देखो–परिशिष्ट पुराण.।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शिला-लेख हम गत किरणमें उद्धृत कर आयेहैं; वह तथा और अनेक शिला-लेख महाराज **अशोकके** श्रवणबेलगुलमें तथा मूलकमुरु ताल्लुक मैसोर राज्यमें आनेका और शिला-लेख लिखवानेका निश्चय कर रहे हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्तका अस्तित्व **अशोकके** पहले होना चाहिये और इनके पहले होनेवाले **चन्द्रगुप्त** इनके पितामह ही हो सकते हैं।

प्रथम शिलालेखमें जो **उज्जयिनी** शब्द आया है इससे हमारे पाठकोंके मनमें यह संदेह—तरंग उमड़ी होगी कि चंद्रगुप्तकी राजधानी तो पाटलीपुत्र थी फिर यहां उज्जयनीका उल्लेख क्यों तो इसका हम यही यथेष्ट उत्तर समझते हैं कि महाराज चंद्रगुप्तकी राज्यसीमा बंगाल सागरोपकूलसे अरेबिअन समुद्र तक विस्तृत थी। ऐसे बड़े राज्यके सुप्रबंधके लिये यदि दो राजधानी नियत की जाय तो यह बात असंभावित नहीं मालूम होती। दूसरी बात यह है कि महाराज अशोकके समयमें तो दो राजधानी अलग अलग स्थापित होनेका कारण साफ साफ दीख पडता है। क्योंकि, इस बातका उल्लेख अनेक स्थलोमें पाया जाता है। तीसरी बात यह है कि, महाराज अशोक राज्यके सुप्रबंधके लिये कुछ दिनों तक उज्जयिनीमें थे ऐसा आर. सी. दत्तने लिखा है। इन कथनोंसे हमारा उपर्युक्त कथन स्वयंही सिद्ध हो जाती हैं तथा यहभी लिखनेमें हम संकोच नहीं समझते कि, मौर्यवंशीय महाराज चंद्रगुप्तकी दो राजधानी थी। एक पाटली पुत्र और दूसरी उज्जयिनी।

उपस्थित सामग्रियोंसे हमने नं १ के शिलालेखके—प्रभाचंद्रका चंद्रगुप्त होना तथा चंद्रगुप्तका जैन होना सिद्ध किया है। ईर्ष्यावशसे चंद्रगुप्तको लोगोंने जहां तहां वृषल लिखाहै। इन प्रमाणोंके रहते यदि कोई महोदय चन्द्रगुप्त जैन नहीं था। ऐसे निर्मूल दो चार वाक्य लिखनेकी हठ करें तो उस दुराग्रहका हमारे पास उत्तर नहीं। किंन्तु जो विज्ञ इस लेखको सम्बन्धक्रमसे सांगोपांग पढ़कर युक्तियुक्त शंका करेंगे तो उनके समाधानार्थ यह "भास्कर" अवश्य अपनी यथोपस्थित ऐतिहासिक सामग्रीसे निवेदन करेगा।

नोट—१ अशोकके जीवन-चरित्र लिखनेके समय इनके सब शिला-लेख उद्धृत करेंगे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

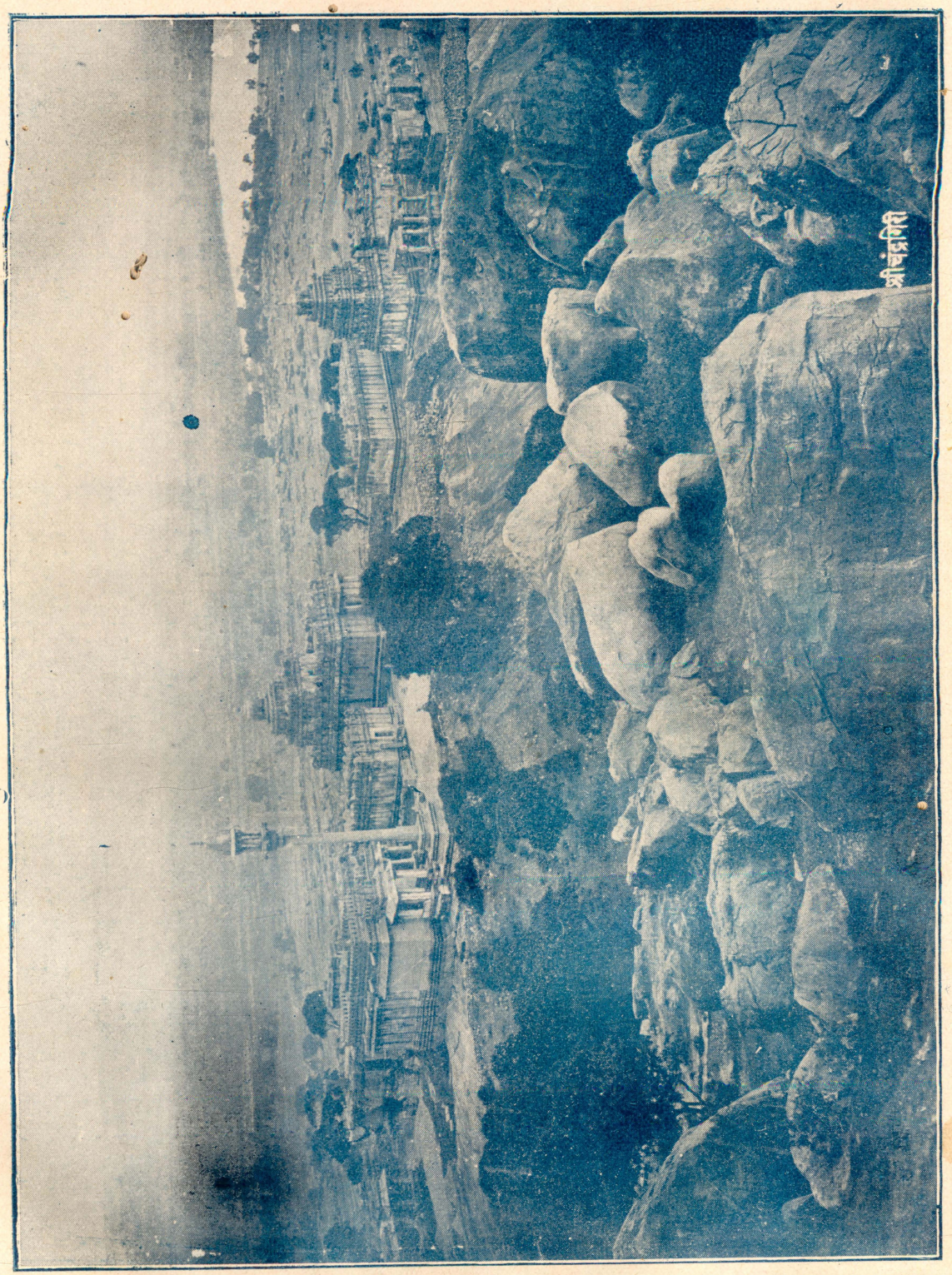

चन्द्रगिरि (पर्वत)

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

चंद्रगिरिका परिचय.

मैसोर राज्यान्तर्गत हासन ज़िलेमें एम्. एस्. एम्. रेलवेके आरसीकेरे स्टेशनसे ४२ माइलपर ' श्रवणवेलगुल ' नामक एक बहुत सुप्रसिद्ध धार्मिक स्थान चिरकालसे विद्यमान है। इसके उत्तरओर **चन्द्रगिरि** तथा दक्षिणओर **विन्ध्यगिरि** पर्वत हैं। दोनों पर्वतोंके बीचमें श्रवणबेलगुल ग्राम वसाया गया है। ' श्रवणबेलगुल ' शब्द हल्लीकन्नड (प्राचीन कर्नाटकी) भाषाका है। संस्कृतमें इस शब्दका अनुवाद ' धवल-सरोवर ' होता है। इस ग्रामके नाममें सरोवर शब्द संयोजित करनेका कारण यह है कि, यहां एक भूदेवीमंगलादर्शकल्याणी नाम्नी सरसी है। यह बड़ी लम्बी चौड़ी है। समुद्रकीनाई इसमें अथाह जल है। इसका जल कभी सूखता नहीं। जब देशमें अवर्षण होता है तो तृषाशांतिके लिये बहुत दूर दूरसे लोग आकर इसके आश्रित होते हैं। इसको श्रवणबेलगुलका कटिभूषण समझना चाहिये। इस सरोवरके विशेष प्रसिद्धिगत होनेसे ही महाराज **अशोकने** इस ग्रामके नाममेंभी ' सरोवर ' शब्द संवलितकर दिया। यह स्थान चन्द्रायपट्टण तालुकमें १२° ५१' उत्तर अक्षांश और ७६° ३३' उत्तर रेखांशपर है। श्रवणबेलगुलमें जैनाचार्योंका मठ, ताड़-पत्रांकित अलभ्य जैनग्रन्थ और अनेक प्राचीन जैनमान्दिर हैं। यह स्थान जैन-ब्राह्मणोंकी तपोभूमि है तथा इस स्थानको बड़े बड़े जैनाचार्यों और जैन-ग्रंथ-कर्ताओंने विभूषित किया है। विन्ध्यगिरिकी उंचास भूपृष्ठसे ३३४७ फूट है और चन्द्रगिरि पर्वतकी उंचास ३०५२ फूट हैं। कन्नड भाषामें विन्ध्यगिरिको दोड्डबेट्ट और चन्द्रगिरिको चिकबेट्ट कहते हैं। विन्ध्य और चन्द्रगिरिकी सार्थकता लोगोंने इस प्रकारकी है:—विम् (आत्मा) ध्या (ध्यान) अर्थात् आत्मध्यान करनेका स्थान। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि, इस पर्वतपर अनेक ऋषि मुनियोंने आत्मध्यान कर अपना जीवन उत्सर्ग किया है। इसलिये इसका नाम विन्ध्यपर्वत रक्खा गया। दूसरे पर्वतपर चन्द्रगुप्त मुनिने अपने गुरु भद्रबाहु स्वामीकी चरण-पादुकाकी निरन्तर सेवा कर ऐहिक लीला परि समाप्त की है इसलिये इनके चिरस्मरणार्थही इस पर्वतके नाममें ' चन्द्र ' जोड दिया गया है। जिस विन्ध्यगिरि पर्वतपर श्री १००८ **बाहुबलिस्वामीकी** सुरम्य मूर्ति लगभग ७० फूट ऊंची है, इसका सविस्तर परिचय हम अगली किसी किरणमें करायगें। सम्प्रति हम चंद्रगिरिका परिचय पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चंद्रगिरि एक बहुतही रमणीय पर्वत है। इसपर चढ़नेमें कुछभी कठिनाई नहीं होती। भारतीय आदर्शभूत शिल्पकलासे रचित अनेक जैन मंदिर, विकसितकमल-सुशोभित सुन्दर सरोवर तथा आध्यात्मिकचिंतनोपयुक्त सुरम्य स्थान इसकी विशेष रमणीयताको परिवर्द्धित कर रहे हैं। इसका सृष्टिसौंदर्य दर्शकोंके चित्तको बलात् आकर्षित करने लग जाता है। इसके गगनचुम्बित शिखरकी छटातो देखतेही बनती है

दक्षिणद्वारसे ढाई सौ सीढ़ी चढ़कर दो राहें मिलती हैं, एक तो भद्रबाहुकी गुफाकी ओर जाती है और दूसरी प्राकारकी ओर जाती है। वहांपर निम्न लिखित मंदिर हैं। भद्रबाहुकी गुफा पश्चिमाभिमुखी है। उसमें घुसनेपर पूरबकी ओर भद्रबाहु स्वामिके दो विशाल चरण पादुका मिलती है। गुफा बहुतही एकान्त-स्थानमें है। योगियोंके अध्यात्म-विचारके लिये यह गुफा बहुतही उपयुक्त है। इसमें प्रविष्ट होतेके साथ श्री भद्रबाहुस्वामीकी तपस्या, **चन्द्रगुप्तका** संघ छोड़के श्री १०८ गुरुश्री भद्रबाहुजीके साथ रहना, प्राचीनकालकी पुराणकारोंसे वर्णित हुई कर्नाटककी सुभिक्षता, आध्यात्म विचार और जैनियोंकी प्राचीन धार्म्मिक उन्नतिका चित्र दर्शकोंके चित्तपर सहसा खिंच जाता है।

इसी गुफामें श्री १०८ भद्रबाहुस्वामीने मुनि-संघोंको चोल पांड्य देशमें भेजकर आप कठिन तपस्याकर समाधि-मरणसहित इस असार संसारको छोड़ा और यहींपर अपने गुरु भद्रबाहुस्वामिके मुक्त होनेपर चन्द्रगुप्त मुनिने जैन धर्म्मकी चिरस्थायी नीव डालकर जैन महत्वका प्राचीनता-सूचक एक प्राकाम्य प्रशस्त प्रासाद बनाया। भाइयों! यह ऐसा स्थान है कि, यहांके दृश्य देखनेपर यही मालूम होता है कि, आजभी वही जैनधर्मका विस्तृत क्षेत्र है, स्याद्वाददेवीकी वही शुद्ध धर्म्मोपदशकी ध्वनि गूंज रही है तथा **अहिंसा परमो धर्मः** कीभी वही शुभ्रवैजयंती फहरा रही है। इन बोंताका अनुभव कर दर्शकोंके नेत्रोंसे आनंदाश्रुकी धारा बहने लगती है। ठीक है अपनी सम्पत्ति, अपनी ज़मीन्दारी तथा अपने धर्मकी सुरक्षित मूलभित्ति देखकर भला कौन नहीं प्रसन्न होगा?

प्रियपाठको! अन्तिम श्रुतकेवली श्री १०८ भद्रबाहुस्वामी और उनके शिष्य मुनि चंद्रगुप्तके संन्यस्त मरणके स्थानको देख कर स्वधर्म्माभिमान उत्तेजित होकर प्रज्वलित हो आता है और ऐतिहासिक-घटनाके परिचय होनेसे एक क्षणभी वहांसे हटनेका जी नहीं चहता। अस्तु! उल्लिखित गुफाके चारोंतरफ कई बड़ी बड़ी शिलाएं हैं। इनपर अनेक जैनमुनियोंने संन्यस्त-मरण किया है। इसबातकी शाक्षिता उन शिलाओंपरके अनेक चरण-चिन्ह ही काफी हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

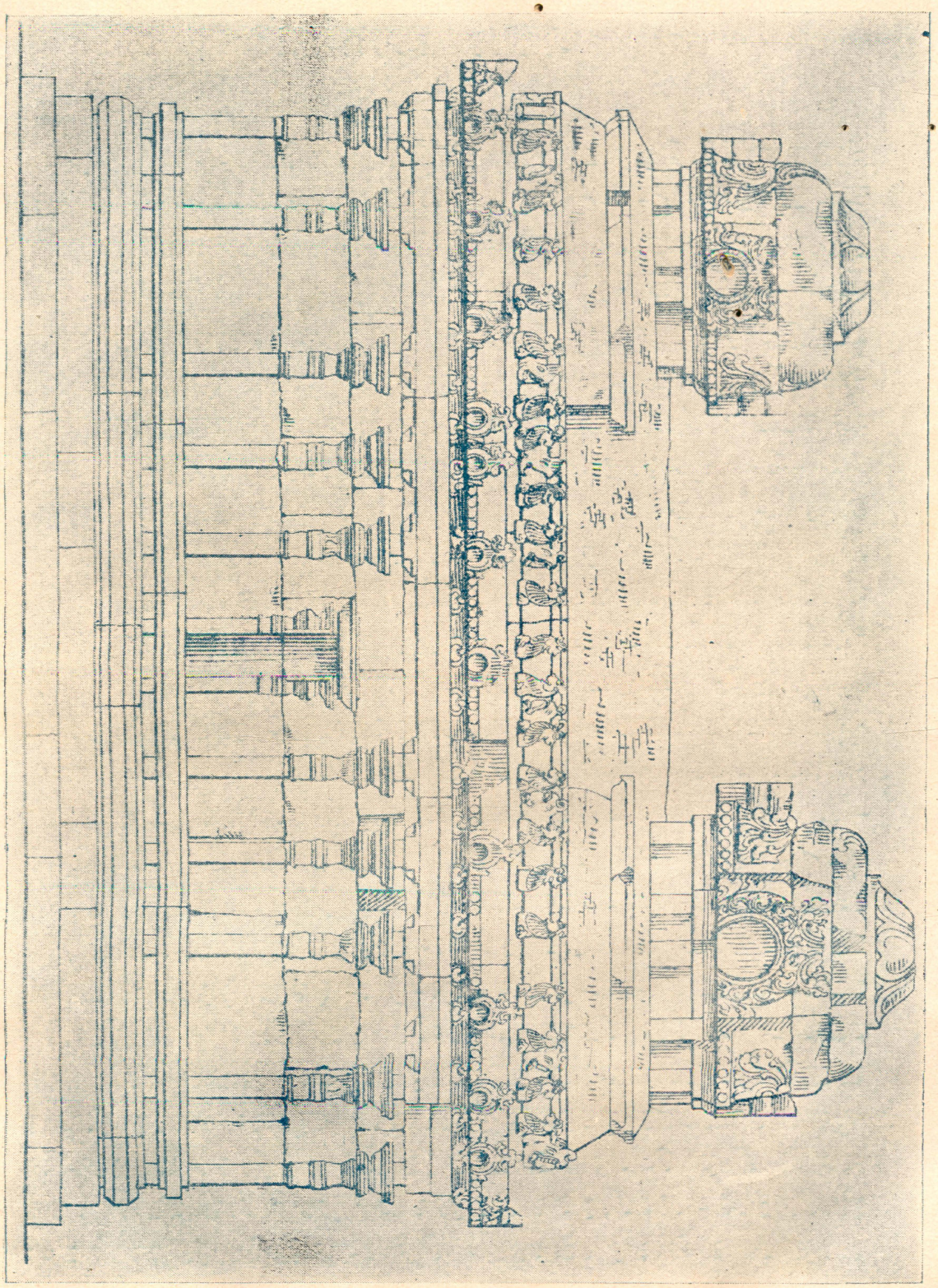

उत्तरभागकी चन्द्रगुप्तवस्तीका चित्र.

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

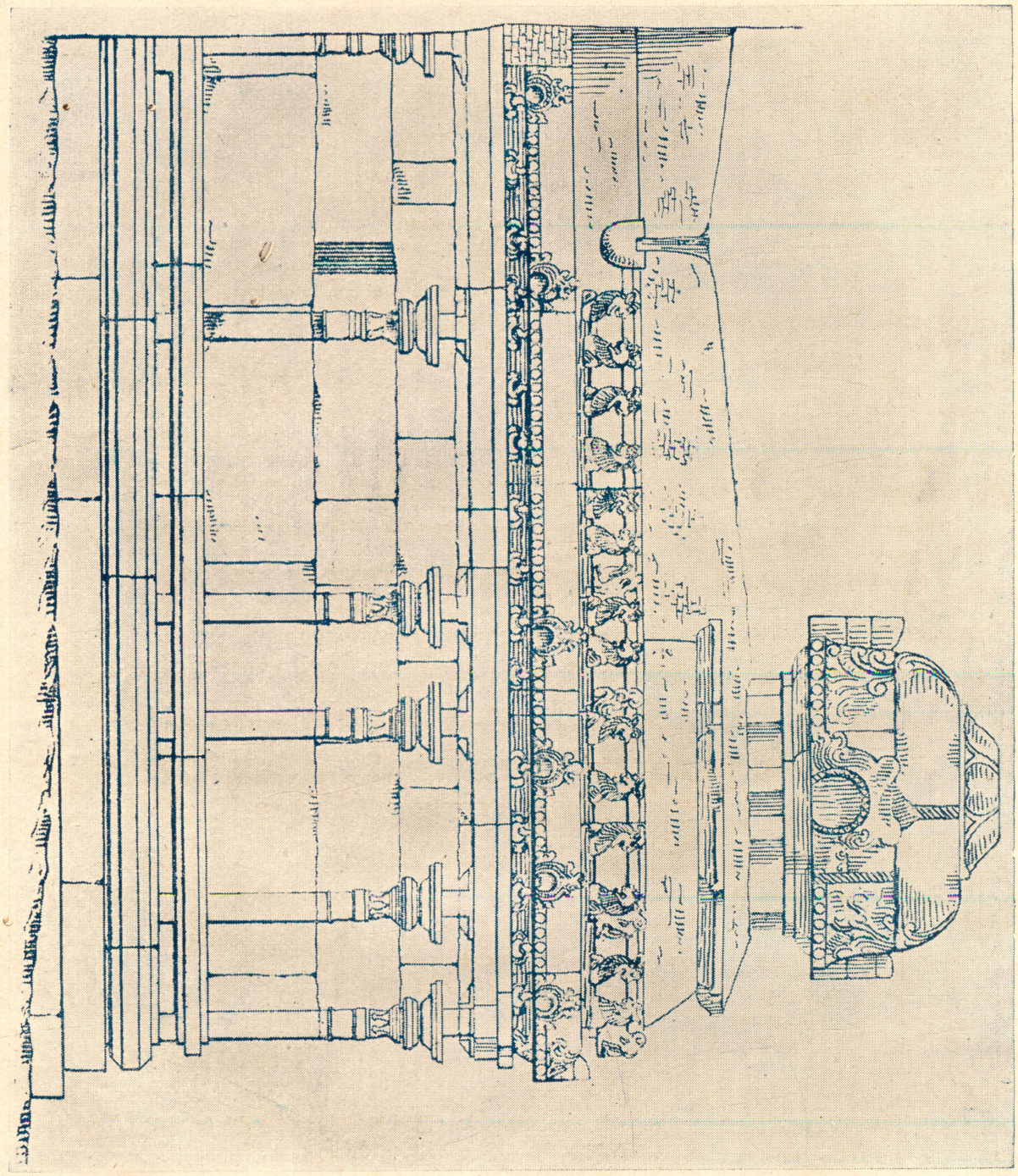

पूर्वभागकी चन्द्रगुप्तवस्तीका चित्र.

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

इस गुफाके दर्शन करनेके बाद दूसरी राहसे प्राकार (चहार दिवाली) की ओर आनेपर एक छोटासा रमणीय तालाव मिलता है। इसका स्वच्छ जल और भ्रमरानुरंजित विकसित कमल इसकी शोभा दूनी बढा रहे हैं। यात्रि-गण इसमें अष्टक धोकर दर्शन करने जाते हैं। पर्वतके मंदिरोंके चारो तरफसे किलेकीसी चहारदिवाली दौड़ायी गयीहै। दक्षिण द्वारसे इस प्राकारमें घुसनेपर अनेक मंदिरोंका दर्शन होकर अंतःकरण आनंदित होजाता है। प्रथम ही मानस्तंभ तथा इसके समीप मैसोरनरेश–द्वारा सु-संरक्षित और प्रस्तर-प्राचीरावगुण्ठित एक शिलालेख है, जो आजतक भारतवासियोंको यह बता रहा है कि, जब बारह वर्षका दुर्भिक्ष पड़ाथा तो **भद्रबाहुस्वामी** और इनके शिष्य **चंद्रगुप्त**ने मुनिसंघोंके साथ रह कर समाधि-मरणसहित इसी पर्वतपर अपनी विनश्वर देहको छोड़ा है। यह शिलालेख बहुत दिनोंतक किसीसे परिचित नहीं था और लोग इसके महत्वसे बहुत दिनोंतक वञ्चित रहें; किन्तु पुरातत्ववेत्ता मि. ल्युईस राइस साहेबने अपरिमेय परिश्रम कर इसको प्रकाशित कर भारतवासियोंको और विशेषकर जैनियोंको एक प्राचीनतम ऐतिहासिक घटनासे परिचय कराया।

मन्दिरोंका क्रम.

१——उपर्युक्त प्राचीन शिला-लेखके उत्तर भागमें श्री १००८ पार्श्वनाथ तीर्थंकरका पूर्वाभिमुख एक विशाल चैत्यालय है। इसमें एक अन्तर्मन्दिर तथा शिला-लेख–सहित एक सभा-मण्डप है। इस मंदिरमें श्री १००८ पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी लगभग ढाई पुरुष प्रमाणकी एक खड़ी सप्त फणामण्डपमाण्डित मनोज्ञ कृष्णवर्णकी मूर्ति है। इस मंदिरके सामने एक विस्तृत चबूतरेके साथ ऊंचा मानस्तंभ है।

चंद्रगुप्त वस्ती.

२-३. इस मान्दिरके उत्तर तरफ पासही में महाराज अशोकद्वारानिर्मित चंद्रगुप्त वस्ती (चैत्यालय) है। यह वस्ती बहुत विस्तृत होनेकी वजहसे अन्धकारमय है। इसीलिये कन्नडमें लोग इसे 'कत्तलवस्ती' भी कहते हैं। इस वस्तीमें दो दालान हैं। इन दोनों दालानोमेंभी प्रतिमा विराजमान की गयी है। ऊपरका दालान बहुत लम्बा चौड़ा है। इसमें बीस खंभे लगे हुए हैं। भीतरका कुछ भाग प्राचीन शिल्पकलाका नमूना दिखा रहा है। अन्तर्मंदिरमें सिंहासनपर श्री १००८ भगवान् आदिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके पीछेका भामण्डल आजभी प्राचीन शिल्पकलाका आदर्श हो रहा है। प्रतिमाके आगे यक्ष और यक्षिणीकी बड़ीही मनोज्ञ मूर्ति है।

१ नोट—यह शिलालेख "भास्कर" की गत किरणमें प्रकाशित है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नीचेके दालानका मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। इस मन्दिरके तीन भाग हैं। मध्य भागमें कायोत्सर्गस्थ श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी एक प्रतिमा है। इसके दक्षिण ओरमें पद्मावती देवीकी मूर्ति, सामने धरणेन्द्र यक्ष, वाम-भागमें कुष्मांडिनि देवीकी मूर्ति और सामने सर्वाण्हय यक्ष हैं। इस त्रैविभागिक वस्तीके आसपासमे दोनों तरफके अत्यन्त मसृण प्रस्तरपट्टपर पैंतालिस पैंतालिस ऐतिहासिक चित्र खुदे हुए हैं। इन चित्रोंसे यह मालूम होता है कि, ये श्री १०८ भद्रबाहुस्वामी और महाराज चंद्रगुप्तके समयके शिल्प-कला-संबंधी चित्र हैं; किन्तु अभी हमे इन चित्रोंका यथार्थ भाव नहीं ज्ञात हुआ है। ' भवन ' इनके आशय समझनेकी कोशिस कर रहा है। ज्ञात होजानेपर पूरी विवृतिके साथ चित्रोको हम ' भास्कर ' में प्रकाशित करेंगे। मन्दिरका बाह्य दृश्य और शिखर पुरानी द्राविडी-पद्धतिसे बना है। मन्दिरके ऊपरके भागमें छोटे छोटे सिंह खुदे हुए हैं। इस मान्दिरका पूर्ण चित्र इस किरणमें सन्निविष्ट किया गया है। पाठक—गण बड़ी निश्चलतासे सब बातोंका अनुभव कर सकते हैं।

४—प्राकारके नैर्ऋत्य कोणमें पूर्वाभिमुखका एक मन्दिर है। इसमें लगभग डेढ़ पुरुष ऊंची एक कायोत्सर्गस्थ सुरम्य श्री १००८ शान्तिनाथजीकी प्रतिमा हैं। इसके आगे एक मानस्तंभ है। इसके बगलमें एक धर्मशाला है, जिसमें यात्रिगण ठहरा करते हैं और पूजाकी सामग्रीभी यहींपर सुसम्पन्न करते हैं। इसके पासहीमें श्वेत चम्पकवृक्षके नीचे लगभग डेढ़ पुरुष ऊंची एक बाहुबली स्वामीकी खण्डित प्रतिमा है। कहा जाता है कि, सांगोपांग सुसाज्जित नहीं होनेसे इसकी स्थापना नहीं की गयी।

५--६—वायव्य कोणमें पूर्वाभिमुख दो जिनमान्दिर हैं। एक मन्दिरमें श्री १००८ सुपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा विराजमान है और प्रतीमाके दोनो ओरसे दो इन्द्र चँवर ढुला रहे हैं। दूसरेमें श्री १००८ चंद्रप्रभु तीर्थंकरकी प्रतिमा है। बाह्य भागमें यहां यक्ष और यक्षिणीकी मूर्तियां हैं।

नंबर ४-५-६ वाले मन्दिरोंके सामने चारोतरफसे खुले हुए कई छोटे छोटे मन्दिर हैं। उनमें बहुतसे शिलालेख खुदे हुए रक्षापूर्वक रखे गये हैं। इन शिलालेखोंमें प्राचीन जैनाचार्योंके महत्वसूचक कई लेख हैं।

७—नंबर ५-६ वाली वस्तीके सामने **चामुण्डरायकी** स्थापित एक अत्यन्त रमणीय भारतीय शिल्पकलाकी अत्युच्च प्रतिष्ठा रखनेवाली वस्ती है। इसमे श्री १००८ नेमिनाथ तीर्थंकरकी मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके दोनों बगलमें दो

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

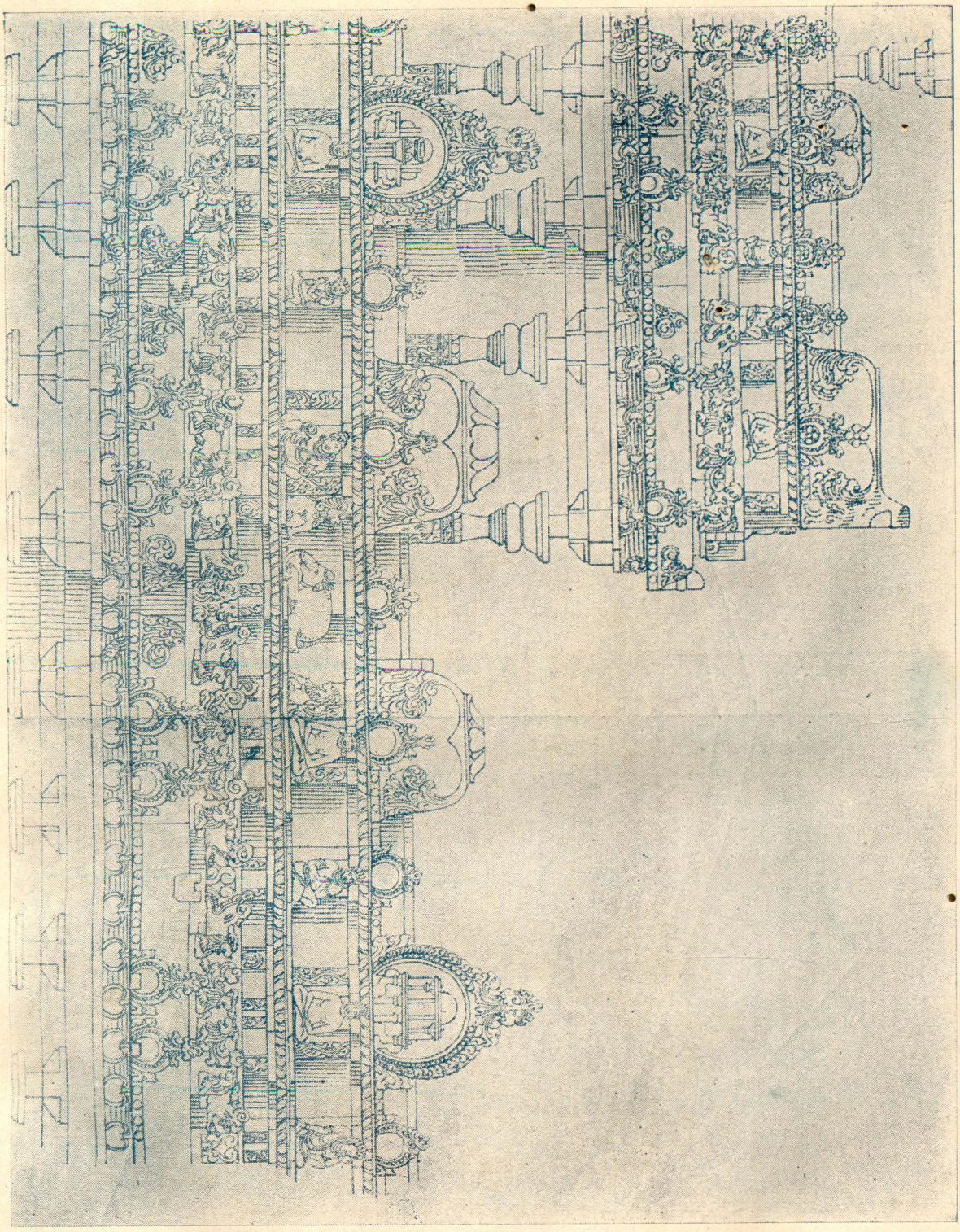

दीवारपर नक्काशी कीहुई और खोदित मूर्तिवाली चामुण्डराय वस्ती (मन्दिर) की लम्बाईका चित्र.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

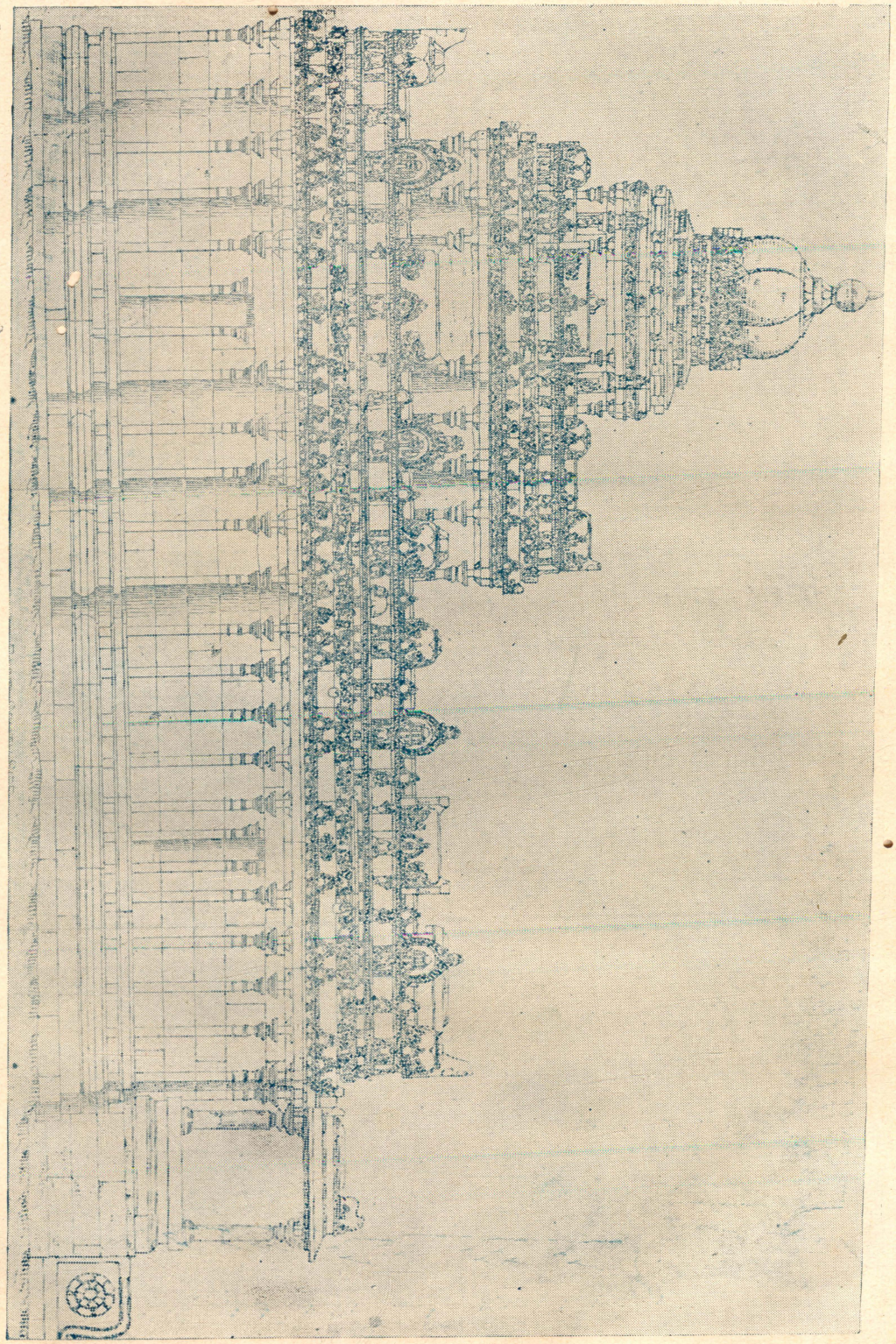

दक्षिणभागकी चामुण्डरायवस्तीका चित्र.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इंद्र चँवर ढुला रहे हैं। इंद्रोंकी देहपर आभूषण तथा वस्त्रादि इस कलाचातुरीसे खुदे हुए हैं कि, इनके सामने सच्चे गहने और कपडेभी फीके पड़जाते हैं। पीछेका भामण्डलभी एक बड़े चिकने कृष्ण प्रस्तरपर अंकित है। यह शिल्पीय उत्कृष्टताकी नमूना क्षणक्षण दृग्गोचर कराता है। इसके पार्श्वमें यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा श्रीमान् १०८ **नेमिचंद्र सिद्धान्त-चक्रवर्त्ति** द्वारा की गयी है।

इस मन्दिरका सभा-मण्डप बहुत बड़ा है। इसके ऊपरका भाग (कोठा) चामुण्डरायके लडकोंने बनवाया है। ऊपरके मन्दिरमें श्री १००८ पार्श्वनाथकी प्रतिमाभी चामुण्डरायके पुत्रोंनेही विराजमान कराई है। लोग कहते हैं कि, पिताके स्मरणार्थही इस मन्दिरकी स्थापना इन्होंने की है। इसका समय लगभग ई. स. ९९५ है। दर्शनके लिये तथा प्राचीन जैन-शिल्पसाहित्यका नमूना बतलानेके लिये इस मन्दिरका चित्रभी इसी किरणमें हमने प्रकाशित किया है। मन्दिरका बाह्य दृश्यभी प्राचीन चित्रकलाकी अच्छी छटा बता रहाहै।

कहा जाता है कि, इसी महाराज **चामुण्डरायने** विन्ध्यपर्वतपर श्री १००८ **बाहुबली स्वामीकी** प्रतिमाकी प्रतिष्ठा **भगवन्नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ति**-द्वारा की है। श्री १००८ बाहुबली स्वामीकी प्रतिमा उत्तराभिमुखी और लगभग ७० फीट ऊंची है। प्रतिमाकी शिल्पकलाकी घटना इतनी अपूर्व और मनोहर है कि, हजारोंबार प्रतिमाका दर्शन करने परभी नेत्रकी अनिमेष–दर्शनेच्छा नहीं तृप्त होती। प्रतिमाका विशाल स्वरूप, मधुर लावण्य, शिल्पकारीगरीकी सांगोपांग पूर्णता और परमशांत गंभीर ध्यान दर्शकोंके हृदयपर बहुतही असर करते हैं। कहा जाता है कि दुनियामें जो आज बड़ेबड़े तीन मूर्तियां विद्यमान हैं; उन सबोंमें यहांकीसी मूर्ती अन्यत्र कहींभी नहीं हैं। इस विशाल प्रतिमाके दोनोंतरफ चरणके नजदीक दो शिला-लेख पत्थरपर खुदे हुए हैं। वे शिलालेख मराठी और कन्नड भाषामें; तथा देवनागरी और कन्नड लिपिमें हैं।

श्री चामुण्डराजें करवीयलें।

अर्थात् इसका निर्माण चामुण्डराजाने करवाया है दूसरा शिलालेखः–

श्री गंगाराजें चुत्तालें करवीयलें।

जिसका अर्थ–महाराज गंगाराजने इधरका चैत्यालय बनवायाहै, ऐसा है। यह गंगकुलोत्पन्न परम जैनधर्माभिमानी महाराज गंगराज, चामुण्डराजके दोसौ बरस पीछे

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हुए हैं, ऐसा ज्ञात होता है। इन दोनो तरफके शिला लेखोंकाभी चित्र पाठकोंको परिचय करानेके लिये इसमें सामिल किया गया है। विन्ध्यपर्वतका वृत्तान्त हम किसी आगली। किरणमें सादर प्रस्तुत करेंगे। अस्तु!

८-नंबर ७ के मन्दिरके पासहीमें श्री १००८ आदिनाथ तीर्थंकरका मन्दिर है। इसमे सिंहासनपर श्री १००८ आदिनाथ तीर्थंकरकी मूर्ति तथा सव्य और वाम भागमें चमर लिये हुए इंद्रकी दो प्रतिमा स्थापित है। दोनो इंद्रोंके आसपासमें यक्ष और यक्षिणीकी मनोज्ञ मूर्ति विद्यमान है। इस पूर्वाभिमुख मंदिरको 'शासन वस्ती' भी कहते हैं।

९-उपरिनिर्दिष्ट मंदिरके सामने दक्षिणाभिमुखी 'मर्जीगण' नामकी वस्ती है। इसमें भी यक्ष-याक्षिणीके साथ श्री १००८ अनंतनाथ तीर्थंकरकी परम गंभीर और शांत-ध्यानकी मूर्ति है।

१०--यह 'एरडुकट्टे' नामक उत्तराभिमुखका चैत्यालय है। इसमें यक्ष यक्षिणी तथा इंद्र इंद्राणीके साथ श्री १००८ आदिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा है।

११--उपर्युक्त मंदिरके पार्श्वहीमें 'सती गंधवर्ण', नामक उत्तराभिमुखी वस्ती है; जिसमें श्री १००८ नेमिनाथ स्वामीकी एक बड़ी मनोज्ञ प्रतिमा है।

१२--यह 'गोमटेश्वर स्वामी' नामक वस्ती उपर्युक्त वस्तीकी दाहिनी ओर है। इसमें श्री १००८ बाहुबलीस्वामीकी प्रतिमा यक्ष यक्षिणीके साथ विराजमान है।

१३--यह अन्तिम उत्तराभिमुख मन्दिर बिल्कुल ईशान कोणमें है। इसमें श्री १००८ शान्तिनाथ स्वामीकी सुंदर मूर्ति है।

श्री १०८ भद्रबाहुस्वामीकी गुंफासे लेकर चंद्रगिरिपर्वततक सब मिलकर १५ मन्दिर हैं। बीच बीचमें प्रबंधके साथ छोटेसे पाषाणके चबूतरेपर स्थापित कियेहुए 'मल्लिषेण प्रशस्ति' आदि लगभग १०० शिलालेख बड़ेही महत्वके हैं। प्राकारपरिवेष्टित इस चंद्रगिरिपर्वतके ईशान कोणसे 'जिननाथपुरी' को जानेका एक मार्ग है। जिननाथपुरीमें प्रवेश करनेके पहलेही एक सुरम्य सरोवर मिलता है। इसके तटपर श्री १००८ पार्श्वनाथ भगवानके उत्तराभिमुख दो मन्दिर हैं। जिननाथपुरीमें प्राचीन द्राविडीयशिल्पकलाकी सर्व सुंदर समृद्धि-शाली श्री १००८ महावीरस्वामीका एक मन्दिर है। किन्तु शोक है कि, यह मन्दिर बहुतही जीर्णावस्थामें है। तीर्थ-संरक्षकोंको इसकी ओर ध्यान देना चहिये।

प्रिय पाठक महोदयो! यहां थोडासा चंद्रगिरिका दृश्य आपलोगोंके सम्मुख प्रदर्शित किया। समयानुसार इसका और-विशेष परिचय हम भास्करमें देनेका प्रयत्न करेंगें।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

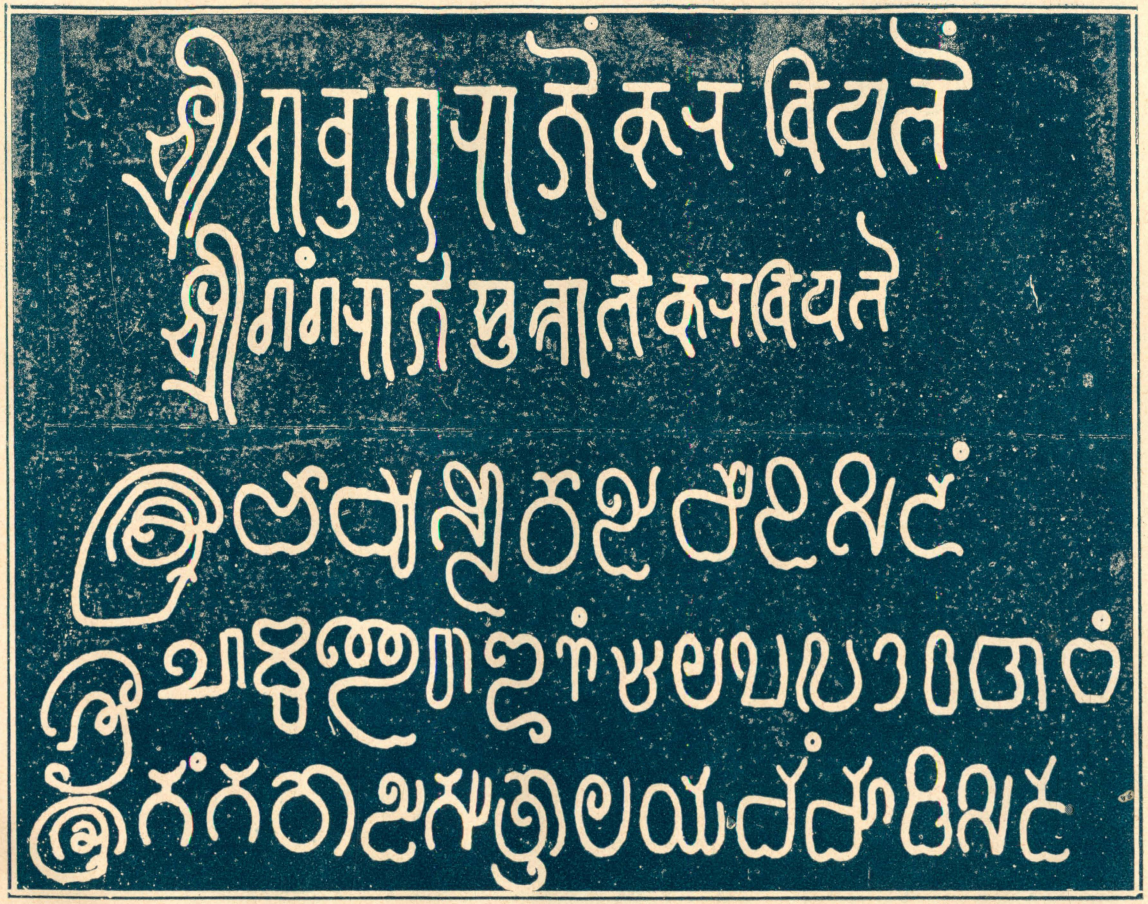

श्री १००८ बाहुबलीस्वामीके चरणके समीपवाला चामुण्डरायका शिलालेख.

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

चामुण्डरायके शिलालेखसहित श्री १००८ बाहुबलीके चरणाधारका पहाड़.

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

दिगंबर मतपर एक विदेशी विद्वान्का विचार.

यद्यपि बुद्ध-धर्म्मका महत्व, बुद्धधर्म्मका उदय तथा बौधर्म्मके अन्यान्य धर्म्मोंसे संबंधकी विशेषता किसीको ज्ञात नहीं है तौभी आजकल बड़ेबड़े विद्वानोंने इस धर्म्मके रहस्य जाननेके लिये आकाश पाताल एक कर डाला है तथा जैसे तैसे अपने मन माने मन्तव्य सब किसिके कर्ण-कुहरतक उद्घोषित कर रक्खे हैं। डा. बर्नाफने जो बौद्धधर्म्मका इतिहास लिखा है, उसमें उन्होंने मि. हाक्सनेका नेपालमें मिले हुए बौद्धधर्म्म-संबंधी कुछ लेखका उल्लेख किया है, इससे और मि. हार्डीको सिलोनमें उपलब्ध हुए बौद्धधर्म्मसंबन्धीय लेखसे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि, लगभग ईस्वी सन्के ५०० वर्ष पूर्व, जब बुद्धधर्म्मका उदय हुआ था तो उस-समय संसारमें विशेषतया ब्राह्मण-संस्था-काही आधिपत्य था। यद्यपि लोगोंका यह कथन है कि, ब्राह्मणं धर्मके विरुद्ध पहले बौद्धोंने अपना धार्म्मिक मन्तव्य प्रचारित किया किन्तु मेरी रायमें तो बौद्धोंके स्थानपर जैनियोंका ही कहना प्रमाण-संगत मालूम होता है। ब्राह्मण-समाजमेंभी ब्राह्मणधर्म्मके विरुद्ध मन्तव्य प्रकाशित करनेवाले और अन्यान्य उदात्त तथा ओजस्वी मतके अन्वेषण करनेवाले बहुतसे पण्डित हो गये हैं तथा प्रस्तुत-समयमें भी कई हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि, **ऋषभनाथ** स्वामीने जो प्राचीन धर्म्मकी सुधारणा की है; इस बातमें जैनधर्म्म और ब्राह्मणधर्म की एकवाक्यता है। ऋषभनाथस्वामी क्षत्रियोंमें आदि क्षत्रिय थे। आपके पुत्र महाराज **भरतके** चिरस्मरणार्थ ही इस 'आर्य-खण्ड' का नाम **भारतवर्ष** पड़ा। ब्राम्हणोंके प्रमुख पुराण **भागवतमें** ऋषभनाथस्वामीके विषयमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है।

"अपने सो पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठ भरतहीको आर्यखण्डाधिपत्यके उपयुक्त समझकर और उन्हें राज्यभार सौंपकर (राज्याभिषिक्त कर) ईश्वरभक्त, मनुष्यहितकारी और सुगुणी महाराज **ऋषभदेव** ईश्वराराधनमें निमग्न हुए और सकल परिग्रह-रहित नग्न होकर भिक्षुरूपसे ब्रह्मपदको प्राप्त हुए। यही ऋषभनाथस्वामी प्रथम राजा, प्रथम भिक्षु (श्रमण) और प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। ऋषभनाथसे लेकर महावीर तीर्थंकर तक अचैलक्य (दिगम्बरत्व) का उल्लेख जैनशास्त्रोंमें मिलता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उस समय इस प्राचीन धर्म-विधि-विरुद्ध कोई संघटित अथवा शाश्वतिक हलचल था या नहीं इसका कुछ पता नहीं मिलता। पहले जमानेमें आचार-धर्म और अभिमत-तत्वज्ञानकी कोई विशेष घटना नहीं हुई थी। उस समयकी परस्परागत दन्तकथासे यह बात मालूम होती है कि, वैदिक धर्म्मके विरोधी **ऋषभदेवके** पश्चात् एक **कपिल** नामके विद्वान् हो गये हैं। इनका तत्वज्ञान यद्यपि वैदिकधर्म्मसे विरुद्ध था किन्तु ये ब्राह्मण-संस्थासे कभी अलग नहीं हुए। **कपिलका** बुद्धिवैभव इतना जबरदस्त था कि, इनको समाजसे बहिष्कृत करनेका साहस किसीको हुआही नहीं। "प्रकृतिसे सृष्टि होती है, सृष्टि करनेमें ईश्वरका कुछ प्रयोजन नहीं" ऐसा **कपिलका** मत है। किन्तु इसके विरुद्ध वैदिकधर्मावलबियोंने कई ग्रंथ लिखे तथा इनको **नास्तिक** कहा। प्राचीन समयमें जो जैनधर्म और बौद्धधर्मकी लोकप्रियता थी, वह इसी कपिलानुमोदित तत्वके समकक्षकी थी। कपिलकी ईश्वरकी असृष्टि-कर्तृतामें पीछेसे वैदिकमत-प्रवर्तकोंने ईश्वरसृष्टि-कर्तृत्वकी* ध्वनि गुंजा दी है। किन्तु इन लोगोंने यह नहीं सोचा कि, ऐसा करनेसे ईश्वरकी समदर्शिता कहांतक निष्कलंक रह सकती है। कपिलके बसाये हुए ग्रामका नाम **कपिलवस्तु** प्राचीन कालमें सुप्रसिद्ध था। यद्यपि इनके समयका निर्णय निश्चयपूर्वक नहीं किया जा सकता तौभी हिन्दू परम्परागत जनश्रुतिसे बी. सी. के एक हजार वर्ष पहिले अनुमान किया जाता है।

कपिलके बाद भारतवर्षपर जिनके धार्मिक साम्राज्यका डंका बज गया था वह जैनियोंके तत्ववेत्ता प्रातःस्मरणीय तीर्थंकर श्री १००८ **पार्श्वनाथ** स्वामी थे। इनका समय लगभग ईस्वीके साढ़े आठसौ वर्ष पहिले निश्चित होता है। जैन मतानुसार यह काशीके राजपुत्र थे। इनकी आयु सौ बरसतक थी और इनका मृत्यु-समय बी. सी. के ८२८ वर्ष पहले माना जाता हैं। यह तेईसवें तीर्थंकर थे। **ऋषभनाथ** और **महावीरकी** ऐसी इनकीभी जैनियोंमें बड़ी प्रतिष्ठा है **पार्श्वनाथ** जैनियोंके तीर्थंकर हैं ऐसी हिंदूधर्मियोंमें और जैनतीर्थंकरोंकी अपेक्षा इनकी *बड़ी प्रसिद्धि है। कल्पसूत्रकी प्रस्तावनामें भी प्रायः इनका वर्णन किया गया है।* इसलिये और लोगोंका ख़याल है कि, जैनधर्मका प्रथम संस्थापक **पार्श्वनाथही** हैं।

इसके पीछे जो जैनधर्म्मके मुख्य प्रचारक हुए वे श्री १००८ महावीर स्वामी (बर्द्धमान) (सम्मति) अन्तिम तीर्थंकर हैं। बंगाल प्रान्तीय कुण्डिनपुराधिपति राजा सिद्धार्थके ये

---

* **स हि सर्ववित्सर्वकर्त्ता** (३।५६) **ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा** (३।५७) इन दो और अन्यान्य कपिल सूत्रोंसे ईश्वरकी सृष्टिकर्तृता लोग कायम रखते हैं, किन्तु हम समझते हैं कि, इनका मुख्य अभिप्राय नहीं समझकर लोगोंने ईश्वरको सृष्टिकर्त्ता मान लिया है। हम फिर कभी **सांख्यदर्शनका निरीश्वरत्व** दिखलावेंगे **सम्पादक.**

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लड़के थे। सत्तर वर्षकी अवस्थामें अर्थात् बी. सी. ५६९ में यह निर्वाणको प्राप्त हुएं। इन्हीके शिष्य **गौतम** [इंद्रभूति] नामके एक दिविग्जयी विद्वान् हो गये हैं। यही पीछे **बुद्ध** नामसे प्रसिद्ध हुएं। इन्होंने लौकिक तथा पारलौकिक दोनों विषयोंका अविश्रान्त प्रसार **एशियाखंडमें** बहुत दूर प्रदेशतक किया। श्री **महावीरने** संसारमें पूर्वकी पद्धतिमें बहुत सुधारणा की और मानसिक वासनासे अपनी अलिप्तता सूचित करनेके लिये वस्त्रादि परिग्रहको छोड़कर निर्ग्रंथित्व मार्गका आश्रय लिया। इनके निर्वाणके बाद जैनधर्ममें दो मत भेद हुएं। उनमें बहुतेरे तो **सुधर्माचार्य** के नायकत्वमें अपने गुरु महावीर स्वामीके दर्शित मार्गके अनुयायी हुएं और कुछ लोगोंने गौतमके आधिपत्यमें शिष्टाचार पद्धतिकी मात्रा किसी प्रकार अवनत नहीं होने दी तथा वस्त्रादि परिग्रहको स्वीकार कर पार्श्वनाथका उपक्रम चलाया।

महावीर स्वामीके शिष्योंका परम्परागत परिचय आजतक बड़ी सरलतासे विश्वसनीय प्राप्त हो सकती है। कल्पसूत्रकी पट्टावली ही विश्वसनीयताका साक्ष्य दे रही है। जैनधर्मके उदयके पश्चात् बौद्धधर्मकीभी एकवार खूब ज्योति जगमगायी, किन्तु तौभी जैनधर्म निस्तेजावस्थामें अपना अस्तित्व रखकर केवल नाममात्रसे जीवित रहा।

जैन लोगोंके मतानुसार **गौतम** प्रारंभमें ब्राह्मण थे, लेकिन बौद्ध कहते हैं कि वह कपिलवस्तुके छोटे राजा शुद्धोदन को पुत्र थे। इनकी जाति निश्चित करनेका आग्रह हमे कुछ नहीं हैं किन्तु यहां विचारणीय विषय यह है कि, जिस ओजस्वी धर्म्मका इन्होंने प्रसार किया है उसके मूल संस्थापककी प्रधानता इन्हे प्राप्त होना हमे युक्तियुक्त तथा प्रमाण-संगत नहीं माल्म पड़ता। गौतमको बुद्ध पदवीके प्राप्त होनेके पहिले जो इनके साथ पांच मुनिथे उनका उल्लेख बौद्धोंने अपने इतिहासमें किया हैं। गौतम बुद्धने थोड़े समयके लिये अपने साथी जैनमुनियोंका संघ छोड़ा था किन्तु पीछे फिर उन सबोंसे गौतमबुद्धको साक्षात्कार हो गया तथा बौद्ध धर्मके प्रचारके लिये उन्हे बिना परिश्रमके ये साधक मिल गयें। बौद्धधर्मका तत्व कुछ तो जैनियोंके और कुछ कपिलके तत्वसे सम्मिलित था। जैन और कपिलने प्रकृतिहीको ईश्वर माना है। दोनों धर्ममें जड़ और चैतन्ययुक्त सृष्टिही देवता माने गये हैं और संसारकी जितनी विभूति हैं वह अपनेही कर्तव्यसे सर्वज्ञताको प्राप्त होती है, इसी असामान्य विभूतीको बौद्ध लोग **बुद्ध** तथा जैनी लोग **तीर्थंकर** कहते हैं। बहुत विवेचना करनेपर हमे जैन इतिहासही महत्त्वपूर्ण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

माल्म हुआ। क्योंकि जैन इतिहासके समयादि निर्णय करनेके लिये तिथि वगैरह बी. सी. ८२८ तक क्रमबद्ध मिलती है। किन्तु बहुत खोज ढूंढ़ करने परभी बौद्धोंकी इतिहास–सामग्री बी. सी. ५४३ के पहिलेकी नहीं मिलती। **जैनियोंका एक जुदाही धर्म-मार्ग था** ऐसा उल्लेख बौद्ध–धर्म--ग्रंथमें मिलता है।

मि. **बर्नाफके** संगृहीत किये हुए बौद्ध लेख और सिंघली भाषासे मि. **हार्डीद्वारा** भाषान्तर किये हुए लेखसे माल्म होता है कि, **तिथ्य** तथा **तीर्थ** नामक बौद्धोंका एक प्रतिस्पर्धी वर्ग था। ये दोनों शब्द तीर्थंकरके समानार्थी माल्म पड़ते हैं। जैन लोगोंने जिसको देवता स्वरूप माना है वे येही तत्ववेत्ता हैं। बौद्धोंके इतिहास–ग्रंथोंमेंभी **तिथ्य का** अलगही उल्लेख किया गया है। जैसेः—" रताक्ष नामक तीर्थक श्रमण, ब्राह्मण, यति और भिक्षुक जहां थे वहां गया" उल्लिखित वाक्यमें पहिला **श्रवण** निर्विवाद जैन सिद्ध होता है। **ललितविस्तार** ग्रंथमेंभी बौद्धके श्रोतृवर्गका उल्लेख करते समय **ब्राह्मण** और **तीर्थकका** अलगही उल्लेख किया गया है। यहां भी **तीर्थक** जैनही होना चाहिए। मि. **टर्नर**-द्वारा संगृहीत 'पाली बुद्धिस्ट अनल्स' नामक ग्रंथमें तिथ्योंका पाखंडी कह कर उल्लेख किया गया है। बौद्ध ग्रंथोंमें ब्राम्हणोंकाभी यथा योग्य वर्णन किया गया है। बुद्धकी शिष्य-मण्डलीको एकबार वेदत्रय-पारंगत एक ब्राह्मण यतिसे साक्षत्कार हुआ। किन्तु बौद्ध-ग्रंथमें इस साक्षात्कारकी घटनामें कहीं तिथ्य अथवा तीर्थंकर ऐसा शब्द नहीं प्रयुक्त किया गया है। बुद्धधर्म्मके समर्थन करनेवाले एक व्यक्तिने तीर्थककी निम्न लिखित रूपसे निंदा की हैः–

लोग उसके लिये बहुतसे वस्त्र लाये किन्तु उनका उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यही सोचा कि, यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हूं तो संसारमें मेरी उतनी प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि, लज्जा रक्षणके लिये ही वस्त्र धारण किया जाता है और लज्जाही पापका कारण है। हम **अर्हत** हैं इसलिये विषय वासनासे अलिप्त होनेसे हमे बाह्य लज्जाकी कुछभी परवाह नहीं। इसका ऐसा कथन सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे वहां इसके पांचसौ शिष्य बन गये बल्कि जंबू-द्वीपमें इसीको लोक **सच्चे बुद्ध** कहने लगे। बुद्धका एक प्रतिस्पर्धी तीर्थक था तथा वह वस्त्र परिधान नहीं करता; ऐसाभी बहुत ग्रंथोंमें उल्लेख मिलता है। तीसरे तीर्थकके बारेमें यह लिखा हुआ है कि, एक नग्न तीर्थक खानेके समय गरम पानी पीता था और चौथा-नग्न तीर्थक मांसाशनका निषेध करता था, ऐसे उल्लेख उल्लिखित ग्रंथोंमें पाये जाते हैं।

उपर्युक्त ये कथन **जैनधर्मका दिगम्बरत्व** और **मांसाहार–निषेधत्व** सूचनके साथ साथ **इसकी** प्राचीनताकाभी पूर्ण प्रमाण सूचित करते हैं, किन्तु ब्राह्मण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तथा बौद्धोंने मांसाहार निषेधकी और नग्नकी प्रसिद्धि नहीं प्रकटित की है। ब्राह्मणके धर्म्मग्रंथोंमें **ऋषभदेव**के दिगम्बर होनेके सिवाय और किसी वेदानुयायीका दिगम्बर होना नहीं लिखा है. बल्कि **ऋषभदेव** स्वामीके दिगम्बर होनेके विषयमें भागवतमें यह साफ साफ लिखा हुआ है कि, कलिकालमें नग्न होनेकी प्रथा ठीक नहीं होगी और जो नग्न रहेंगे उन्हे कलिकालका प्रभाव मोहरूपसे ग्रसित करेगा. विष्णुपुराणमें लिखा है कि, जब विष्णु संसारमें मोह उत्पन्न करनेके लिये अवतार धारण करते हैं तब वह हाथमें मयूरपिच्छ लिये हुए नग्न और शिरोमुंडित वेषसे अवतरित होते हैं।

हिन्दू–ग्रंथकारोंने ठीक समय निर्णीत नहीं करनेसे जैनों और बौद्धोंके सैद्धान्तिक बातोंमें तथा नामोंमें बड़ी उलझन कर दी है। मनुस्मृतिमें लिखा है कि, वानप्रस्थको वल्कल तथा कृष्णहरिणचर्म और संन्यासियोंको गेरुवा वस्त्र धारण करना चाहिये। नेपालमें गूढ़ और तांत्रिक नामकी एक बुद्धधर्म्मकी शाखा है. मि० **हाग्सन**ने लिखा है कि, इस शाखामें नग्न यति रहा करते हैं, किन्तु आधुनिक बौद्धोंका कथन है कि, ऐसे यति हमारे मतानुयायी कभी होही नहीं सकते। **हाग्सन**ने बौद्धोंके विषयमें जो एक लेख लिखा है उसमें साफ साफ लिख दिया है कि, दिगम्बर रहना बुद्ध-तत्त्वके विरुद्ध है, क्योंकि नग्नत्वही की वजहसे बौद्धोंने तीर्थंकरकी निंदा की है।

मांसाहारनिवृत्ति–विषयक बातका बिचार किया जाय तो यह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि पहले पहल जैनियोंहीने मांसनिषेधका प्रचार किया. अहिंसाधर्म बौद्धोंकोभी मान्य है किन्तु दूसरोंके द्वारा हिंसित मांस खानेमें वे लोग कुछ अधर्म नही समझते. क्योंकि बुद्धने अंतिम समयमें सूकरका मांस भोजन किया और यह भोजन इनके किसी शिष्यद्वारा संपादित था.

मनुस्मृतिमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि, पितरोंका श्राद्ध बिना मांसका सुसंपन्न नहीं हो सकता. प्राचीन ब्राह्मण तथा यहूदियोंमें अतिथिसत्कारार्थ परिपुष्ट गोवत्सरी मारनेका रिवाज था.

उल्लिखित प्रमाण जो दिग्दर्शित कराये गये हैं उनसे यह बात ज्ञात होती है कि बौद्धोंने जो तिर्थक ऐसा जहां तहां उल्लेख किया है वह दिगम्बर जैनके सिवाय दूसरा कोई नही था. इसी विचार–सरणीके अनुसार ग्रीक लोगोंकाभी **जिम्नासोफिस्ट** दिमम्बर जैनियोंही की श्रेणीका था. यह निःसंदेह निश्चित होता है कि जिम्नासोफिस्ट बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्मसे कुछ संबंध नहीं रखताथा. बल्कि कल्पसूत्र और जैन ग्रंथोंमें

१ देखो. बंगाल रायल एसियाटिक सोसैटी व्हाल्युम–सप्तम. मि. बर्नाफ और हार्वेनभी यह बात उल्लिखित की है.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जिनका उल्लेख आया है और जिनके अनुयायी आबूपर्वतपर तथा उसके आसपासके प्रदेशोंमें पाये जाते थे वे **दिगंबर जैनही** थे. प्रसिद्ध ग्रीक इतिहास लेखक मि० आलेक्झँड्रिया क्लिमेंटने बौद्ध तथा दिगम्बर मुनियोंका भिन्न भिन्न रीतिसे अपने इतिहासमें उल्लेख किया है. इतिहासकारोंने बौद्ध और जैनकी भिन्नता के विषयमें अनेक प्रमाण प्रकाशित करनेपरभी अंग्रेजोंमें और हिन्दुओंमें कई अपूर्व चामत्कारिक कल्पनाओंको उपस्थित कर दोनोंके तथ्य विचारमें बड़ी गड़बड़ी मचादी है.

हिंदू-धर्ममें नग्न रहनेवाले कापालिक लोग अभीतक कितने वर्तमान हैं. बल्कि उन्हें लोग नग्नका अपभ्रंश नागा कहा करते हैं. ब्राह्मणलोग इन्हें शिवमतानुयायी कहते हैं. नागा लोक प्रायः हिन्दुस्थानके पूर्व और दाक्षिण देशमें उपलब्ध होते हैं. किन्तु ग्रीक लोगोंके खोजनेपर ये पश्चिम प्रांतमें नहीं मिले. दंतकथा तथा लैखिक प्रमाणद्वारा यह बात सिद्ध होती है कि जब तक ग्रीक लोगोंको हिन्दूस्तानके साथ सम्बन्ध था, तब तक इन नागाओंका नाम निशान किसीको कुछ ज्ञात नहीं था। किन्तु उस समय जैन लोगोंकीही धार्मिक जागृतिकी कई विश्वसनीय बातों तका उल्लेख मिलता था.

बौद्ध तथा हिन्दूधर्मावलंम्बियोंने जैन-दिगम्बर-वृत्तिकी सहस्र मुखसे अपने सैद्धान्तिक, धार्मिक तथा आख्यायिका ग्रंथोंमें निन्दा की है. लेकिन संपूर्ण जैन-ग्रंथोंमें ऐसा उल्लेख पाया जाता है, कि प्रथम तीर्थंकरसे लेकर अन्तिम तीर्थंकर तक अपने शुद्ध जैन-दिगम्बर-धर्मके प्रचार करते आये हैं.

प्रिय पाठको ! इतने प्राचीन कालसे दिगम्बर-जैनधर्मकी परम्परा चली आती है। इन उपर्युक्त कथनका सारांश यही है कि, पश्चिम हिन्दुस्थानमें जहां दिगम्बर आम्नायकी प्रथा प्रचलित है वहां जो ग्रीक लोगोंसे जैन दिगम्बरोंका साक्षात्कार हुआ उस समय ग्रीकोंने इन्हें जिम्नासोफिस्ट नामसे उल्लेख किया. वे एकदम ब्राह्मण तथा बौद्धसे भीन्न थे और तक्षशिलापर अलेक्जंडरसे जिस जिम्नासोफिस्टका संघ मिला वह दिगम्बर जैनियोंकाही संघ था. बल्कि उसी संघका एक **क्यालानस्** (कल्याण) नामक जैन मुनि अलेक्जंडरके साथ इरानको चला गया.*

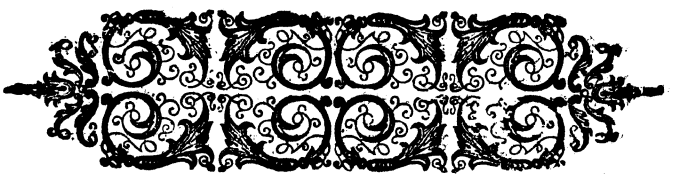

* रेव्हरन्ड जे स्टीव्हन्सनके 'तिथ्य, बौद्धोंके तिथ्यक और ग्रीकोंके जिम्नासोफिस्ट तथा दिगंबर जैन' नामक लेखका यह आशयानुवाद है। संपादक.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विक्रमादित्य सम्वत्.

विज्ञ महोदयो ! यह विषय बड़ाही कठिन है और इस विषयका आंदोलन बड़े बड़े भारतीय तथा विदेशीय विद्वानोंने पांडित्यपूर्ण युक्तियोंसे किया है और कर रहे हैं; तो फिर मुझसे क्षुद्रव्यक्तिद्वारा इस विषयकी चर्चा करना ज़रा कठिन है । किन्तु मैंने इतिहास–मर्मज्ञोंकेही विचार–वैभवकी आशासे इस जटिल विषयको छेड़ा है और मैं इसकी मीमांसाका भारभी उन्ही लोगोंपर छोड़ता हूं ।

जैन ग्रंथादिकोंसे मालूम होता है कि ३१२ बी. सी. के. पूर्व चन्द्रगुप्तने महाराजाधिराजकी उपाधि ग्रहण की थी। इसके बाद मौर्य्य वंशने १०८ वर्षतक इस भारतवर्षका शासन किया था। २०४ बी. सी. में पुष्यमित्र या पुष्पमित्रने मौर्य बृहद्रथ राजाको विनष्टकर मौर्य्य सिंहासनका अधिकार लिया था । वे बड़े प्रतापशाली राजा थे। पंजाबसे लेकर मगधतक इनका आधिपत्य था। वे शैव थे। इनका सौर धर्म्मसेभी बड़ा प्रेम था। बौद्ध–धर्म्मके ये कट्टर द्वेषी थे । और इन्होंने बहुतसी बौद्धकीर्तियोंको विनष्ट किया । पुष्पमित्रके लड़के अग्निमित्रने मालव विदर्भ और विदिशा प्रान्तको जीता था। विदर्भराजने यज्ञसेनको पराजित कर विदर्भराज्यको दो भागोंमें बाँटा था और माधवसेनको एक विभागका शासनकर्ता बनाया। उन्होंने तो स्वयं विदिशा राज्यके सिंहासनकों सुशोभित किया। इस घटनाका विशेष उल्लेख कालिदासके ' मालविकाग्निमित्रमें ' है । पुष्पमित्रके पहले दिमेत्रियस वा देवमित्रने पंजाब और सिंधुदेशपर अपना अधिकार किया था। पुष्पमित्रके समयमें यवनलोग सिन्धुदेशका शासन करते थे। यवन मिनंदर वा मिलिन्द पुष्पमित्र अथवा अग्निमित्रके समकालीन थे। संभवतः सुक्कुर[1] इन लोगोंकी राजधानी थी। नागसेनद्वारा ये बौद्ध-धर्म्मसे दीक्षित हुएं। इन्ही यवनोंने अयोध्या नगरीपर आक्रमण किया था, तथा माध्यमिक (बौद्ध सांप्रदायिकों) के साथ युद्ध किया था। क्योंकि, पतंजलिके महाभाष्यमें लिखा है कि:—

अरुणद् यवनः साकेतं अरुणद् यवनः माध्यमिकान् ।

[1] आधुनिक सिन्धप्रान्तका सक्कर शहर प्राचीन कालका सुक्कुर हो सकता है। सम्पादक.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निस्सन्देह यह बात सर्व-मान्य हो चुकी है कि मिलिन्द राजाने शुंगवंश राज्याधिपति महाराज पुष्पमित्रकी अधीनता स्वीकार की थी। पुष्पमित्रने ३० वर्षतक राज्य करके देहत्याग किया। इनकी मृत्युके अव्यवहित पूर्व यानि अनुमानतः १२२ बी. सी. में यूतिगण हूणों अर्थात् हूण जातीसे आक्रांत होकर पश्चिमाभिमुख ताड़ित हुए। वे यूसून* जातिको पराजित कर उनके स्वामीको विनष्टकर चुके। कुछ कालकेबाद चीनलोगोंने हूण, यूशून, आर्कच्छोद (Ugarit) प्रभृति जातियोंकी सहायतासे यूतियोंको विताड़ित किया और वे पश्चिमकी ओर जाकर 'से' अथवा 'स्यू' जातिके वासस्थानपर अधिकार करने लगे। यह घटना १७८ बी. सी. की है, कालक्रमसे 'स्यू' × स्थानसे ताड़ित होकर 'ताहि' राज्यपर इन्होंने अधिकार जमाया। यही 'ताहि' राज्य टॉलेमीका लिखा हुआ Daei संभवतः हो सकता है। यह पार्थिआ अर्थात् पारदके पूर्व-दक्षिण एवं 'एरिआ' अर्थात् 'हिरात' अंचलके उत्तर-पश्चिममें विद्यमान था। इसका समय अनुमानतः १६५ बी. सी. है। ताहिर राज्यको कुछ कालतक अधिकार करनेपर 'यूति' जाति पराक्रान्त हो उठी। 'यूमी' वा 'ह्यूमी' 'संगमाई' 'कुशंग,' वा 'कुशन' 'यातून' वा 'हितून' एवं 'त्यूमि' ये एक एक जाति उनके साथ सम्मिलित होती है और सब जातियां (उल्लिखित जातियां) 'यूति'† नामसे प्रख्यात हुईं।

§ पंजाबमें जो आजकल एक झंग ज़िला है वह इसी शुंगकी स्मृति करा रहा है। क्योंकि शुंग, चंग, झंग, ये एक जातीय शब्द हैं। चीन इतिहास-पुस्तकमें जो संगमाई लिखा है वह चकमा जातिका-वाचक हो सकता है। शुंग सक चंग चक ये समानार्थवाची शब्द हैं, इसलिये हमारा अनुमान है कि शुंग जाति जो है वह शक जातिकी एक शाखा है।

* यह यूशून जाति टाल्मकी लिखी हुई (Asioni) एशी ओनाई जाति है। यासिन उपत्यकाहीके नामके सदृश यह एशिओनाई है। संस्कृत ग्रंथादिकोंमें वे अर्जुनायन नामसे प्रसिद्ध है। महाभारतमें आर्जानक और उज्झान ये दो शब्द मिलते हैं। झींदावेस्ता नामक ग्रंथमेंभी इसीको 'एजनवेजू' लिखा है। इससे उज्जयनी भोजभी इसीका शब्दान्तर ज्ञात होता है।

× स्यू जातियोंका जो वासस्थान है वही Seisthan अब प्रख्यात है।

† यू-मि जाति युमोडस (Emodus) वा हिमवत् प्रदेशवासीनी है। पुराणमें यह अम्बष्ठ नामसे प्रसिद्ध है। संगमाई जाति 'सोम' है। सोम-चम्-जम् यह अभिन्नार्थक शब्द है। इनका वासस्थान जम्बूद्वीप है। कुशंग (कुसन) जातिभी वर्तमान खस जाति समझनी चाहिये। यही गुशन (गुशंग) भी कही जा सकती है। इसीके नामानुसार काश्मीर एक देशका नाम पड़ा है। क्योंकि काश्मीरका दूसरा शब्द 'कश्यपूर' वा 'खसपूर' हो सकता है। कौशांबी भी इसी शब्दसे बना है, इनका अधिष्ठित स्थान 'कुशावर्त' है। कौशाम्ब और कुशावर्त जो प्राचीन पौराणिक नाम हैं वे कुशन जातिके नामानुसार रक्खे गये हैं। ये तो नई जाति हैं। या-तूनका वासस्थान संभवतः फाहिआन उल्लिखित उद्यान हो सकता है। और यह जाति राजपुतानेकी रहनेवाली तो नहीं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यूथी, डिमस, डिमेट्रिअस, एवं युक्रेटैडिसके समयमें यूतिगणोंने उनकी अधीनता स्वीकृत की थी। युक्रेटैडिसकी मृत्युके बाद उनके वीर पुत्र एपोलोरोड्स एवं हिल्यूकीलिसके बीचमें गृहविवाद उपस्थित हुआ। इसी सुयोगमें पार्थिआ राजा (पारद राजा) प्रथम मिजिटेड्सने (मित्रदत्त प्रथमने) बाल्हिक वा ब्याक्ट्रिआ (बगध) पर आक्रमण किया और उक्त राज्यका उपभोग किया। उन्होंने एरिया Arákosia Drangiana गान्धार, पंजाबपर्यंत राज्य विस्तार किया था। अनुमानतः १४५ बी. सी. इस घटनाका समय निश्चित किया जा सकता है। इसके बाद हेल्यूकालिस सिंधप्रदेशमें भाग गया। पश्चात् तक्करगण यूथिजातिके साथ मिल गये और वे यूथिजातिके शाखान्तर्गतसे परिगणित होने लगे। राजपूत राजतरंगिणीसे मालूम होता है कि, अनुमानतः १३५ बी. सी. में यूथिगणोंने काश्मीरपर आक्रमण किया था। १२८ या १२७ बी. सी. में मिथ्रिडेटिसके पुत्र फ्रैटिस यूतिगणोंके साथ युद्धके लिये उद्युक्त हुआ। फ्रौटिसका चचा आर्तवान् संभवतः उदयन तोखर वा तक्कर लोगोंके साथ युद्ध में आसक्त हुआ और अनुमानतः १२४ बी. सी. में वह माराभी गया।

इकके बाद यूतिगणोंने बाल्हिक राज्यको विध्वस्त किया। किन्तु मित्रिडेटिस द्वितीयने उनको पराजित कर पंजाबतक पारद राज्यका शासन किया। उस समय शुंगराजगण पाटलिपुत्रका शासन कर रहे थे। किन्तु गांधार प्रभृति प्रदेशके छत्रपगणोंने शुंगराजाकी अधीनता स्वीकार की थी। जब पारद राज्यकी क्षमता कुछ कम हो चली तो यूतिगण सिंध और गुजराततक बढ़ चले। ११४ बी. सी. में नरवाहन वा नभवाहन उज्जयनी सिंहासनपर अधिरूढ हुएं। जैनग्रंथानुसार* ज्ञात होता है कि, उन्होंने ७४ बी. सी. तक राज्य किया था। अनुमानतः ७८ बी. सी. तक कुजूल कदफिसने पारद राजाओंको पराजित कर काश्मीरके उत्तर-पूर्व सब प्रदेशोंपर अधिकार जमा लिया।

चीन इतिहासग्रंथोंमें लिखा है कि, युशन जातिसे यूति जातिके पराभवके सौ बरसके बाद कुदुलकदफिसने इस प्रदेशको हस्तगत किया। इससे प्रमाणित होता है कि, १७८ − १०० = ७८ में यह घटना हुई है। जैनग्रंथोंसे मालूम होता है कि, गर्दभिल्ल वा गदल्प (Kotulphus) ने उज्जयनीको हस्तगत किया। गर्दभिल्लने तेरह बर्षतक मालवका शासन किया। जैन **कालकाचार्यकी** भगिनी **सरस्वती देवीके**

है। त्यू-मी डुम वा डुम होसकता है। इनका वासस्थान दार्व है। यह डुम जाति आज कल दारदके शाखान्तर्गत मानी जाती है। यह जाति प्राचीनमें 'दोमर' वा 'तोमर' नामसे परिचित थी।

* मेरुतुंगाचार्यकी ग्रंथावलीमें यह बात विस्तृत लिखी है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ऊपर बल प्रकाश करके गर्दभिल्ल उसको ले गयां। किन्तु कालकाचार्यने शकराज्यकी साहायतासे उसको सिंहासनच्युत करके शकको अधिकारी बनाया। शकराजाने चार बरसों तक मालवका राज्य किया। गर्भभिल्लके पुत्र विक्रमादित्यने उनको पराजित करके मालव सिंहासनका आधिपत्य ग्रहण किया। इसी लिये सर्व साधारण विक्रमादित्यको **शकारि विक्रमादित्य** कहते हैं। इस विक्रमादित्यने ५७ बी. सी. में अपना सम्बत् प्रचलित किया। इन्होंने साठ वर्ष राज्य करके इस असार संसारको छोड़ा। जैन ग्रंथोंसे यह मालूम होता है कि, विक्रमादित्यके पुत्र विक्रमचारित्र वा धर्मादित्यने चालीस वर्षोंतक मालवप्रान्तका शासन किया। धर्मादित्यके पुत्र भैल्यने ११ वर्षतक राज्य किया, इसके बाद नैल्यने १४ वर्षतक राज्य किया। एवं नहड़ वा नहद (Nahada) ने दश वर्ष राज्य किया। नहदके समयमें सुवर्णगिरि—शिखरपर श्री १००८ **महावीर** स्वामीका एक बड़ा मंदिर निर्माण हुआ। विक्रमादित्यका जैनधर्ममें पक्षपात था इसी लिये उनका जैनग्रंथोंमें उल्लेख है। बहुतसे लोगोंको विक्रमादित्यके अस्तित्वमें संदेह है किन्तु संदेहका कुछ विशेष कारण नहीं ज्ञात होता। दो हजारवर्ष पूर्व जिनका अस्तित्व माना गया है और जिनका उल्लेख बड़े बड़े जैन-ग्रंथोंमे विशद भावसे किया गया है, सो आज उन्हींके अस्तित्वमें संदेह हो? यह विषय हमसे क्षुद्र व्यक्तिके सर्वथा अगोचर है। विक्रमादित्यके नामसे कई उपाख्यान प्रचलित होनेहीसे इनका नाम इतिहास ग्रंथोंसे निकालना यह बात हमे युक्तियुक्त तथा प्रमाणसंगत नहीं मालूम पड़ती। विदेशी विद्वानोंमेभी अनेक विद्वानोंकी सम्मति यही है कि, विक्रमादित्य अवश्य पहले थे। इनमेंसे कोई कोई महाराज कनिष्ककोही विक्रमादित्यके नामसे प्रख्यात करते हैं। सम्बत् प्रतिष्ठाता कनिष्क हैं कि नहीं इसी बातकी आलोचना करनी परमावश्यक है। "किन्तु सम्बत् प्रतिष्ठाता विक्रमादित्य हैं ऐसा विश्वास करनेसे सत्यका अपलाप होता है" इस वाक्यसे मैं कदापि सहमत नहीं।

सौराष्ट्रके क्षत्रप नहपानकी खोदितलिपिमें ४१, ४२, ४५, ४६, वर्षका उल्लेख मिलता है। नहपान खगरात वा खहरात्त वंशीय थे बहुतसे लोग इन चार वर्षोंको शक वर्ष मानते हैं। किन्तु मेरी समझमें इन चार वर्षोंको संबत्ही रूपसे परिगणित करना ठीक है। शक वर्षके माननेसे नहपान (नभवाहन) १२४ वर्षतक जीवित थे, ऐसा अनुमान होने लग जाता है। किन्तु जयदाम (जयधर्म) के पुत्र रुद्रदाम (रुद्रधर्म) ७२ शकाब्दिके पूर्व अर्थात् १५० ए. डी. के. पूर्व विद्यमान थे। रुद्रदामके पिता जयदाम, एवं पितामह चष्टन टॉलेमीका (Tiastanes) वा थोटन साराष्ट्रका शासन करते थे। ये चष्टन शक वंशीय थे। इसलिये १५०–१२४=२६

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वर्षके बीचमें दो राजाओंका राज्यत्व-काल शेष होना, यह संभवपर नहीं मालूम होता। इस विषयमें बाबू राखालदास वन्द्योपाध्यायकी युक्ति हमे सारगर्भित मालूम पड़ती है। हमारी समझमें नहपानके वर्ष ४१, ४२, ४६, ४८, सम्बत् माननेमें कोई आपत्ति नहीं देख पड़ती। किन्तु राखालबाबू इसको विक्रम संवत् नहीं मानकर एक तीसरे संबत्की कल्पना करते हैं। किन्तु इस अंचलमें तीसरे सम्बत्के नाम निशान नहीं मिलनेसे इस कल्पनाके माननेमें हम सर्वथा असमर्थ हैं। इसे विक्रमसंवत्ही मानना उचित है।

विक्रमादित्यकी वृद्धावस्थामें नहपान (नभवाहन) एवं इनके जामाता ऋषदत्तद्वारा मालवकी पराजय संघटित होना कुछ असंभव नहीं। विक्रमादित्यके वंशधरोंने संभवतः नहपानके वंशधरोंकी अधीनता स्वीकार की थी। इसके बाद इन लोगोंने चष्टन (चोटन) की भी वशता स्वीकृत की थी। गौतमीपुत्र सातकर्णीने खगरात एवं शकोंको पराभूत कर दक्षिणदेशमें आंध्र नगरकी प्रतिष्ठा की थी। इन्होंनेही शकाब्दका प्रचार किया है, ऐसा अनुमान होता है। अनुमानतः ८० ए. डी. में चष्टनने मालवको अपने अधिकारमें किया था। आंध्र राजाओंके साथ इनके वंशधरोंको हमेशः युद्ध होता था। आखीरमें रुद्रदामने सातकर्णीके वंशसे विवाहसंबंध शृंखलित किया।

शकाब्दके प्रचारके पूर्व संपूर्ण भारतमें केवल विक्रम-सम्बत् प्रचलित था, यह अनुमान हमे युक्तियुक्त जचता है। मथुराके महाक्षत्रप रज्जबुल वा राजुलके पुत्र सुदास नहपानके समसामयिक था। मथुराके एक शिलालेखसे उनका राज्यकाल ४२ वर्ष तक होता है और दूसरे शिलालेखसे ७२ संवत्सर ज्ञात होता है। ये दोनों संवत्सर विक्रमवर्षानुसारसे परिगणित करना उचित है। ऐसा होनेसे 'सुदासने' १५ खिस्ताब्द बी. सी. से १६ ए. डी. तक अर्थात् ३० वर्षसे कुछ विशेष काल तक राज्यत्व किया होगा।

डॉ. भोगेलने लिखा है कि, सुदास और कनिष्क प्रायः समसामयिक थे। राखालबाबूने लिखा है कि, सुदासका अभिषेक-काल ३० बी. सी. से २८ ए. डी. के मध्यवर्ती मानना चाहिए। सुतराम् इन दोनोंकी उक्तिसे मेरे अनुमानका सामंजस्य सुलभतया हो जाता है। सुदास तक्षशिलाके क्षत्रप, लियककुसुलक-पुत्र पतिके समसामयिक थे। पतिकी ताम्रलिपिमें ७८ संवत्सर अर्थात् २१ ए. डी. लिखा हुआ है। सुदास और पति दोनो कनिष्कके आधीनस्थ थे।

(शेष आगे.)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सेनगण-पट्टावली ।

(२)

बद्धाष्टकर्मनिर्घाटनपटुशुद्धेद्धराद्धान्तप्रभाबोधितनवखण्डमण्डनश्रीनेमिसेनसिद्धान्तीनाम् ॥ २० ॥

अतीवघोरतरतरांतपनसंतप्तत्रैलोक्यप्राणिगणतापनिवारणकारणच्छत्रायमानश्रीमच्छ्रीछत्रसेनाचार्याणाम् ॥ २१ ॥

उग्रदीप्ततप्तमहातपोयुक्तार्यसेनानाम् ॥ २२ ॥

संयमसंपन्नश्रीलोहसेनभट्टारकाणाम् ॥ २३ ॥

नवविधबालब्रह्मचर्यव्रतपूर्वकपरब्रह्मध्यानाधीनश्रीब्रह्मसेनतपोधनानाम् ॥ २४ ॥

भव्यजनकमलसूरसेनभट्टारकाणाम् ॥ २५ ॥

दारुसङ्घसंशयतमोनिमग्नाशाधरश्रीमूलसंघोपदेशापितृवनस्वर्यातककमलभद्रभट्टारकाणाम् ॥ २६ ॥

सारत्रयसंपन्नश्रीदेवेन्द्रसेनमुनिमुख्यानाम् ॥ २७ ॥

विहारनगरीप्रवेशसमयसारस्कन्धाष्टकथनालापाख्यानबाणबाधाहरणगंगामध्यपट्टाभिषेकनिरूपकत्रैविद्यकुमारसेनयोगीश्वराणाम् ॥ २८ ॥

अंगवादिवाङ्गशीलकडि(लि)ङ्गवादिकालानलकाश्मीरवादिकल्पान्तग्रीष्म-नैपालवादिश्वापानुग्रहसमर्थगौडवादित्रह्मराक्षस-वालेवादिकोलाहलद्राविडवादित्राटनशीलतिलिङ्गवादिकलङ्ककारीदुस्तरवादिमस्तकशूल-उड्डीयदेशेऽश्वगजपतिसभासन्निविष्टप्रचण्डयमदण्डसुण्डालसुण्डादण्डखण्डनकालदण्डमण्डलदोर्दण्डमण्डितश्रीदुर्लभसेनाचार्याणाम् ॥ २९ ॥

तपःश्रीकर्णावतंसश्रीषेणभट्टारकाणाम् ॥ ३० ॥

दुर्वारदुर्वादिगर्वखर्वपर्वतचूर्णीकृतकुलिशायमानदक्षपरिराजलक्ष्मीसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३ ॥

नवलक्षधनुराधीशदशसप्तलक्षदक्षिणकर्णाटकराजेन्द्रचूडामौक्तिकमालाप्रभामधूनी (?) जलप्रवाहप्रक्षालितचरणनखबिम्बश्रीसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३२ ॥

जलकेश्वरपुराद्भरवच्छनगरेराजाधिराजपरमेश्वरयवनरायशिरोमणिमहम्मदपातशाहसुरत्राणसमस्यापूर्णादखिलदृष्टिनिपातेनाष्टादशवर्षप्रायप्राप्तदेवलोकश्रीश्रुतवीरस्वामिनाम् ॥ ३३ ॥

भंभेरीपुरधनेश्वरभट्टभ्रष्टीकृतानलनिहितयज्ञोपवीतादिविजितसिंहब्रह्मदेवसधर्म्मशर्मकर्मनिर्मलान्तःकरणश्रीमच्छ्रीधारसेनाचार्याणाम् ॥ ३४ ॥

हावभावविभ्रमविलासविलासाविभ्रमभृङ्गारभृङ्गीसमालिङ्गितबालमुग्धयौवनविदग्धाखिलाङ्गनामनोवाक्कायनवविधबालब्रह्मचर्यव्रतोपेतश्रीदेवसेनभट्टारकाणाम् ३५

अनेकभव्यजनचातकनिकरतृषाधिकारकरणमधुरवाग्धारासारसयुतनूतनतन पितृसदृशश्रीदेवसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३६ ॥

तत्पट्टोदयाचलप्रभाकरनित्याद्यैकान्तवादिप्रथमवचनखण्डनप्रचण्डवचनाडम्बरषट्दर्शनस्थापनाचार्यषट्तर्ककचक्रेश्वरडिल्लि (Delhi) सिंहासनाधीश्वरसार्वभौमसाभिमानवादीभसिंहाभिधनवत्रैविद्यश्रीमच्छ्रीसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३७ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तत्पट्टार्द्धिवर्द्धनैकपूर्णचन्द्रायमानाभिनववादिसंस्कृतसर्वज्ञप्राकृतसंस्कृतपरमेश्वरवक्त्रपंजरसमानानाम् अंगवंगकलिंगकाश्मीरकाम्भोजकर्णाटकमगधपालतुरलचेरल (मलह) केरभाटंजितविद्वज्जनसेवितचरणारविन्दानां श्रीमूलसंघवृषभसेनान्वयपुष्करगच्छबिरुदावलिविराजमानश्रीमद्गुणभद्रभट्टारकाणाम् ॥ ३८ ॥

तत्पट्टोद्यादिदिवाकरायमाणश्रीमत्कर्णाटकदेशस्थापितधर्मामृतवर्षणजलदायमानधीरतपश्चरणाचरणप्रवीणश्रीवीरसेनभट्टारकाणाम् ॥ ३९ ॥

विगताभिमानतपगतकषायांगादिविविधग्रन्थकरणैककुशलताभिमानश्रीयुक्तवीरभट्टारकाणां ॥ ४० ॥

तत्पट्टे सर्वज्ञवचनामृतस्वादकृतात्मकायसद्धर्मोदधिवर्द्धनैकचन्द्रायमाणतर्ककर्कशपुष्करायमाणमन्मथमथनसमुद्भूतत्रिविधवैराग्यभावितभागधेयजनजनितसपर्याश्रीमाणिकसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४१ ॥

तत्पट्टोदयाचलदिवाकरायमाणानेकशब्दार्थान्वयनिश्चयकरणविद्वज्जनसरोजविकाशनैकपटुतरायमानश्रीगुणसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४२ ॥

तदनुसकलविद्वज्जनपूजितचरणकमल-भव्यजनचित्तसरोजनिवासलक्ष्मीसदृशलक्ष्मीसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४३ ॥

विबुधविविधजनमनइन्दीवरविकाशनपूर्णशशिसमानानां, कविगमिकवादवाग्मित्वचातुर्विधपाण्डित्यकलाविराजमानानां, नयनियमतपोबलसाधितधर्मभारधुरंधराणां, अखिलसुखकरणसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४४ ॥

मिथ्यामततपोनिवारणमाणिक्यरत्नसमदिव्यरूपश्रीमाणिक्यसेनभट्टारकाणाम् ४५

आशीविषदुष्टकर्कशमहारोगमदगजकेसरिसिंहसमानानां,अनेकनरपतिसेवितपादपद्मश्रीगुणभद्रभट्टारकाणाम् ॥ ४६ ॥

तत्पट्टे कुमुदवनविकाशनैकपूर्णचन्द्रोदयायमानललितविलासविनोदितात्रिभुवनोदरस्थविबुधकदम्बकचन्द्रकरनिकरसन्निभयशोधरधवलितदिङ्मंडलानां, श्रीमदभिनवसोमसेनभट्टारकणाम् ॥ ४७ ॥

तत्पट्टे महामोहान्धकारतमसोपगूढभुवनभवलग्नजनताभिदुस्तरकैवल्यमार्गप्रकाशनदीपकानां, कर्कशतार्किककणादवैयाकरणबृहत्कुम्भीकुम्भपाटनलंपटधियां, निजस्वस्याचरणकणखञ्जायितचरणयुगाद्रेकाणां, श्रीमद्भट्टारकवर्यसूर्यश्रीजिनसेनभट्टारकाणाम् ॥ ४८ ॥

तत्पट्टोदयाचलप्रकाशकरदिवाकरायमाण-श्रीमज्जिनवरवदनविनिर्गतसप्तभङ्गीनवनयोयमनयात्मकद्वादशांगाब्धिवर्द्धनैकषोडशकलापरिपूर्णचन्द्रायमानाज्ञानजाड्यमुद्रितभव्यजनचित्तसरसरसीरुहप्रबोधकस्ववचनरचनाडम्बरचारुचातुरीचमत्कृतत्सुरगुरुप्रख्यायमाणस्वगणाग्रावलिसिंचनधारायमाणकोटिमुकुटमहावादिराजराजेश्वरकाव्यचक्रवर्तिश्रीमच्छ्रीसमन्तभद्रभट्टारकाणाम् ॥ ४९ ॥

श्रीमद्रायराजगुरुवसुन्धराचार्यवर्यमहावादवादीपितामहविद्वज्जनचक्रवर्तिकडिकडिवाणपरिग्रहविक्रमादित्यमध्याह्नकल्पवृक्षसेनगणाग्रगण्यपुष्करगच्छबिरुदावलिविराजमानदिल्लि (Delhi) सिंहासनाधीश्वरछत्रसेनतपोऽभ्युदयसमृद्धिसिध्यर्थं भव्यजनैः क्रियमाणैः जिनेश्वराभिषेकमवधारयन्तु सर्वे जनाः ॥ इति सेनपट्टावली ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सेनगणकी पट्टावलीका भाषानुवाद.

बन्धकारक अष्ट कर्मोंसे छुड़ानेमें चतुर, बने हुए शुद्ध और वर्द्धित सिद्धान्तकी शोभासे बोधित नव खण्डोंकी शोभा श्रीमान् नेमिसेन सिद्ध हुएं ॥ २० ॥

बहुत भयंकर तापसे तप्त, तीनों लोकोंके प्राणियोंके तापको हटानेवाले बल्कि उस तापके हटानेके लिये छत्रकेसे श्री छत्रसेनाचार्य हुएं ॥ २१ ॥

बहुत प्रकाशमान तथा तेज महातपसे युक्त श्री आर्यसेन आचार्य हुएं ॥ २२ ॥

बड़े संयमी श्री लोहाचार्य भट्टारक हुएं ॥ २३ ॥

नव प्रकारके ब्रह्मचर्यव्रतके साथ परमेश्वरके ध्यानमें लीन श्रीब्रह्मसेन महातपस्वी हुएं ॥ २४ ॥

कमलरूपी भविक जनोंके लिये सूर्यके समान श्रीसुरसेन भट्टारक हुएं ॥ २५ ॥

काष्ठासंघके संशयरूपी अन्धकारमें डूबे हुएको आशा देनेवाले श्रीमूलसंघके उपदेशसे पितृलोकके वनरूपी स्वर्गसे उत्पन्न श्रीकमलभद्र भट्टारक हुएं ॥ २६ ॥

सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यद्दर्शनरूप रत्नत्रयसे युक्त श्री मुनीश्वर देवेंद्रजी हुएं ॥ २७ ॥

विहारनगरमें प्रवेशके समय सारस्कन्धाष्टकके कथनका अनल्पाख्यान बाणबाधाका हरण और गंगाके बीचमें पट्टाभिषेक करनेवाले श्री योगीश्वर कुमारसेन हुएं ॥ २८ ॥

अंगवादियोंके लिये भंगशील, कलिङ्गवादियोंके लिये कालाग्नि, काश्मीर वादियोंके लिये प्रलयकालकी उष्णता, नैपाल वादियोंके लिये शाप–क्षमा करनेमें समर्थ, द्राविड़वालोंके लिये त्रोंटनशील, गौड़ वादियोंके लिये ब्रह्मराक्षस, केवल वादियोंके लिये कोलाहल, तैलंग वादियोंके लिये शिरोव्यथा, उड्डीय देशमें गजाश्वादिके स्वामी सभामें प्रविष्ट उग्र यम-दण्ड, बड़े भारी गजराजकेभी सुण्डादण्डको छिन्न भिन्न करनेवाले, कालदण्डसे शोभित बाहुवाले श्री दुर्लभसेनाचार्य हुएं ॥ २९ ॥

सूर्य और भगवतीसम्बन्धी कापालिक, पार्विक मीमांसक, वेदान्ती और वैशेषिक शास्त्रके जाननेवाले भट्ट प्रभाकर और कणाद गणेशके पूजकोंके सुखे हुए तर्कका उग्रबोध, बत्तीश घटवादियोंको उद्घाटन करनेमें समर्थ श्रीमान् धरसेनाचार्य हुएं ॥३०॥

तपस्याहीको कर्णभूषण माननेवाले ऐसे श्रीमान् श्रीषेण भट्टारक हुएं ॥ ३१ ॥

दुर्वार्य जो दुर्वादियोंके पर्वत हैं उनके चूर्ण करनेके लिये वज्रके समान, दक्ष पक्षिराज श्रीलक्ष्मीसेन भट्टारक हुएं ॥ ३२ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नवलक्ष धनुर्धरोंके स्वामी, दक्षिण कर्नाटकीय सत्रह लाख राजाओंके मस्तकोंकी मणिमालाकी प्रभासे उद्भासित, मधुजलकी धारामें धुले हुए चरणनखबिम्बवाले श्री सोमसेन भट्टारक हुएं ॥ ३३ ॥

अलकेश्वरपुरके भरोच नगरमें राजेश्वर स्वामी यवनराजाओंमें श्रेष्ठ महम्मद बादशाहके त्राण समस्याकी पूर्तिसे तथा दृष्ट होनेसे अट्ठारह वर्षकी आवस्थामें स्वर्ग गए हुए श्री श्रुतवीर स्वामी हुएं ॥ ३४ ॥

भंभेरीपुरमें धनेश्वर भट्टसे भ्रष्टकर्म हुए अग्निमें फेंके हुए यज्ञोपवीतादिके द्वारा जीते हुए ब्रह्मदेवके धर्म्मके सुखसे शुद्धान्तःकरण श्रीमान् श्रीधरसेनाचार्य हुएं ॥ ३५ ॥

हाव, भाव, विभ्रम और विलासकी शोभाके शृंगाररूपी भृङ्गी आलिंगन किये हुए बाल्यावस्था और युवती नागरिक स्त्रियोंसे मनवचनकायसे मुक्त तथा नवप्रकारके ब्रह्मचर्यसे युक्त श्री देवसेन भट्टारक हुएं ॥ ३६ ॥

उनके पट्टके उदयाचलका सूर्य्य नित्यादि एकान्तवादीके प्रथम वचनके खंडनकारक उग्र विस्तारवाले छहो दर्शनके स्थापनके आचार्य, छः तर्कशास्त्रके स्वामी दिल्ली सिंहासनाधि पति, सार्वभौम अभिमानयुक्त वादीरूप हाथीके लिये सिंहकेसे त्रिकालज्ञ श्री सोमसेन आचार्य हुएं ॥ ३७ ॥

उनके पट्टकी वृद्धिसे पूर्ण चन्द्रमाके सदृश, अभिनववादी, संस्कृत जाननेवाले, प्राकृत और संस्कृत भाषाके स्वामी वज्रपंजरके तुल्य अंग, वंग, कलिंग, काश्मीर, कम्भोज, कर्नाटक, मगध, पाल, तुरल, चेरल और केरलके जीते हुए विद्वानोंसे सेवित चरणवाले श्रीमूलसेन वृषभवंश पुष्कर गच्छ बिरुदावलीमें विराजमान गुणभद्र भट्टारक हुएं ॥ ३८ ॥

अनेक शुभचिन्तक मनुष्यरूपी चातकके समूहको प्रसन्न करनेवाले मधुवातकी धारासे मुक्त नये शरीर बनानेवाले श्री देवसेन भट्टारक हुएं ॥ ३९ ॥

उनके पट्टरूपी उदयाचलका सूर्य, कर्नाटक देशमें स्थापित किये हुए धर्म्मकी अमृतवर्षासे मेघके ऐसे, कठोर तपस्या करनेमें निपुण श्री वीरसेन भट्टारक हुएं ॥४०॥

अभिमानरहित तपस्यासे नष्ट रागवाले अंगादि विविध ग्रन्थ रचनेसे पाण्डित्य गर्वसे युक्त श्रीयुत वीर भट्टारक हुएं ॥ ४१ ॥

उनके पट्टमें सर्वज्ञ देवके वचनामृत स्वादसे तथा सच्चे धर्मरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये चंद्रमाके ऐसे, अपने शरीरको बनानेवाले, मदनको मथन करनेसे त्रिविध वैराग्यको प्रगट करनेवाले, भावी भाग्यशाली जनोंसे पूजित श्री माणिकसेन भट्टारक हुएं ॥ ४२ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इनके पट्टरूपी उदयाचलपर सूर्यकेसे अनेक शब्दार्थान्वयको निश्चय करनेवाले, विद्वज्जन–सरोजके प्रस्फुटित करनेमें अत्यन्त पटु श्रीगुणसेन भट्टारक हुएं॥ ४३ ॥

इसके बाद सभी पण्तिजनोंसे पूजित पाद–पद्मवाले और भविकजनोंके चित्तसरोजमें लक्ष्मीके ऐसे निवास करनेवाले श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक हुएं ॥ ४४ ॥

देवता तथा विविध जनोंके मनकुमुदके प्रकाश करनेमें पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य, काव्य, न्याय, शास्त्रार्थ तथा वाग्मिता, चतुर्विध पाण्डित्य कलासे विराजमान, यम, नियम और तपोबलसे साधित धर्मके भारको धारण करनेवाले और सभी को सुखसंपन्न करनेवाले श्रीसोमसेन भट्टारक हुएं ॥ ४५ ॥

मिथ्यामतकी तपस्याका निवारण करनेवाले, माणिक्यरत्न तथा रत्नत्रयसे युक्त श्रीमाणिक्यसेन भट्टारक हुएं ॥ ४६ ॥

सर्पके लिये दुष्ट कर्कश महोरगके ऐसा, और मत्त हस्तीके लिये सिंहके समान, अनेक राजाओंसे चरणकमल पूजे जानेवाले श्रीगुणभद्र भट्टारक हुएं ॥ ४७ ॥

उन्हीके पट्टमें जनरूपी कुमुदवन विकाश करनेमें पूर्ण चन्द्रोदयके ऐसे सुन्दर विलाससे विनोदित किये गये त्रिभुवनोदरस्थ विबुधकदम्ब और चन्द्रकिरणके सदृश यशोधरसे दिङ्मण्डलकोभी उज्ज्वल करनेवाले श्रीमान् अभिनव सोमसेन भट्टारक हुएं ॥४८॥

उनके पट्टमें महामोहान्धकारसे ढके हुए संसारके जनसमूहोंसे दुस्तर कैवल्यमार्गको प्रकाश करनेमें दीपकके ऐसे, बड़े दुर्द्धर्ष नैयायिक, कणाद, वैयाकरणोंके बृहत्कुम्भोत्पाटन करनेमें लम्पट बुद्धिवाले.....श्रीमद्भट्टारकवर्योमें सूर्य श्री जिनसेन भट्टारक हुएं ॥ ४९ ॥

अज्ञान और जड़तासे मुद्रित, भविक जनोंके चित्तसरोजको खिलानेवाले, अपने वचनकी रचनाचातुरीके आडम्बरसे बृहस्पतिकोभी चमत्कृत करनेवाले, अपने गणाग्र बल्लीको सींचनेके लिये धाराके ऐसे, करोडों मुकुटवादियोंके राजराजेश्वर काव्य सार्वभौम श्री समन्तभद्र भट्टारक हुएं ॥ ५० ॥

श्रीमान् राजेश्वर गुरु वसुंधराचार्य महावादियोंके पितामह, विद्वानोंमें चक्रवर्ति कड़ि कड़ि (?) वाण परिग्रह विक्रमादित्य मध्याह्नके समय, कल्पवृक्षके ऐसे सेनगणाग्रण्य पुष्करगच्छ बिरुदावलीसे विराजमान दिल्ली सिंहासनाधीश्वर छत्रसेन तपस्याके अभ्युदय करनेवाले समृद्धिकी सिद्धिके लिये भविकजनोंसे जिनेश्वराभिषेकको सब कोई आवधारण करे ।

सेनगणपट्टावली समाप्त ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पद्मपुराण.

अनुक्रम—संख्या ४

विषय—ऐतिहासिक (प्रथमानुयोग)

ग्रन्थकार—रविषेणाचार्य

भाषा—संस्कृत और हिन्दी

लिपि—नागरी

ग्रन्थविवरण—प्राचीन, हस्तलिखित, शुद्धप्रति, पत्र संख्या ४८७, श्लोक-संख्या १८०२३, अध्याय १२३.

ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेका समय सम्वत १८८५.

मंगलाचरण.

श्रीवीतरागाय नमः ॥ श्री पद्मपुराणजी लिख्यते ॥
सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ॥ १ ॥

सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥ २ ॥

प्रथमं चावसार्प्पिण्यां ऋषभं जिनपुंगवम् ।
योगिनं सर्वविद्यानां विधातारं स्वयंभुवम् ॥ ३ ॥

अजितं विजिताशेषबाह्यशारीरशात्रवम् ।
सम्भवं संभवत्यस्मादित्याभिख्यामुपागतम् ॥ ४ ॥

अभिनन्दितनिःशेषभुवनं चाभिनन्दिनं ।
सुमतिं सुमतिं नाथं मतान्तरविनाशनम् ॥ ५ ॥

× × × × ×

मादृशोऽपि वदत्येव चरितं तस्य यत्पुमान् ।
न तच्चित्रं क्रमायात्र परसंदेशदेशनात् ॥ १८ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मत्तवारणसंक्षुण्णे व्रजन्ति हरिणाः पथि ।
प्रविशन्ति भटा युद्धं महाभटपुरस्सराः ॥ १९ ॥

भास्वता भासितानर्थान्सुखेनालोकते जनः ।
सूचीमुखविनिर्भिन्नं मणिं विशति सूत्रकम् ॥ २०

बुधपङ्क्ति-क्रमायातं चरितं रामगोचरम् ।
भक्त्या प्रचोदिता बुद्धिः स्रष्टुं मम समुद्यता ॥ २१ ॥

विशिष्टचिन्तयायातं यच्च श्रेयः क्षणान्महत् ।
तेनैव रक्षिता याता चारुतां मम भारती ॥ २२ ॥

व्यक्ताकारादिवर्णा वाग्लम्भिता या न सत्कथा ।
सा तस्य निष्फला जन्तोः पायादानाय केवलम् ॥ २३ ॥

वृद्धिं व्रजति विज्ञानं यशश्चरति निर्म्मलम् ।
प्रयाति दुरितं दूरं महापुरुषकीर्तनात् ॥ २४ ॥

अल्पकालमिदं जन्तोः शरीरं रोगानिर्भरम् ।
यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २५ ॥

× × × × ×

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना ।
शरीरं स्थाणु कर्तव्यं महापुरुषकीर्त्तनात् ॥ २६ ॥

लोकद्वयफलं तेन लब्धं भवति जन्तुना ।
यो विधत्ते कथां रम्यां सज्जनानन्ददायिनीम् ॥ २७ ॥

सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम ।
अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणौ ॥ २८

सच्चेष्टा-वर्णनावर्णा घूर्णन्ते यत्रमूर्द्धनि ।
अयं मूर्द्धान्य मूर्धात्तुनाडिकेरकरंकवत् ॥ २९ ॥

सत्कीर्तनसुधास्वादसंकुचद्रसनं स्मृतम् ।
अन्यत्तु दुर्वचोधारं कृपाण-दुहितुः फलम् ॥ ३० ॥

श्रेष्ठावौष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्त्तनवर्त्तिनौ ॥
न शम्बुकास्यसंसुप्तजलौका पृष्टसन्निभौ ॥ ३१ ॥

दन्तास्त एव ये शान्तकथासंगमरंजिताः ।
शेषाः श्लेष्म-विनिर्जाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥ ३२ ॥

मुख्यं श्रेयः परिप्राप्ते मुखं मुख्यकथारतम् ।
अन्यत्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुलं बिलम् ॥ ३३ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः ।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥ ३४ ॥

गुणदोषसमाहारे गुणान्गृह्णन्ति साधवः ।
क्षीरवारि–समाहारे हंसाः क्षीरमिवाविलम् ॥ ३५ ॥

गुणदोष–समाहारे दोषान्गृण्हन्त्यसाधवः ।
मुक्ताफलानि संत्यज्य काका मांसमिव द्विपात् ॥ ३६ ॥

अदोषामपि दोषाक्तां पश्यन्ति रचनां खलाः ।
रविमूर्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ॥ ३७ ॥

सरोजलाभमद्वार-जालकानीव दुर्जनाः ।
धारयन्ति सदा दोषान्गुणबन्धनवर्जिताः ॥ ३८ ॥

स्वभावमिति संचिन्त्य सज्जनस्येतरस्य च ।
प्रवर्त्तन्ते कथाबन्धे स्वार्थमुद्दिश्य साधवः ॥ ३९ ॥

× × × × ×

संक्षिप्त सूत्र.

पद्मचेष्टितसंबन्धकारणं तावदत्र च ।
त्रैशलादिगतं वक्ष्ये सूत्रं संक्षेपि तद्यथा ॥ ४५ ॥

वीरस्य समवस्थानं कुशाग्रगिरिमूर्द्धनि ।
श्रेणिकस्य परिप्रश्नमिन्द्रभूतेर्महात्मनः ॥ ४६ ॥

तत्र प्रश्ने युगे यत्नामुत्पत्तिं कुलकारिणाम् ।
भीतिश्च जगतो दुःखकारणाकस्मिकेक्षणात् ॥ ४७ ॥

ऋषभस्य समुत्पत्तिमभिषेकं नगाधिपे ।
उपदेशं च विविधं लोकस्यार्तिविनाशनम् ॥ ४८ ॥

श्रामण्यं केवलोत्पत्तिमैश्वर्यं विष्टपातिगं ।
सर्वामराधिपायानं निर्वाणसुखसंगमम् ॥ ४९ ॥

प्रधनं बाहुबलिनो भरतेन समं महत् ।
समुद्भवं द्विजातीनां कुतीर्थकगणस्य च ॥ ५० ॥

इक्ष्वाकुप्रभृतीनाञ्च वंशानां परिकीर्तनम् ।
विद्याधर–समुद्भूतिं विद्युद्दंष्ट्रस्य सम्भवम् ॥ ५१ ॥

उपसर्गं जयन्तस्य केवलज्ञानसम्पदम् ।
नागराजस्य संक्षोभं विद्याहरणसर्ज्जने ॥ ५२ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अजितस्यावतरणं पूर्णाम्बुदसुतासुखम् ।
विद्याधरकुमारस्य शरणं प्रतिसंश्रयं ॥ ५३ ॥
रक्षोनाथपरिप्राप्तिं रक्षोद्वीपसमाश्रयम् ।
सगरस्य समुद्भूतिं दुःखदीक्षणनिर्वृतेः ॥ ५४ ॥
अतिक्रान्तमहारक्षोजन्मनः परिकीर्तनम् ।
शाखामृगध्वजानाञ्च प्रज्ञप्तिमतिविस्तरात् ॥ ५५ ॥
तडित्केशस्य चरितमुदधेरमरस्य च ।
किष्किन्धान्धखगोत्पादं श्रीमालाखेचरागमम् ॥ ५६ ॥
वधाद्विजयसिंहस्य कोपं चाशानिवेगजम् ।
अंध्रकान्तमरिप्राप्तिं पुरसुन्दरवेशनम् ॥ ५७ ॥
किष्किन्धपुराविन्यासं मधुपर्वतमूर्द्धनि
सुकेशनन्दनादीनां लङ्काप्राप्तिनिरूपणम् ॥ ५८ ॥
निर्घातवधहेतुं च मालिनः सम्पदं परम् ।
दक्षिणे विजयार्द्धस्य भागे च रथनूपुरे ॥ ५९ ॥
पुरे जननमिन्द्रस्य सर्वविद्याभृतां विभोः ।
मालिनः पञ्चतावाप्तिं जन्म वैश्रवणस्य च ॥ ६० ॥
पुष्पान्तक-समावेशं तनयस्य सुमालिनः ।
कैकयस्या सहं योगं चारु स्वप्नावलोकनम् ॥ ६१ ॥
दशाननस्य प्रजनं विद्यानां समुपाशनम् ।
अनावृतस्य संक्षोभमागमं च सुमालिनः ॥ ६२ ॥
मन्दोदर्याः परिप्राप्तिं कन्यकानां निरीक्षणम् ।
चेष्टितं भानुकर्णस्य कोपं वैश्रवणोद्भवम् ॥ ६३ ॥
यक्षराक्षसंसंग्रामं धनदस्य तपस्यनम् ।
लङ्कागमं दशा यस्यस्य प्रश्नचैत्यावलोकनम् ॥ ६४ ॥
श्रीमतो हरिणेशस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ।
त्रिजगद्भूषणाभिख्याद्विरदेन्द्राविलोकनम् ॥ ६५ ॥
यमस्थानच्युतिं चार्करजःकिष्किधसंगमं ।
चोरणं कैकसेयाश्वखरालंकारसंश्रयम् ॥ ६६ ॥
अनुराधामहादुःखं चन्द्रोदरवियोगतः ।
विराधितपुरभ्रंशं सुग्रीवश्रीसमागमम् ॥
बालेः प्रव्रजनं क्षोभमष्टापदमहीभृतः ॥ ६७ ॥
सुग्रीवस्य सुतारायां लाभं साहसगामिनः ।
सन्तापं विजयार्द्धाद्रिगमनं रावणस्य च ॥ ६८ ॥
अनरण्य (?) सहस्रांशु वैराग्यं ज्ञाननाशनम् ।
मधुपूर्वभवाख्यानमुपसंभाभिलाषणम् ॥ ६९ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विद्यालाभं महेन्द्रस्य राज्यलक्ष्मीपरिक्षयम् ।
दशास्यमेरुगमनं पुनश्च विनिवर्त्तनम् ॥ ७० ॥
अनन्तवीर्यसंप्रश्नं दशास्यनियमग्रहम् ।
हनूमतः समुत्पत्तिं कपिकेतोर्म्महात्मनः ॥ ७१ ॥
अष्टापदे महेन्द्रेण प्रल्हादस्याभिलाषणम् ।
वायोः कोपं प्रसादं च तज्जायाप्रजनोज्झने ॥ ७२ ॥
दिगम्बरेण कथनं हनुमत्पूर्वजन्मनः ।
सूतिं हनुसहप्राप्तिं प्रतिसूर्येण कारिताम् ॥ ७३ ॥
भूताटवीं प्रविष्टस्य वायोरिभविलोकने ।
विद्याधरसमायोगमंजनादर्शनोत्सवम् ॥ ७४ ॥
वायुपुत्रसहायत्वं दारुणं परमं रणम् ।
रावणस्य महाराज्यं जैनमुत्सेधमन्तरम् ॥ ७५ ॥
रामकेशव तच्छत्रुं षट्खण्डपरिचेष्टितम् ।
दशस्यन्दनसंभूतिं कैकयावरसम्पदम् ॥ ७६ ॥
पद्मलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतानां समुद्भवम् ।
सीतोत्पत्तिं प्रभाचक्र-हृतिं तन्मात्रशोचनम् ॥ ७७ ॥
नारदालिखितां सीतां दृष्ट्वा मातुर्विमूढताम् ।
स्वयम्वराय वृत्तान्तं चापरत्रस्य चोद्भवम् ॥ ७८ ॥
सर्वभूतशरण्यस्य दशस्यन्दनदीक्षणम् ।
भाचक्रान्यभवज्ञानं विदेहायाश्च दर्शनम् ॥ ७९ ॥
कैकयावरतो राज्यं प्रयाणं भरतस्य च ।
वैदेहीपद्मसौमित्रिगमनं दक्षिणाशया ॥ ८० ॥
चेष्टितं वज्रकर्णस्य लाभं कल्याणयोषितम् ।
रुद्रभूतिवशीकारं वालिखिल्यविमोचनम् ॥ ८१ ॥
निकारमरुणग्रामे रामपुर्य्याभिवेशनम् ।
संगमं वनमालाया अनिवीर्यसमुन्नतिम् ॥ ८२ ॥
प्राप्तिं च जितपद्मायाः कौलदेवविभूषणम् ।
चरितं कारणं रामचैत्यानां वंशपर्व्वते ॥ ८३ ॥
जटायुनियमप्राप्तिं पात्रदानफलोदयम् ।
महानागरथारोहं शम्बूकविनिपातनम् ॥ ८४ ॥
कैकसेयाश्च वृत्तान्तं खरदूषणविग्रहम् ।
सीताहरणशोकं च शोकं रामस्य दुर्द्धरम् ॥ ८५ ॥
विराधितस्यागमनं खरदूषणपञ्चता ।
विद्यानां रत्नजटिन श्चेदं सुग्रीवसंगमम् ॥ ८६ ॥
निधनं साहसगतेः सीतोदन्तं विहाय सा ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यानं विभीषणस्यापि यानं विद्याप्तिं हरिपद्मयोः ॥ ८७ ॥
इन्द्रजित्कुम्भकर्णाद्धरपत्रपबन्धनम् । (?)
सौमित्रिशक्तिनिर्भेदविशल्याशल्यताकृतिम् ॥ ८८ ॥
रावणस्य प्रवेशं च जिनशान्तिगृहे स्तुतिम् ।
लङ्काभिभवनं प्रातिहार्य्यं देवैः प्रकल्पितम् ॥ ८९ ॥
चक्रोत्पत्तिं च सौमित्रेः कैकसेयस्य हिंसनम् ।
विलापं तस्य नारीणां कैवल्यागमनं ततः ॥ ९० ॥
दीक्षामिन्द्रजितादीनां सीतया सह संगमम् ।
नारदस्य च सम्प्राप्तिमयोध्यायां निवेशनम् ॥ ९१ ॥
पूर्वजन्मानुचरितं गजस्य भरतस्य च ।
तत्प्रव्रज्यां महाराज्यं सीरचक्रप्रहारिणोः ॥ ९२ ॥
लाभं मनोरमायास्तु लक्ष्म्यालिङ्गितवक्षसः ।
संयुगे मरणप्राप्तिं सुमेधोर्लवणस्य च ॥ ९३ ॥
मथुरायां सदेशायामुपसर्ग्गविनाशनम् ।
सप्तर्षिसंश्रयात्सीता निर्वासपरिदेवने ॥ ९४ ॥
वज्रजंघपरित्राणं लवणांकुशसंभवम् ।
अन्यराज्यपराभूतिं पित्रा सह महाहवम् ॥ ९५ ॥
सर्वभूषणकैवल्यसम्प्राप्तावमरागमम् ।
प्रातिहार्यं च वैदेह्याः विभीषणभवान्तरम् ॥ ९६ ॥
तपःकृतान्तवक्त्रस्य परीक्षोभं स्वयम्वरे ।
श्रमणं तु कुमाराणां प्रभामण्डलदुर्म्मृतिम् ॥ ९७ ॥
दीक्षां पवनपुत्रस्य नारायणपरासुताम् ।
रामात्मजतपःप्राप्तिं पद्मशोकं सुदारुणम् ॥ ९८ ॥
पूर्वाप्त देवजनिता द्वोधान्निर्ग्रथिताश्रयम् ।
केवलज्ञानसम्प्राप्तिं निर्व्वाणपदसंगतिम् ॥ ९९ ॥

अन्तिम भाग.

यदि तावदसौ नभश्चरेन्द्र व्यसनं प्राप परांगताहिताशः ।
निधनं गतवाननंगयोगः किमुतान्यो रतिरंगनासु भावः ॥ २९ ॥
सततं सुखसेवितोऽप्यसौ यदशवक्त्रो वरकामिनीसहस्रैः ।
अवितृप्तमतिर्विनाशमागादितरस्तृप्तिमुपेष्यतीति मोहः ॥ ३० ॥
स्वकलत्रसुखं हितं रहित्वा (?) परकान्ताभिरतिं करोति यावत् ।
व्यसनार्णवमत्युदारुमेष प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्पः ॥ ३१ ॥
सुव्रत (ताः) त्वरिता (तं) जन(नाः)भवन्तो बलदेवप्रमुखाः पदं गता यत् ।
जिनशासनभक्तिरामरक्ताः सुदृढं प्राप्य यथाबलं सुदत्तम् ॥ ३२ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम् ।
दुरितस्य फलेन जन्तुदुःखं कुगतिस्थं समुपैत्ययं स्वभावः ॥ ३३ ॥
दुष्कृतं (?) प्रथमं सुदीर्घरोषः परपीड़ाभिरतिर्वचश्च रुक्षम् ।
सुकृतं विनयःश्रुतं च शीलं सदयो वाक्यममत्सरं समश्च ॥ ३४ ॥
न हि कश्चिदहो ददाति किंचित्
द्रविणारोग्यसुखादिकं जनानाम् ।
अपिनाम यदित्सुराददत्ते
बहवः किन्तु विदुःखितास्तदेते ॥ ३५ ॥
बहुधा मदितेन किन्त्वनेन
पदमेकं सुबुधा निबुध्य यस्मात्
बहुभेदविपाककर्मसूक्तं
तदुपायाप्तिविधौ सदा रमध्वम् ॥ ३६ ॥
उपायाः परमार्थस्य कथितास्तत्त्वतो बुधाः ।
सेव्यन्तां शक्तितो येन निष्कामथ भवार्णवात् ॥ ३७ ॥
इति जीवविशुद्धिदानदक्षं परितः शास्त्रमिदं नितान्तरम्यम् ।
सकले भुवने रविप्रकाशः स्थितमुद्योतितसर्ववस्तुजातं ॥ ३८ ॥
द्विशताभ्याधिके समासहस्रे समवेतर्द्धे (?) चतुर्वर्षयुक्ते (?) ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धेश्चरितं पद्ममुनेरिदं निबन्धम् ॥ ३९ ॥
कुर्वन्त्वथात्र सान्निध्यं सर्वाः समयदेवताः ।
कुर्वाणाः सकलालोकं जिनभक्तिपरायणं ॥ ४० ॥
कुर्वन्तु वचनैः रक्षां समये सर्ववस्तुषु ।
सर्वादरसमायुक्ता भव्यालोकसुवत्सलाः ॥ ४१ ॥
व्यंजनान्तं स्वरान्तं वा किञ्चिन्नामेह कीर्तितम् ।
अर्थस्य वाचकः शब्दः शब्दो वाक्यमितिस्थितं ॥ ४२ ॥
लक्षणालंकृतिवाच्यं प्रमाणद्वयमागमं ।
सर्वैश्चामलचित्तेन ज्ञेयमात्र सुखागतम् ॥ ४३ ॥
इदमष्टादशप्रोक्तं सहस्राणि प्रमाणतः ।
शास्त्रमानुष्टुपश्लोकैः त्रयोविंशति संगतः ॥ ४४ ॥

इति प्रशस्तिः ।

इति श्री पद्मचरिते रविषेणाचार्य प्रोक्तं बलदेव निर्वाण-
गमनाभिधानं नाम पर्वः ॥ १२३ ॥

इति श्री रामायणं सम्पूर्णम् ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पद्मपुराणके मंगलाचरण और प्रशस्तिका आशयानुवाद.

मंगलाचरण.

समस्त सिद्ध अर्थके साधक, सिद्धिके प्रधान कारण, सम्यद्दर्शन ज्ञान और चारित्र्यके प्रतिपादक, सुरेंद्रके मुकुटसे आश्लिष्ट पादपद्मवाले, तीनों लोकोंको मंगलप्रद **महावीर** स्वामीको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १–२–॥

प्रथम अवसर्पिणीकालमें होनेवाले जिनपुङ्गव **ऋषभदेव** योगी, संपूर्ण विद्याके जनक स्वयम्भु **अजितनाथ,** बाह्य शरीरके शत्रुओंको जीतनवाले (संभवति अस्मात्) होता है, जिससे इस व्युत्पत्तिसे अन्वर्थ नामवाले **संभवनाथ,** सारे भुवनको आनंदित करनेवाले **अभिनंदन,** मतान्तरको विनष्ट करनेवाले सुबुद्धिशाली **सुमतिनाथको** नमस्कार करता हूं ॥ ३–५ ॥

\+ \+ \+ \+ \+

मुझसे क्षुद्र मनुष्यभी–यदि उनका चरित्र वर्णन करे, तो इसमे आश्चर्य नहीं। क्योंकि, इनका चरित्रवर्णन करना मानों दूसरेका संदेशा सूचित करना है। मदवाले हाथीसे जिस जंगलकी राह बनी हुई है उसमें हरिण अनायास पर्यटन करते हैं। तथा योद्धा लोग महायोद्धाके पीछे पीछे युद्धमें प्रविष्ट होते हैं ॥ १८–१९ ॥

औरभी सूर्यदेवतासे प्रकाशित वस्तुओंको शक्तिरहित मनुष्यभी सुखसे देख सकता है तथा सूचीसे छिद्र किये हुए मोतीमें सूत्रभी प्रविष्ट होता है। २० ॥

इसी प्रकार बड़े बड़े उद्भंड पण्डितोंसे वर्णित इस चरित्रमें अल्प बुद्धिवाला मैं भी प्रवेश करता हूं। २१ ॥

अतएव अद्वितीय प्रतिभाशाली उन महात्माओंके चरित्र संकीर्तनसे पाप बहुत दूर चले जाते हैं। एवं थोड़ीही देरमें मनुष्य नीरोग हो जाता है। और जबतक सूर्य, चंद्र और तारागण नभोमण्डलमें स्थिर रहेंगे तबतक उनका यश स्थिर रहेगा ॥२२-२५

इस लिये आत्मवेदी पुरुषको चाहिए कि, उन महात्माओंके कीर्तन करनेसे आपने शरीरको अजर, अमर बनावें ॥ २६ ॥

जो मनुष्य सज्जनोंको आनंद देनेवाली रमणीय कथाको कहते हैं उससे दोनो लोकका फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जो श्रवण उनकी कथाको सुनते हैं, मेरी समझमें वही तो सच्चे श्रवण हैं। और उससे जो पराङ्मुख हैं, वे केवल विदूषकके ऐसे कहनेके लिये श्रवण हैं, परन्तु वास्तवमें वे सच्चे श्रवण नहीं ॥ २८ ॥

जिस शिरोमस्तिष्कमें उसकी चेष्टा निरंतर फुरती रहती है, वही शिर है। और उससे भिन्न नारियलके छिलकेके ऐसा है ॥ २९ ॥

जिसकी रसना उसके संकीर्तनमें संलग्न रहती है वही रसना तो अच्छी है। और उसके अतिरिक्त दुष्टवचनरूपिणी छूरीकी धार कीसी है ॥ ३० ॥

श्रेष्ठ ओष्ठ वेही हैं जो उसके संकीर्तनमें परायण हैं। अन्यथा वे शुक्ती केसे हैं ३१

दंतभी वेही श्रेष्ठ हैं, जो शांत कथाओंसे अनुरंजित हैं। और इसके अतिरिक्त श्लेष्माके निकलनेके द्वारके अवरोधक मात्र हैं ॥ ३२ ॥

मुख वही श्रेष्ठ है जो निरंतर उसकी कथासे परिपूर्ण है, अन्यथा मलसे पूर्ण केवल दांतरूपी कीडोंके रहनेका विवरही समझना चाहिये ॥ ३३ ॥

वही मनुष्य है, जो इस कथाको सुनता और कहता है। अन्यथा देखनेके लिये केवल चित्र मात्र है ॥ ३४ ॥

गुण और दोषके ग्रहणमें महात्मालोग गुणहीको ग्रहण करते हैं, दोषको नहीं। जैसे दुग्ध और जलसे हंस दूधहीको निकाल लेता है, जलको नहीं ॥ ३५ ॥

गुण और दोषके समाहारमें दुष्ट जन दोषही ग्रहण करते है. जैसे कौव्वे मुक्ताफलको छोड़कर हाथीसे केवल मांसही लेते हैं ॥ ३६ ॥

दुष्ट जन निर्दोषपदार्थोंकोभी दोषसे दूषितही समझते हैं। जैसे उल्लूकगण रवि–मण्डलकोभी तमालवनके ऐसे काला समझता है ॥ ३७ ॥

दुर्जनोंका यह स्वभव है कि, वे सदा दोषोंहीको धारण करते हैं और सज्जन इससे विपरीत सद्गुणको धारण करते हैं। महात्मालोग सज्जन और दुष्टोंका ऐसा स्वभाव समझकर अपने हितके लिये सत्कथाहीमें सदा अनुरक्त रहते हैं ॥ ३८–३९ ॥

* * * * *

संक्षिप्त सूत्र.

त्रिशलादि नायक संबंधी वृत्तान्त. इस पद्मपुराणमें मैं कहता हूं। कुशाग्र (विपुलाचल) पर्वतके शिखरपर भगवान् **महावीरकी** स्थिति, महात्मा **इंद्रभूतिसे** श्रेणिकका प्रश्न, इस प्रश्नमें कुलकरोंकी उत्पत्ति, संसारका दुःख और भय **ऋषभनाथकी** उत्पत्ति, उनका मेरुशिखरपर अभिषेक, और लोकोपकारी धर्म्मोपदेश, ऋषभनाथका मुनि होना और लोकोत्तर ऐश्वर्य, सब देवताओंका आगमन और मोक्ष, भरतके साथ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बाहुबलिका बड़ाभारी युद्ध, कुतीर्थ तथा ब्राह्मणवर्णकी उत्पत्ति, इक्ष्वाकुप्रभृति अनेक राजाओंका वर्णन, विद्याधर और विद्युद्दंष्ट्रकी उत्पत्ति, जयन्तका उपसर्ग और केवल-ज्ञानकी प्राप्ति, विद्याध्ययनाध्यापनमें नागराजका संक्षोभ, अजितनाथका अवतार, पूर्णाम्बुदकी लड़कीका सौख्य, विद्याधरकुमारकी शरण, राक्षसाधिराजकी प्राप्ति, राक्षसद्वीपमें निवास, सगरकी उत्पत्ति, दुःखदीक्षासे निवृत्ति, राक्षस राजका जन्मकीर्तन, कपिकेतनवाले जनोंकी विशेष प्रज्ञप्ति, समुद्र—देवता—तथा तड़ित्केशका चरित्र, विजयसिंहके मारनेसे वज्रसदृश वेगवाले क्रोधका वर्णन, अंधकका विनाश, शत्रुओंका आगमन और रमणीय नगरमें प्रवेश, मधुपर्वतके ऊपर किष्किंधा नगरीकी रचना, सुकेशनन्दनादिकोंको लंकामे पहुचनेका विचार करना, सम्पूर्ण विद्याको जाननेवाले इंद्रराजाका पुरीमें जन्म, वालीका मरण, वैश्रवणकी उत्पत्ति, सुमालीके लड़केका पुष्पकविमानपर प्रवेश, कैकसीके साथ सुंदर स्वप्नका दर्शन, दशाननकी उत्पत्ति तथा उससे विद्याकी प्राप्ति, अनाढ्यका संक्षोभ, सुमालीका आगमन, मंदोदरीकी प्राप्ति, अन्यान्य कन्याओंका निरीक्षण करना, भानुकरणकी चेष्टासे यक्षराक्षसके साथ संग्राम, कुबेरकी तपस्या, रावणको लंकाराज्यकी प्राप्ति, श्रीमान् हरिषेणका पवित्र माहात्म्य, त्रिजगद्भूषण नामवाले गजराजका दर्शन, यमस्थानकी च्युति, अर्ककी धूली (किरण) किष्किंधामें पडना, कैकसीआदिओंका गर्दभालंकारका संश्रय करना, चंद्रोदरके वियोगसे अनुराधाको महादुःख प्राप्ति, विराधितपुरका नाश और सुग्रीवको राज्यप्राप्ति, वालिकी संसारसे विरक्ति और अष्टापदपर संक्षोभ, साहसी सुग्रीवका ताराके साथ संयोग, रावणका विजयार्द्धपर्वतपर गमन, अनरण्य राजाका वैराग्य होना तथा यज्ञका नाश, महेन्द्रको विद्याकी प्राप्ति, राज्यलक्ष्मीका नाश, रावणका मेरुपर्वपर गमन तथा वापिस लौटना, अनंतवीर्यको कैवल्यज्ञानप्राप्ति, रावणका व्रतनियमादिकका ग्रहण, अष्टापद पर्वतपर महेंद्रके साथ प्रल्हादका संभाषण होना, कपिकेतु महात्मा हनुमानकी उत्पत्ति तथा उनके क्रोध और प्रसन्नता, हनूमान्के पूर्वजन्मका वृत्तान्त दिगम्बरमुनिद्वारा कहा जाना, जंगलमें गये हुए पवनंजयके हस्तीके देखनेमें विद्याधरका संयोग और अंजनाका दर्शनोत्सव, वायुपुत्रकी सहायता, वरुणके साथ भयंकरयुद्ध, रावणकी समुन्नति, दशस्यंदन (दशरथकी) समुद्भूति, कैकईको वरप्रदान मिलना, पद्म-लक्ष्मण-शत्रुघ्न तथा भरतकी उत्पत्ति, सीताकी उत्पत्ति, प्रभाचक्रका हरा जाना तथा उसकी प्राप्तिके लिये चिंता करना, नारदसे चित्रित सीताको देखकर माताकी विमूढता, सर्व प्राणियोंके शरण देनेवाले दशस्यंदनका दीक्षा लेना, भाचक्रको पूर्वजन्मका ज्ञान होना, जानकीका दर्शन, पहले कैकईके वरसे भरतकी यात्रा, राम, लक्ष्मण तथा सीताको दक्षिण देशमें यात्रा करना, वज्रकरणकी चेष्टा, रुद्रभूतिका अधीन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होना, बालावस्थाका परित्याग, मरुग्राममें रामपुरीकी संस्थिति, वनमालाके साथ समागम, अनिवीर्यकी समुद्गति, जितपद्माकी प्राप्ति, कौलदेशके भूषण रामचरित्रका वर्णन, जटायुको नियमप्राप्ति होना, पात्रदानके फलका उदय, महानागरका समारोह, तथा शम्बूकका विनिपात होना, केकसादिका वृत्तान्त, खरदूषणका युद्ध, सीताका हरण तथा रामका दुर्धर शोक, विराधका आगमन और खरदूषणका मरण, साहसगतिका मरण, और आकाशमार्गसे सीताका प्रयाण, हरि और पद्मको विद्याकी प्राप्ति, इंद्रजित् (मेघनाद) कुंभकर्ण और रावणका बंधन, लक्ष्मणको शक्ति लगाना, श्रीशांतिनाथमंदिरमें रावणका प्रवेश तथा स्तुति, लक्ष्मणको चक्रका लाभ, केकसीके लड़केकी मृत्यु, उसकी पत्नीका विलाप, तत्पश्चात्कैवल्यप्राप्ति, इंद्रजित्आदिकोंकी दीक्षा, सीताके साथ रामचंद्रजीका मिलाप, नारदजीका आगमन, अयोध्यामें प्रवेश, गज और भरतका पूर्वजन्मका चरित्रोल्लेख, मनोरमाकी प्राप्ति, संग्राममें सुमेध और लवणका मरण, मथुरामें उपसर्गका नष्ट होना, सप्तर्षियोंसे अवलम्बित सीताके निर्वासजन्य विलापमें वज्रजंघका परित्राण, कृतान्तवक्रका परिक्षोभ, वैदेहीका जन्मान्तर होना, राजपुत्रोंका दीक्षाग्रहण, प्रभामंडलका दुर्मरण, मारुतिका दीक्षा ग्रहण करना, रामचंद्रजीके पुत्रोंका तपस्याप्राप्ति करना, पूर्वाप्त-देव जन्य ज्ञानसें दिगम्बर होना, केवल ज्ञानकी प्राप्ति पश्चात् निर्वाणपदका लाभ वगैरह अनेक विषयोंका यथासन्निवेश विवेचन मैंने इस पुराणमें किया है।

अन्तिम भाग.

विद्याधरोंका अधिपति रावण परस्त्रीकी अभिलाषा कर कष्टको प्राप्त हुआ, तो अन्य जीव किस प्रकार विषयासक्त होकर सुखी रह सक्ते है ? ॥ २९ ॥

हजारों सुंदर स्त्रियोंसे हमेशा सुखपूर्वक सेवित होनेपरभी रावण अतृप्तिसेही विनष्ट होगया तो दूसरे विषयभोगवासनासे तृप्त होंगे, यह विचारना भूल है ॥ ३० ॥

अपने कलत्रसे असंतुष्ट होकर जो दूसरोके कलत्रमें अनुराग करता है, वह सूखे काष्ठके ऐसे बड़ेभारी व्यसनार्णवमें पड़ता है ॥ ३१ ॥

बलदेवप्रभृति शलाका पुरुष जिस गतिको प्राप्त हुए हैं, उसी गतिको जिनशासके पूरे भक्त श्रीरामचंद्रजीनेभी पाया है ॥ ३२ ॥

पुण्यकर्मके उदयसें जीव सम्पत्तिके निधान ऐसे पदको प्राप्त करता है, और पापफलके उदयसे जीव अनेक विपद्पूर्ण पदको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

दुष्कृत् उसीको कहते हैं कि जिसके वशीभूत होकर आदमी खूब क्रोध, दूसरोंको पीड़ा देते और कड़वी बात कहते हैं। और सुकृत उसको कहते हैं, जिसके

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वशीभूत होकर आदमी विनय, शास्त्राभ्यास, सदयवाक्य, अमत्सर तथा समदर्शिता प्रगट करते हैं ॥ ३४ ॥

कोई किसीको धन, आरोग्य तथा सुख नही देता है, यदि लोग सुख देते तो, इस संसारमें इतने दुःखी नहीं रहते ॥ ३५ ॥

बहुत कहनेसे क्या ? किन्तु एकही बात विद्वानोंने निश्चित की है, वह यह कि, बहुत शास्त्रार्थसे जो भेदके कई उपाय कहे गये हैं, उसकी प्राप्तिके लिये सदा विद्वद्गण उद्योग करें ॥ ३६ ॥

परमार्थके ठीक ठीक उपाय विद्वान्ही कहे गये हैं। इस लिये यथाशक्ति इनकी सेवा करके संसार समुद्रसे आप लोग पार होंगे ॥ ३७ ॥

जीवकी शुद्धि करनेमें दक्ष जो अत्यन्त रमणीय यह शास्त्र है, सो इसने बिलकुल संसारके सभी पदार्थको प्रकाशित करदिया है, इसलिये रविषेणाचार्यका यह प्रकाश (पद्मपुराण) सारे संसारमें प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥

श्री महावीर स्वामीके बारहसौ साढ़े तीन वर्ष मोक्ष जानेके बाद पद्ममुनिका यह सुंदर निबंध रचा गया ॥ ३९ ॥

सभी संसारको जैनी बनाते हुये जो देवता हैं, वे समीप रहें। सभी पदार्थोंमें समय समयपर बचनोंसे देवतालोग रक्षा करे और संसारके भव्यजीव वात्सल्यभाजन तथा सभी प्रतिष्ठासे युक्त हों ॥ ४०–४१ ॥

इस पुराणमें व्यंजनान्त तथा स्वरान्त जो नाम कहे गये हैं वे अर्थवाचक शब्द हैं। और शब्दसमुच्चय वाक्य है ॥ ४२ ॥

इस पुराणमें अलंकार, प्रमाण, छंद, आगम आदि सभी विषय कहे गये हैं। शुद्ध चित्तसे उन सब विषयोंको आदमी यहां सब देख सकते हैं ॥ ४३ ॥

इस पुराणमें अनुष्टुप् छंदके अनुसारसे १८०२३ अठारह हजार तेईस श्लोक गिने गये हैं ॥ ४४ ॥

समाप्तम् ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भगवज्जिनसेनाचार्यका पाण्डित्य

(१)

आज हम 'भास्कर' के पाठकोंको एक अपूर्व साहित्य-सौरभ-भरी कविता प्रमोदवाटिकामें सैर कराना चाहते हैं। यद्यपि गतकिरणमें महापुराणका परिचय इस शीर्षकका लेख लिखा गया था, किन्तु हम समझते हैं कि, विषयबाहुल्य हो जानेके भयसे सम्पादक महोदय उपर्युक्त आचार्यके कविता कुसुमके गुच्छे पाठकोंको भेट नहीं कर सके थे, इसलिये, इन किरणोंमें पाठकोंके साथ साथ हमेभी इनके काव्यकुसुमकी सहृदय-हृदय-संतुष्टकारी सुगंधसे अभितृप्त होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यदि विवेचनापूर्वक देखा जाय तो साहित्यदर्पणकारकी यह उक्तिः—

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः काव्यादेव प्रवर्तते।

अर्थात् 'धर्मार्थिकाममोक्षकी फलप्राप्ति काव्यही द्वारा होती है' बड़ीही समीचीन ज्ञात होती है। सच मुच इनके काव्यकुसुमकुंजमें चारो पुरुषार्थोंके चार दरवाजे हैं। जिन्हे जो विषय अभीष्ट हों, काव्यकुंजमें प्रविष्ट होनेपर उन्हें अपने अभीष्टकी सिद्धि हुए बिना नहीं रहती। इसीलिये कविगणको सब किसीने अजरअमर कहा है। क्योंकि, एक कविका कथन है किः—

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ॥
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये च काव्येषु कीर्तिताः ॥

अर्थात् वेही महात्मा धन्य हैं, और उन्हींका यश स्थिर समझना चाहिए कि, जिन्होंनें काव्य प्रणयन किया है और जिनका वर्णन किन्ही काव्योंमें हुआ है।

काव्य ही एक वस्तु है, जो कविकी विद्वत्ताकी इयत्ता, सहृदयता, प्राकृतिकरचना, चतुरता, धार्मिकता तथा नीतिनिपुणता आदि विषय सहृदयोंके प्रतिभा-पट्टपर अंकित कर देती है। काव्यमें भाव, गांभीर्य, अलंकार, सौंदर्य तथा ध्वनिवैचित्र्यके साथ साथ शब्दमाधुर्यकी प्रधानता रहती है। इसीलिए श्रद्धेय पूज्यपाद पण्डित जगन्नाथ कविने अपने रसगंगाधर ग्रंथमें काव्यकी व्युत्पत्तिभी यही की है, किः—

रमणीयताप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

अर्थात् रमणीयता उत्पन्न करनेवाला शब्दही काव्य कहा जाता है। शब्दसुंदरता काव्यकी बाहरी छटा है। पहिले शब्दसौंदर्यही सहृदयोंको काव्य पढ़नेके लिए

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रोत्साहित करता है, पीछे भाव और अलंकारादि विषय उनकी मानस-भित्तिपर अपनी कविता चित्रित करते हैं। हमारे चरित्रनायक **भगवज्जिनसेनाचार्य**के काव्यमें शब्दसौष्ठव आदि सभी काव्यशोभावर्धक विषय सन्निविष्ट हैं। पहिली 'किरणमें' लिखा जा चुका है कि, भगवज्जिनसेनाचार्य कविवर कालिदासके समकालिन थे. इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पार्श्वाभ्युदयका अवतरण है। आनुमानिक प्रमाण यह कि, भगवज्जिनसेन और कविवर कालिदासकी काव्यरचनाप्रणालीकी समता बहुधा पाई जाती है। यदि शृंगारही रससे परिप्लुत काव्य भगवज्जिनसेनभी करते तो हमे दोनों कविकुंजरोंकी कविताको देखकर यही कहना पडता कि,

सारीमध्य नारी है कि नारीमध्य सारी है।
कि नारी है कि सारी है, कि सारी है, कि नारी है॥

अर्थात् कविवर कालिदासने जैसी उपमाकी सर्वांगसुंदरता दिखलाई है, वैसीही अनुपमता इन्होनें भी बड़ी विशद रीतिसे दिखलाई है।

उपमाप्रधान काव्योंमें उपमा और उपमेयके लिंग वचनकी समता सर्व–प्रशंसनीय होती है। प्रायः आचार्यकी सभी उपमाओंमें यह सद्गुण पाया जाता है और कविवर कालिदासकी उपमाकी प्रशंसा इसी लिये होती है कि इन्होंने उपमा उपमेयमें लिंगवचनका साम्य खूब दिखलाया है। पाठको! भारतवर्षके कवियोंने जो काव्य बनाया है, उसमें उन्होंने मानो अपने अन्तरिक भावकी एक प्रतिकृति अंकित करदी है। इसलिये इनके काव्यके यथार्थ भावके समझनेवाले विद्वानोंकोभी मैं एक उच्च कोटिके कवि समझता हूं। मैं जब संस्कृत काव्यकी ओर दृष्टिपात करता हूं, तो मुझे यही ज्ञात होता है कि, भव तथा परभवकी सभी उत्तमताओंको एकत्रित कर भारतकी कवितामयी चित्रांकनपट्टिकापर अजर, अमर कवि चित्रकारोंने मनोतीता तथा अवर्णनीया चित्रावली अंकित कर दी है और इसलिये उसी हृदयोन्मादिनी आलेख्यमालाको देखते देखते दर्शकवृंद जब सौंदर्यविस्मित, स्तंभित और विमुग्ध हो पड़ते हैं, तब वे मर्त्यलोकमें रह करभी स्वर्गके सुखका अनुभव करने लग जाते हैं। बल्कि उसी सर्वसुंदर कविता चित्रावलीके संसर्गसे दर्शकों (पाठकों) का हृदयभी धीरे धीरे निर्मल और सुंदर हो जाता है। आश्चर्य तो यह कि, उनके अंन्तःकरणसे उस आलेख्यके दर्शन मात्रहीसे अधर्म, नीचता और असुंदरताकी चिंताभी सदाके लिये दूर भागती है। उस समय सद्भावके आवेशसे दर्शककोंके मन और प्राण सहसा पुलकित हो उठते हैं। स्वच्छ दर्पणमें जिस तरह प्रतिकृति विस्पष्टरूपसे प्रभासित होती है, उसी प्रकार उस समय दर्शक गणके निर्मलहृदयादर्शमें काव्योल्लिखित पवित्र

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चरित्र प्रतिबिंबित हो जाता है। इसी प्रकार अपने अलौकिक कवितालोकसे पाठकोंके अन्तःकरण प्रकाशित और वशीभूत करनेमें जो कविगण समर्थ हो गये है, उनमें एक प्रसिद्ध जैन कवि भगवज्जिनसेनाचार्यहीके यहां मुझे पाण्डित्यप्रकर्ष दिखाना है।

भगवज्जिनसेनाचार्य जैनसिद्धान्तकेभी एक बड़ेभारी ज्ञाता थे। इस बातका साक्ष्य आपकी रचित **जयधवलकी *टीका** है। कहा जाता है कि, यह सिद्धान्त ग्रंथ ऐसा गूढ़ाशयसे भराहुआ है कि, आज इसका मर्मज्ञ भारतवर्षमें सायदही कोई हो? विद्वानोंका कथन है कि इन्होंनें एक आलंकारिक ग्रंथभी बनाया है। किन्तु जैनियोंके 'गुह्याद्गुह्यतरो ग्रंथो न प्रकाश्यः कदाचन' इस मार्गके अनुसरण करनेसे यहभी आलंकारिक ग्रंथ किसी अन्धेरे तहखानेमें पड़कर सड़गलकर अस्थिमात्रावशेष अथवा विलुप्तप्राय हो गया होगा!

मैं यह तो अवश्य कहूंगा कि, जिन्हे भारतवर्षके सच्चे प्राचीन इतिहास जानने हों, जिन्हे सत्कविता वाग्देवीका वात्सल्यभाजन बनना हो, जिन्हे उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपकादि अलंकारोंकी निराली छटा देखनी हो, जिन्हे व्याकरणकी महत्त्वपूर्ण पद-प्रयुक्ति-द्वारा भगवज्जिनसेनकी शब्दशास्त्राभिज्ञता देखनी हो और जिन्हें जैनसिद्धान्त तथा जैनधर्मकी विजय-वैजयन्ती फहरानी हो, वे इनके रचित महापुराणको चाहियेथा तो बहुत बार नहीं तो एक वारभी पढ़कर बहुतसी बातें जान सकते हैं। यों तो इनका सम्मुच्चय महापुराणही सत्काव्यसे भरा हुआ है, किन्तु यहां मैं इनके पाण्डित्यका दिग्दर्शनमात्र कराता हूं, क्योंकि बहुधा भास्करकी सभी किरणोंमे आपकी पण्डिताईके परिचय करानेकी चेष्टा की जायगी।

भगवज्जिनसेनाचार्यने महापुराणके पहिलेही पर्वमें काव्यरचनाका मतभेद और काव्यका लक्षण बड़ी विशद रीतिसे दिखालाया है।

आप्तपाशमतान्यन्ये कवयः पोषयन्त्यलम्।
कुकवित्वाद्वरं तेषामकवित्वमुपासितम्॥ ७२॥

अर्थात्-बहुतेरे कवि अपने पक्ष समर्थन करनेके लिये कवितामें झूढी बातकी परिपुष्टि कर बैठते हैं, किन्तु उन्हे कुकाव्य बनानेकी अपेक्षा अपनेको कवि नहीं प्रगट करनाही अच्छा है।

---

*इसकी एक प्रति मूडविदरीके भंडारमें देखनेमें आती है। इसके दर्शनके लिये बहुत दूर दूरसे लोग आते है। इसकी पूरी प्रशस्ति उतारकर 'भवनमें' आगई है। अगली किरणमें वह प्रकाशित करदी जावेगी। इस अत्यन्त प्राचीन ग्रंथका जीर्णोद्धार सोलापूरनिवासी शेठ **हीराचंद नेमचंद जीने** लगभग दश हजार रुपैया खर्चकर किया है.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुराणकवयः केचित्केचिन्नवकवीश्वराः ।
तेषां मतानि भिन्नानि कस्तदाराधने क्षमः ॥ ७७ ॥

अर्थात्—बहुतेरे पुराने और नये कवि हैं, इन सबोंकी राय मिलती नहीं । इसलिये इनके हां में हां मिलाना ज़रा कठिन है ।

केचित्सौशब्दमिच्छन्ति केचिदर्थस्य सौष्ठवम् ।
केचित्समासभूयस्त्वं परे व्यस्तपदावलिम् ॥ ७८ ॥

अर्थात्—कोई शब्दसुंदरताकी ओर ध्यान देते है, कोई अर्थ—गांभीर्यहीको मुख्य मानते हैं, कोई समासबहुलताकोही पसन्द करते है और कोई कोई तो बिना समासकेही पदोंका प्रयोग करना अच्छा समझते हैं ।

मृदुबन्धार्थिनः केचित्स्फुटबन्धैषिणः परे ।
मध्यमाः केचिदन्येषां रुचिरन्यैव लक्ष्यते ॥ ७९ ॥

अर्थात्—कोई सरल रचनाकी ओर विशेष ज़ोर देते, कोई कोई रचनास्पष्टताकी ओर विशेष ध्यान देते हैं और किसी किसीकी तो राय है कि, मध्यमावस्थाकी कविता अच्छी होती है, इसालिये सब किसीकी रुचि भिन्न भिन्न मालूम पड़ती है ।

सहृदयो ! भिन्न भिन्न काव्योंकी भिन्न भिन्न रचना—प्रणाली देखकर हठात् यह बात माननी पड़ती है, कि, उल्लिखित आचार्यकी काव्यरचनासंबंधिनी सम्मति बड़ी गवेषणापूर्ण है । मालूम पडता है कि, इन्होंने कवियोंकी अंतरात्मामें पैठकर उनका हार्दिक भाव यहां रख दिया है । आगे यह कविश्रेष्ठोंकी रहन सहन लिखकर अलंकार शास्त्रकी अपनी अच्छी अभिज्ञता दिखाते हैं ।

कवेर्भावोऽथवा कर्म काव्यं तज्ज्ञैर्निरूप्यते ।
तत्प्रतीतार्थमग्राम्यं सालंकारमनाकुलम् ॥ ९४ ॥

कविके भाव और परिश्रमको कवितालोलुप विद्वद्गण काव्य कहते हैं । काव्यका अर्थ प्रसिद्ध ग्राम्यदोषसे रहित अलंकारयुक्त और साफ होना चाहिये ।

केचिदर्थस्य सौन्दर्यमपरे पदसौष्ठवम् ।
वाचामलंक्रियां प्राहुस्तद्वयं नो मतं मतम् ॥ ९५ ॥

किसीने अर्थसौंदर्य और किसीने पदसौंदर्यको काव्यका भूषण ठहराया है । परंतु हमे तो दोनों मत पसन्द हैं ।

सालङ्कारमपारूढरसमुद्भूतसौष्ठवम् ।
अनुच्छिष्टं सतां काव्यं सरस्वत्या मुखायते ॥ ९६ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दूसरेके काव्यसे नहीं चुराई गयी सालंकार और सर्वाङ्गसुंदर जो सज्जनोंकी कविता है वही सरस्वतीका मुख है।

अस्पृष्टं बंधलालित्यादपेतं रसवत्तया।
तत्काव्यमिति ग्राम्यं केवलं कटुकर्णयोः ॥ ९७ ॥

जिस काव्यमें रचनाचातुर्य और लालित्य नहीं, वह काव्य नहीं है, बल्कि ग्राम्य-दोषपरिप्लुत वह काव्य केवल कटुकारक होता है।

सुश्लिष्टपदविन्यासं प्रबंधं रचयन्ति ये।
श्राव्यबंधं प्रसन्नार्थं ते महाकवयो मताः ॥ ९८ ॥

सुंदर श्लेषालंकारसे परिपूर्ण जो श्राव्य काव्यकी रचना करते हैं वेही महाकवि हैं।

महापुराणसंबंधि महानायकगोचरम्।
त्रिवर्गफलसंदर्भं महाकाव्यं तदिष्यते ॥ ९९ ॥

जिसमें महापुराणसंबंधी महानायकोंका चरित्र हो और उसकी कथा अर्थ, धर्म, कामकी साधिका हो वह महाकाव्य कहलाता है।

प्रज्ञामूलो गुणोदग्रस्कंधो वाक्पल्लवोज्वलः।
महाकवितरुर्धत्ते यशःकुसुममंजरीम् ॥ १०३ ॥

जिसका मूल बुद्धि है, गुण उन्नत शाखा है, और काव्यरचना कोमलपत्र हैं, ऐसा कविरूपी वृक्ष यशरूपी मंजरीको सदा धारण करते हैं।

मैं समझताहूं इतनीही दिग्दर्शित करानेसे पाठकोंको, इनके काव्यविवेचनकी विद्वत्ता मालूम हो जायगी। अलंकारशास्त्रोंमें मम्मटादि आलंकारिक पण्डितोंने जैसी रचना–विचारचातुरीकी पद्धती दिखलाई है. प्रायः भगवज्जिनसेनने अपने ऐतिहासिक ग्रंथमेंभी अलंकारका निचोड़ ठीक वैसाही सन्निविष्ट किया है। इस पुराणमें जो इनकी काव्यमर्मज्ञता है, वह लेखमें दिखानी अशक्यसी है, केवल *वह सहृदयोंके अनुभवगम्य है।*

काव्यके सुजन और दुर्जनका लक्षण.

सतीमपि कथां रम्यां दूषयन्त्येव दुर्जनाः।
भुजंगा इव सच्छायां चंदनद्रुमवल्लरीम् ॥ ८१ ॥

जिस प्रकार सुखद छायावाले चंदनवृक्षकी मंजरीको जहरीले साँप दूषित करते हैं, ठीक उसी प्रकार दुर्जनभी अच्छे काव्यको झट् सदोष बना डालते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सदोषामपि निर्दोषां करोति सुजनः कृतिम् ।
घनात्यय इवापङ्कां सरसीं पङ्कदूषिताम् ॥ ८२ ॥

जैसे शरदृतु कीचड़से भरी नदीको स्वच्छ बनाती है वैसेही सज्जन दोषपूर्ण-काव्यको निर्दोष कर देते हैं ।

दुर्जनाः दोषमिच्छन्ति गुणमिच्छन्ति सज्जनाः ।
स तेषां क्षेत्रजो भावो दुश्चिकित्स्यश्चिरादपि ॥ ८३ ॥

दुर्जन दोष ढूंढ़ते हैं किन्तु सज्जन गुणहीका अन्वेषण करते हैं । यह उनलोगों-केलिये कोई नयी बात नहीं. उनलोगोंकी ऐसी प्रकृतिही है । इसलिये इन दोनोंकी परस्पर विपरीत प्रकृतियां दुश्चिकित्स्य (अनिवार्य) हैं ।

यतो गुणधनास्सन्तो दुर्जनाः दोषवित्तकाः ।
स्वधनं गृह्णतां तेषां कः प्रत्यर्थी बुधो जनः ॥ ८४ ॥

दुर्जन दोषधनी और सज्जन गुणधनी हैं, इसलिये अपने अपने धनकी रक्षा करते हुए इन लोगोंका कौन बाधक हो ? ।

दोषान्गृण्हन्तु वा कामं गुणास्तिष्ठन्तु नः स्फुटम् ।
गृहीतदोषं यत्काव्यं जायते तद्धि पुष्कलम् ॥ ८५ ॥

दुर्जन भलेही दोष निकाले, केवल मेरा गुण रह जाय तो बिना दोषका जो काव्य होगा वही साहित्य–कोशकी पूर्तीके लिये पर्याप्त होगा ।

सुभाषितमहामन्त्रान्प्रयुक्तान्कविमंत्रिभिः ।
श्रुत्वा प्रकोपमायान्ति दुर्ग्रहा इव दुर्जनाः ॥ ८६ ॥

कविरूपी मंत्रवादियोंसे प्रयोग किये गये सुभाषितरूपी महामंत्रोंको सुनकर दुर्ग्रहरूपी दुर्जन क्रुद्ध हो जाते हैं ।

चिरप्ररूढदुर्ग्रंथिवेणुमूलसमोऽनृजुः ।
नर्जुं कर्तुं खलः शक्यः श्वपुच्छसदृशोऽथवा ॥ ८७ ॥

बांसकी जड़कीसी जो टेढ़ीमेढ़ी बहुत दिनोंकी गांठ पड़ी हुई है वह कभी नही सुलझ सकती क्योंकि, वह कुत्तेकी पूछकीसी है ।

इनकी सज्जन और दुर्ज्जनकी मीमांसा महत्त्वपूर्ण होनेमें कुछ संदेह नहीं । मालूम पड़ता है कि, इन्होंनें उपर्युक्त पङ्क्तियोंमें सुजन और दुर्जनको सजीव बिठला दिया है। इसमें तो कुछ संदेह नहीं कि, महापुराण रचनेके समय इनके सामनें अंतर्जगत् तथा बहिर्जगत्के सभी दृश्य बद्धांजलि खड़े हुए थे । इसी लिये इस पुराणमें **आदिनाथ**

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तीर्थंकरका चरित्र गुंफित करते हुएभी काव्यकुमुदबांधव—चकोरोंके लिये जहां तहां कविताचंद्रिकाकी छटा इन्होंने बड़ी सुंदरतासे छिटकायी है। सुजन दुर्जनके वर्णनसे यहभी ज्ञात होता है कि, भगवज्जिनसेन दुर्जनोंकी आक्षेपकी ओर ज़रासाभी ध्यान नहीं देते थे। वे समझते थे कि, हम अपना कर्तव्य करें। उनके आक्षेप प्रक्षेपकी समीक्षा ये स्वप्नमेंभी नहीं करते थे। बस बात इतनीही थी कि, ये अपने महोच्च मन्तव्य प्रकाशित करनेमें कभी मुकुलित मानस नहीं हुए। दुर्जन पीछेसे उनको भलेही उलटी सीधी कहें, किन्तु ये उनके गुणगान किये बिना नहीं रहते।

कथाका लक्षण.

पुरुषार्थोपयोगित्वात्त्रिवर्गकथनं कथा।
तत्रापि सत्कथां धर्म्यामामनन्ति मनीषिणः॥ ११८॥

पुरुषार्थकी उपयोगिताके कारण त्रिवर्गकी परिपुष्टी करनेवाली युक्तिकोही कथा कहते हैं। किन्तु जिसमें धर्मचर्चा अधिकतासे हो, वह सत्कथा कहलाती है।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसार्थसंसिद्धिरंजसा।
सद्धर्मस्तन्निबंधाया सा सद्धर्मकथा स्मृता॥ १२०॥

जिस कथासे झट अभ्युदय अर्थ, मुक्तिकी सिद्धि होती है, वह सद्धर्मकथा कहलाती है।

प्राहुःधर्म्मकथांगानि सप्त सप्तार्द्धिभूषणाः।
यैर्भूषिताः कथाहार्यैर्नटीव रसिका भवेत्॥ १२१॥

सात ऋद्धियोंके धारण करनेवाले गणधरोंने सात अंग माने हैं। आहरणीय अलंकार तथा गुणोंसे अलंकृत नटीकीसी सत्कथा अपने शांत, करुण तथा वात्सल्यादि रसद्वारा सभीको ऐहिक तथा पारलौकिक सुखका अनुभव कराती है।

भगवज्जिनसेन कथाके कैसे प्रांजल मर्मज्ञ थे, यह बात आपके उल्लिखित श्लोकोंसे भली भांति ज्ञात होती है। उल्लिखित दो एक श्लोकसे आपकी नाटकीय लक्षणकीभी अभिज्ञता अच्छीतरह झलकती है।

कथकका लक्षण.

तस्यातु कथकः सूरिः सद्वृत्तस्स्थिरधीर्वशी।
कल्पेंद्रियप्रशस्ताङ्गः स्पृष्टमृष्टेष्टगीर्गुणः॥ १२६॥

कथा कहनेवालोंको विद्वान्, सच्चरित्र स्थिरबुद्धि, जितेंद्रिय, स्वरूपवान्, स्पष्टवक्ता और मधुरभाषी होना चाहिये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यस्सर्वज्ञमताम्भोधिवार्धौतविमलाशयः ।
अशेषवाङ्मलापायाद्दुज्ज्वला यस्य भारती ॥ १२७ ॥

सर्वज्ञ देवके आगमरूपी समुद्रमें जिनका आशय प्रक्षालित हो गया है और वचनके सभी मल निकल जानेसे जिनकी वाणी जाज्वल्यमान हो गई है—

श्रीमाञ्जिनोऽजितो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिभानवान् ।
यः सतां समनुव्याख्यवाग्विमर्दभरक्षमः ॥ १२८ ॥

तेजस्वी सभाके जीतनेवाले निर्भीक वक्ता, प्रतिभाशाली, सभ्योंके अनुकूल व्याख्यान करनेवाले और वाग्वज्रोंको सहनेवाले कथक कहलाते हैं ।

दयालुर्वत्सलो धीमान्परेङ्गितविशारदः ।
योऽधीति विश्वविद्यासु स धीरः कथयेत्कथां ॥ १२९ ॥

दयावान्, वात्सल्य रससे परिपूर्ण, बुद्धिमान्, दूसरोंकी चेष्टा भली भांति जाननेवाला और जो विश्वविद्यामें जो भली भांति निपुण है, वही कथा कह सकता है ।

नानोपाख्यानकुशलोनानाभाषाविशारदः ।
नानाशास्त्रकलाभिज्ञः स भवेत्कथकाग्रणीः ॥ १३० ॥

जो सभी उपाख्यानमें कुशल है, और जिसनें सभी भाषाएं सीखी हैं, और सभी कलामें जिन्होंने अच्छी प्रविणता पायी है, वह उच्चश्रेणीका कथक—अर्थात् वक्ता हो सकता है ।

इत्यादि अनेक प्रकारकी विद्वत्तापूर्ण उक्तियोंसे मालूम होता है कि, भगवज्जिनसेन अनेक भाषा तथा अनेक कथाओंके मर्मज्ञ थे । इनकी वक्तृत्व—प्रख्यातिभी उस समय खूब थी । किसी किसी इतिहासप्रेमी तथा साहित्यप्रेमी महोदयकी राय है कि, इन्हींकी रचना—प्रणाली और भाषासरणी लेकर जैनकाव्यादिकोंका प्रणयन हुआ है । मैं इस विचारसे कभी सहमत नहीं । वे यह भलेही कहें कि, स्वामीजीकी पुराणरचना तथा काव्यरचना आदर्शभूत है, किन्तु काव्यादिकोंकी मूल भित्ति इसको मानना उचित नहीं । क्योंकि, इन्होनें स्वयं इस पुराणमें कहा है कि, हम पूर्वपुराण कवि तथा नूतन कवियोंका अनुसरण करते हुए इस पुराण (आदिपुराण) की रचना करते हैं ।

इनकी शास्त्राभिज्ञता.

' तत्र देवसभे देवं स्थितमत्यद्भुतस्थितिम् '
' मध्येसभमथोत्थाय भरतो रचिताञ्जलिः '
' प्रजाः सुप्रजसः प्रीताः पुत्रशासनदेशनाः '

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

' कर्मारीणां विजितमदनस्यार्हतः संचिचीर्षुः '
' ईशोमाभ्यामपचितपदं तं पुपुत्रीयुषाभ्याम् '
' मध्येगङ्गं हृदमधिवशेभूरितस्याः प्रपातम् '
' कृतावगाहनाः स्नातुं स्तनदघ्नं सरोजलम् '
' योऽधीति विश्वविद्यासु स धीरः कथयेत्कथां । '

पाठको ! जिनसेनस्वामीने शब्दसुन्दरताकी अधिकता दिखाते हुए भी बड़ी विद्वत्ताके साथ व्याकरणके सारगर्भितपदोंको प्रयुक्त किया है । यों तो व्याकरण-प्रधान कई काव्य हैं, किन्तु प्रसाद तथा माधुर्य्य-गुण-विशिष्ट एक ऐतिहासिक ग्रन्थमें व्याकरणकी ऐसी चमत्कृति दिखलानी कुछ साधारण बात नहीं है ।

ऊपर श्लोकांशोंमें जो **' देवसभे, मध्येसभं, सुप्रजसः, संचिचीर्षुः, पुपुत्रीयुषाभ्याम्, मध्येगङ्गम्, विश्वविद्यासु अधीति** और **स्तनदघ्नम्** इत्यादि पदप्रयुक्त किये गये हैं, इनसे भगवज्जिनसेन स्वामीका अच्छा शब्दशास्त्राभिज्ञत्व मालूम होता है । इनके ' स्तनदघ्नं ' इस पदके ऊपर हमे **बल्लाळ** कवि विरचित ' भोजप्रबंध ' की एक कथा याद आगयी । वह यह है कि, एक समय एक ब्राह्मण फटी चिटी मैली धोती पहनकर सिरपर लकड़ीका बोझा लिये नदी पार हो रहा था । शिकारके थके माँदे भोजराज नदीके उस पारमें खड़े हुए पार होनेकी ताकतमें थे। इस लिये उन्होंने ब्राह्मणसे पूछा कि ' कियन्मात्रं जलं विप्र ! ' अर्थात्—हे ब्राह्मण ! कितना जल है ? ब्राह्मणने उत्तर दिया कि ' जानुदघ्नं नराधिप !'—नरेश ! ठेहुने तक । राजाको ' जानुदघ्नं ' तथा संस्कृत पद्यमय उत्तर सुनकर आश्चर्य मालूम हुआ और उन्होंने कहा कि, ' ईदृशी किमवस्था ते ' यानि—ऐसे भारी विद्वान् होकर तुम्हारी यह आवस्था ? ब्राह्मणने कहा कि ' न हि सर्व्वे भवादृशाः ' अर्थात् जैसे आप गुणी हैं, वैसे सभी नहीं हैं । राजा यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हे तीन लाख रुपया तत्क्षण पुरस्कार देकर सदाके लिये अपने दरबारमें रख लिया ।

किन्तु पाठको ! महापुराणरूपी इस काव्य—सूत्रमें उदाहरणीय—विषय—मुक्ताके समुद्ग्रथन करनेपरभी पुरस्कार तो दूर रहे, बल्कि हजारो वर्ष पीछे फेंककर कितने पण्डितर्य्य भगवज्जिनसेनको एक साधारण विद्वान् निश्चित करनेके लिये लम्बी चौड़ी चेष्टा कर रहे हैं । यह पंचम कालका प्रभाव है । इसकालने सृष्टीकी सारी सच्ची सरणीको इस प्रकार उलट पलट दिया है कि अब उसका सुलझना असम्भव नहीं, तो कठिन तो अवश्य है । खैर ! इसके लिये विशेष चिन्ता करनेकी अपेक्षा इस विस्तृत कार्यक्षेत्रमें कुछ करना ही श्रेयस्कर है । यों तो जिनसेनका यह महापुराण

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

और पार्श्वाभ्युदयही वैराग्य रसके आदर्शभूत बने हुए हैं। तौभी उन्होंनें जहां तहां शृंगाररसकी पार्विक—सुधांशु—चंद्रिका की ऐसी हृदय—सन्तर्पिका कविता ज्योत्स्ना छिटकायी है कि, उसे पढ़कर सहृदयोंका चित्तसागर हठात् उमड़ने लग जाता हैं। जैसेः—

बालिभं दक्षिणावर्त्ति नाभिमध्यं बभार सा।
नदीव जलमावर्त्तसंशोभि सतरङ्गकम्॥

अर्थात्—श्रीमती श्रुताका मध्यभाग त्रिवलीसंयुक्त तथा दक्षिणावर्त नाभीवाला था। इसलिये वह ऐसा मालूम पड़ा जैसा कि चकोहके साथ तरंग हो।

मध्यं स्तनभराक्रान्ति चिन्तयेवात्ततानवम्।
रोमावलिच्छलेनास्या दधेत्वष्टम्भयष्टिकम्॥

उनकी कटी पयोधरके भार तथा चिन्तासे दबी जा रही है। कहीं टूट नहीं जाय! इसलिये मानो रोमावलीके व्याजसे रोकनेका खम्भा (ठेघुनी) लगाया गया है।

लतेवासौ मृदू बाहू दधे विटपसच्छविम्।
नखांशुमञ्जरी चास्याः धत्तेस्म कुसुमाश्रियम्॥

लताकीसी श्रुताकी दोनों बाहें सुन्दरविटपकी छबि दिखला रही हैं और नखोंकी चमक पुष्पकी भी शोभाको मात कर रही है।

आनील-चूचुकौ तस्याः कुचकुंभौ विरेजतुः।
पूर्णौ कामरसस्येव नीलरत्नाभिमुद्रितौ॥ ७१॥ पर्व ६॥

नीले मुँहवाले उनके दोनों कुचकुम्भ बड़ेही शोभ रहे हैं। ये ऐसे मालूम पड़ते हैं कि कामरससे परिपूर्ण घड़ेपर नीलम पत्थर की मुहर करदी गयी हो।

स्तनांशुकं शुकच्छायं तस्याः स्तनतटाश्रितम्।
बभासे रुद्धपङ्केजं कुड्मलं शैवलं तथा॥ ७२॥

उनके स्तनपर शुककी भाँति हरेरंगका कपड़ा कमलमें लिपटे हुए शेवालके ऐसा मालूम पड़ता था।

स्वकलावृद्धिहानिभ्यां चिरं चांद्रायणं तपः।
कृत्वा नूनं शशी प्रापत्तद्वक्त्रस्योपमानताम्॥ ६—७६॥

चंद्रमाने अपनी कलाकी हानि-वृद्धिद्वारा बहुत दिनोंतक चांद्रायणव्रत करके तो पीछे इनके मुखकी समता कुछ पाई है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मंद-माधूत-मन्दार-सांद्र-किञ्जल्क-पिञ्जरः ।
पुञ्जितालिरुतामञ्जुरागुञ्जन्मरुदाववौ ॥ ६-९९ ॥

धीरे धीरे हिलाये गये मन्दारवृक्षके घने परागसे पीलापन लिये हुए पुंज पुंज भंवरोंकी ध्वनिसे मंजु मंजु गुंजार करती हुई हवा वह रही है। पुंजीभूत भ्रमर है? या सनसनाती हुई हवा है?

पाठको! भगवज्जिनसेनने उपर्युक्त श्लोकोंमें शृंगार वर्णनके साथ साथ उपमा और उत्प्रेक्षाकी तो अटूट सम्पत्ति रखदी है। यद्यपि आपके प्रतिभाकाशमें वैराग्यरसके स्थायी प्रावट्कालीन मेघ सदा उमड़े रहते थे, तथापि शृंगाररूपी चञ्चलाने अपनी मौहूर्तिक चमकसे शान्तरसकी शोभा और दूनी सरसानेके लिये, इनकी सर्वतोमुखी लेखनीमें अपूर्व शक्ति संचारित की है। इसके उदाहरण महापुराण और पार्श्वाभ्युदयही पर्याप्त हैं। इनके पढ़नेवालोंको ऐतिहासिक बातोंके सिवाय काव्यकीभी अनेक मार्मिक बातें मालूम होती हैं। अन्तके श्लोकमें इन्होंने माधुर्य्यगुणकाभी अच्छा उदाहरण दिया है।

कवियोंके लिये शृंगार वर्णन करना मानो, तलवारकी धारपर चलना है। क्योंकि कवि कुलगुरु कालिदासकी शृंगार रसकी कविताकी बाढ़ देखकर कई उद्भट आनुमानिक विद्वानोंने मन गढन्त आख्यायिका रच डाली है। उन लोगोंका कथन है कि, कालिदास विलासप्रिय थे। अमुक वारांगणाके साथ अमुक समय पकड़े गये इत्यादि। किन्तु मै समझता हूं कि, अनुमानद्वारा भारतवर्षके एक सर्वश्रेष्ठ कविको असच्चरित्र बना देना उचित नहीं। कविकी काव्यरचनाकी प्रतिभा ईश्वरीय है। उसकी शक्ति जादूकीसी है। न मालूम वह कब कौनसे अलौकिक दृश्यको दिखावेगी। नहीं तो राजा दरिद्रका और दरिद्र राजाका, विषयी वीतरागका, और वीतराग विषयीका कभी वर्णन करही नहीं सकते। ऐसे कई अन्योन्याश्रित विषय उपस्थित हो सकते हैं। हमे आश्चर्य तो इस बातका है कि दशकुमारचरितके रचयिता दण्डी कवि और मृच्छकटिकके रचयिता राजा शूद्रककी प्रतिष्ठा भारत वर्षीय विद्वानोंने अभीतक बना रक्खी है। अर्थात् दण्डी कविको विषयी और चोर तथा शूद्रक कविको दरिद्र और चोर नहीं बनाया यहीं ग़नीमत है। कविवर कालिदासकी जीवनावस्थाकी सच्ची घटना जान बूझकर यदि उपर्युक्त कलंक इनपर लगाया गया हो तो कुछ बात नहीं, किन्तु जो मनगढन्त निंदा-स्तुति करनेवाले हैं वे भगवज्जिनसेनके काव्य और इनकी वीतरागता देखकरभी तो हमारे संस्कृतसाहित्यके सर्वस्व कालिदासके सिरसे विलासप्रियताका कलंक उतारें। और नहीं तो सब जाने दें रुद्रटकी निम्नलिखित उक्तिही कवियोंको निर्दोष बनानेके लिये काफी है:—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

"नहि कविना परदारा एष्टव्या नापि चोपदेष्टव्याः ।
कर्तव्यतयान्येषां न च तदुपायोऽभिधातव्यः ॥
किन्तु तदीयं वृत्तं काव्याङ्गतया स केवलं वक्ति ।
आराधयितुं विदुषस्तेन न दोषः कवेरत्र ॥ "

उपमा.

विद्युत्वन्तो महाध्वाना वर्षन्तो रेजिरे घनाः ।
सहेमकक्ष्या मदिनो नागा इव सबृंहिताः ॥ ३--६७ ॥

यह बादल बिजलीकी चमकाहटके साथ गरज गरजकर बरसनेसे खूब शोभ रहा है । जैसे सुवर्णसूत्र धारण किये मदमत्त हाथी गरज रहा हो वैसा यहभी देख पड़ता है ।

केचिद्गिरिसरित्पूराः प्रावर्तन्त महारयाः ।
धातुरागारुणामुक्तरक्षमोक्षा इवाद्रिषु ॥ ७२ ॥

पर्वतोंपर कहीं गेरुके रंगसे लाल हुए नदियोंके प्रवाह बड़ी शीघ्रतासे उस समय बह रहे थे । किन्तु यह प्रवाह ऐसा मालूम पड़ता था कि, जैसे आपसमें पहाड़ और बादलोंके टकरा जानेसे रक्तका प्रवाह बह रहा हो ।

मार्दङ्गिककरास्फालादिव वातविघट्टनात् ।
पुष्करेष्विव गंभीरं ध्वनत्सु जलवाहिषु ॥ ७३ ॥
विद्युन्नटी नभोरङ्गे विचित्राकारधारिणी ।
प्रतिक्षणं विवृत्ताङ्गी नृत्यारम्भमिवा करोत् ॥ ७४ ॥

मेघोंको वायुसे टकरा जानेपर उनसे ऐसी गम्भीर ध्वनि होती थी कि, मानो वाद्य बजानेवालेंके हाथकी धीमी चोटसे मृदङ्गहीका शब्द होता है । उस समय बिजलीका चमकना ऐसा मालूम पड़ता था कि, मानो आकाशरूपी रंगभूमीमें अनेक रूप धारण करती तथा क्षण क्षणमें कई स्वाङ्गोंको स्वीकार करती हुई, बिजलीरूपिणी नटी मेघरूपी वाद्यके आधारपर नृत्य कर रही है ।

अन्तिम श्लोकसे यही बात साफ साफ मालूम होती है कि, भगवज्जिनसेन नाट्य विषयोंसे भली भांति परिचित थे । सर्व साधारणकी समझमें आजानेके लिये आपने बड़ी सरलतासे उपमापदका प्रयोग किया है । इसलिये आपके उपमाप्रधान दो पद्य और यहां उद्धृत करते हैं ।

सैषा स्वयम्प्रभास्यासीत्परा सौहार्द-भूमिका ।
चिरं मधुकरस्येव प्रत्यग्रा चूतमञ्जरी ॥ २८७ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैसे आमकी नयी मंजरी मधुकरोंको बड़ी स्नेहपात्र होती है, उसी प्रकार स्वयम्प्रभा ललिताङ्गदेवको परमप्रेमस्थली हुई।

स्वयम्प्रभाननालोक-तद्गात्रस्पर्शनोद्भवैः।
स रेमे करिणीसक्तः करीव सुचिरं सुरः॥ २८८॥

ललितांगदेवने स्वयम्प्रभाके मुखावलोकन तथा उनकी देहके स्पर्श-जन्यसुखसे हथिनीमें आसक्त हाथीके ऐसा बहुत कालतक आमोद प्रमोद किया। स्थालीपुलाकन्याय-वत् इनकी उपमाकी दिग्दर्शिता मैं इतनीही बस समझता हूं। आगे इनके दिखाए हुए कुछ पर्वतकाभी दृश्य मैं पाठकोंको दिखाता हूं।

वनैश्चतुर्भिराभान्तं जिनस्येव सभोदयं।
श्रुतस्कंधमिवानादि निधनं सप्रमाणकम्॥ ५-१६२॥

अशोक आम्रादि चार वनोंसे शोभता हुआ जिनेंद्र भगवानकी समवसरण रचित सभाकेसे और प्रमाणसहित अनादिनिधन श्रुतस्कंधके ऐसा—

महीभृतामधीशत्वात्सद्वृत्तत्वात्सदास्थितेः।
प्रवृद्धकटकत्वाच्च सुराजानमिवोन्नतम्॥ ५-१६३॥

पर्वतोंके अन्यत्र राजाओंके अधीश होनेसे, सत्संगतसे, अन्यत्र स्थावरतासे, सेनाकी अधिकतासे, अन्यत्र पाषाणकी बहुलतासे, उन्नतशील राजाके ऐसा वह उन्नत पर्वत—

सर्वलोकोत्तरत्वाच्च ज्येष्ठत्वात्सर्वभूभृताम्।
महत्वात्स्वर्णवर्णत्वात्तमाद्यमिव पूरुषम्॥ ५-१६४॥

संसारमें सर्वोत्कृष्ट होनेके कारण, सब पहाड़ोंमें ऊंचा होनेसे और सुनहले रंगके समान होनेसे यह पर्वत आदि पुरुषके ऐसा माल्म पड़ता था।

समासादितवज्रत्वादप्सरःसंश्रयादपि।
ज्योतिःपरीतमूर्तित्वात्सुरराजमिवापरम्॥ ५-१६५॥

वज्रधारण करनेसे, अप्सराओंके आश्रित रहनेसे और चारोओर ज्योतिके छिटिकनेसे दूसरा इंद्रके ऐसा यह माल्म पड़ताथा।

चूलिकाग्रसमासीनं सौधर्मेन्द्रविमानकम्।
स्वर्लोकधारणे न्यस्तमिवैकं स्तंभमुच्छ्रितम्॥ ५-१६६॥

जिसकी चोटी सौधर्मेन्द्र विमानको छुए हुई है, इसलिये यह पर्वत ऐसा माल्म पड़ता था कि, स्वर्गको उठाए हुआ एक ऊंचा स्तंभ हो।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मेखलाभिर्वनश्रेणीर्दधानं कुसुमोज्ज्वलाः ।
स्पर्धयैव कुरुक्ष्माजैः सर्वर्तुफलदायिभिः ॥ ५–१६७ ॥

अपनी मेखला (नीचेके चारोतरफके भाग) से कुसुमित वनपंक्तियोंको धारण किये हुआ सब ऋतुओंमें फूलनेवाले कुरुदेशके वृक्षोंसे स्पर्धालुके ऐसा यह पहाड़ मालूम पड़ रहा है ।

हिरण्मयमहोदग्रवपुषं रत्नभाजुषं ।
जिनजन्माभिषेकाय बद्धं पीठमिवामरैः ॥ ५–१६८ ॥

रत्नोंसे देदीप्यमान, सुवर्णमय ऊंचा पर्वत ऐसा मालूम होता है कि, देवताओंने जिनेन्द्र भगवान्के स्नानके लिये स्नानपीठिका तयार करली हो ।

जिनाभिषेकसम्बन्धाज्जिनायतनधारणात् ।
स्वीकृतेनेव पुण्येन प्राप्तं स्वर्गमनर्गलम् ॥ ५–१६९ ॥

जिनेंद्र भगवानके स्नान करनेसे अथवा जिनचैत्यालय धारण करनेसे मालूम पड़ता है कि, इसने अनर्गल स्वर्ग प्राप्त कर लिया हो ।

लवणाम्भोधिवेलाम्भोवलयश्लक्ष्णवाससः ।
जम्बूद्वीपमहीभर्तुः किरीटमिव सुस्थितम् ॥ १७० ॥

क्षार समुद्रके किनारेका जलही सुंदर कपड़ा है जिसका ऐसे जम्बूद्वीप महाराजके किरीटके सदृश यह पर्वत दीख पड़ता था ।

कुलाचलपृथूत्तुङ्गवीचिभङ्गोपशोभिनः ।
संगीतमहतातोद्यविहङ्गरुतशालिनः ॥ १७१ ॥

पर्वतोंकी उत्तुंगतारूपी लहरोंसे शोभनेवाले, और पक्षियोंके कूजनसे संगीतके बाजेकी छटा दिखानेवाले—

महानदीजलालोलमृणालविलसद्द्युतेः ।
नंदनादिमहोद्यानविसर्पत्पत्रसम्पदः ॥ १७२ ॥

महानदीके जलमें चंचल सुंदर बिसतंतूकेसे समुज्ज्वल और नंदनवाटिकाके पत्तोंसे शोभनेवाले–

सुरासुरसभावासभासितामरसश्रियः ।
सुखासवरसासक्तजीवभृङ्गावलीभृतः ॥ १७३ ॥

देवादिकोंकी सभामें कमनीय कमलकी शोभा धारण करनेवाले और सुखरूपी पुष्परसमें लीन जीवरूपी भ्रमरोंको रखनेवाले—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जगत्पद्माकरस्यास्य मध्ये कालानिलोद्धतम् ।
विवृद्धमिव किंजल्कपुंजमापिंजरच्छविम् ॥ १७४ ॥

ऐसे जगद्रूपी महासमुद्रके बीचमें कालरूपी वायुसे लाये गये, संवर्द्धित परागके ढेरसे पिंगलवर्णकी छटाकीसी छटावाले,—

सरत्नकटकं भास्वच्चूलिकामुकुटोज्ज्वलम् ।
सोऽदर्शद्गिरिराजं तं राजन्तं जिनमंदिरैः ॥ १७५ ॥

रत्नवलयके सहित कलशाकार मुकुटके सदृश चमकते हुए और जिनमंदिरोंसे विशेष शोभते हुए महाराजकेसे गिरिराजको देखा ।

पाठको ! उत्प्रेक्षाकी उच्चता तथा श्लेषालंकृतिकी निपुणताभी इस पुराणमें अच्छी तरह दिखलायी गयी है । उपमाप्रधानकाव्याभिनयके सूत्रधार होते हुएभी इन्होंने अन्यान्य अलंकारोंके मर्म अंकित करनेमें कुछ कसर नहीं रक्खी है । आपने पर्वतकी उपमा सुराजसे देकर अपनी नीतिज्ञताकाभी अच्छा परिचय दिया है । एक जगह तो भगवज्जिनसेनने शीतोष्ण किरणवाले चंद्रमा और सूर्यके वर्णनके व्याजसे श्लेषालंकारके आधारपर राजनीतिका अच्छा उपदेश किया है । उपर्युक्त वर्णनमें प्रायः आदिकवि महर्षि वाल्मीकिजीकी वर्णनपरंपराकी कुछ आभा दिखलाई देती है । अब मैं यहा भगवज्जिनसेनके रुपकादि अलंकारकीभी एक दो बानगी दिये देता हूं ।

स्तनचक्राह्वये तस्याः श्रीखण्डद्रवकर्दमे ।
उरस्सरसि रेमेऽसौ सत्कुचांशुकशैवले ॥ पर्व ८-९ ॥

स्तनही हैं चक्रवाक जिसके, चंदनरूपी कर्दमवाले और स्तनरूपी कंचुकीहीसे शैवालकी शोभा धारण करनेवाले वक्षःस्थलरूपी सरोवरमें इन्होंने रमण किया ।

यथा शरन्नदीतीरपुलिनं हंसकामिनी ।
भव्यावलिस्तथाध्यात्मशास्त्रं प्राप्य प्रमोदते ॥ १६० ॥

जैसे शरत्कालमें नदीके तटपर हंसपत्नी परमानंदको प्राप्त करती है वैसे भव्यावलि (मुमुक्षु जन) अध्यात्मशास्त्रका तत्त्व समझकर आनंदसमुद्रमें गोते लगाते हैं ।

यथा कुसुमितं चूतकाननं कलकण्ठिका ।
द्वीपं नन्दीश्वरं प्राप्य यथा वा पृतनामरी ॥

जिस प्रकार प्रफुल्लित आम्रकाननमें जाकर कोयल प्रसन्न होती है और जैसे नंदीश्वर-द्वीप पाकर देवताओंकी सेना प्रसन्न होती है—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तथेदं पट्टकं प्राप्य श्रीमत्यासीदनाकुला ।
मनोज्ञेष्टार्थसंपत्तिः कस्य वा नोत्कतां हरेत् ॥

उसी प्रकार इस चित्रको पाकर श्रीमती बहुत प्रसन्न हुई । सच है, इच्छित वस्तुकी प्राप्ति भलां किसीकी उत्कंठा नहीं दूर करती ?

पाठको ! इन्होंने पहले श्लोकमें रूपकालंकारकी अच्छी मूर्ति अंकितकी है और तीसरे श्लोकसे आपकी अध्यात्मशास्त्रकी प्राञ्जलताभी अच्छी तरह ज्ञात होती है ।

भगवज्जिनसेनः—

वसुन्धरा महादेवी पुत्रकल्याणसम्पदा ।
तया प्रमोदपूर्णांगी न स्वांगे नन्वमात्तदा ॥ (७–२०४) ॥

अर्थात्—महादेवी वसुन्धरा पुत्रविवाहजनित अमंद आनंदसे फूली नहीं समायी ।

कवि–श्रेष्ठ–माघकविः—

तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंपदां मुदः ।

अर्थात्—नारद ऋषिके आनेकी खुशी श्रीकृष्णचंद्रजीकी देहमें नही अँटी.

भगवज्जिनसेनः—

क्व गंभीरः पुराणाब्धिः क्व मादृग्बोध–दुर्विधः ।
सोऽहं महोदधिं दोर्भ्यां तितीर्षुर्यामि हास्यताम् ॥ १–२८ ॥

कहाँ तो अथाह पुराण समुद्र ? और कहाँ मुझसा अल्पज्ञ—व्यक्ति वर्णन करनेवाला ? इसलिये हाथोंसे तैर कर समुद्र पार होनेकी इच्छा करनेवालोंकीसी मेरी हँसी होगी ।

कविवर कालिदासः—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

अर्थात्—कहाँ सूर्यवंश ? और कहां मेरी तुच्छबुद्धि ? इसलिये सूर्यवंशका वर्णन करना मोहसे दुस्तर समुद्रको डोंगीसे पार होनेकासा है ।

भगवज्जिनसेनः—

पुराणकविभिः क्षुण्णे कथामार्गेऽस्ति मे गतिः ।
पौरस्त्यैः शोधितं मार्गं को वा नानुव्रजेज्जनः ॥

अर्थात्—पुराणकार कवियोंसे क्षुण्ण (परिस्कृत) मार्गमें यह मेरी गति है; क्यों कि नागरिकोंसे परिशोधित मार्गमें कौन नहीं चल सकता ?

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कविवर कालिदासः—

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥

यानि पूर्व कवियोंसे इस सूर्यवंशका वचन रूपी दरवाजा खोल दिया गया है, इसलिये वज्रसे छेदी गयी मणिमें सूत्रकीसी मेरी गति है ।

इन उपर्युक्त काव्योंसे पाठक, स्वयं विचार कर सकते हैं कि, भगवज्जिनसेन और कविवर कालिदास ये दोनों समसामायिक कवि अपने काव्यमें सर्वोत्कृष्टता दिखानेके लिये कितना प्रयास करते थे ? केवल प्रयासही तक नहीं बल्कि सफलताभी प्राप्त करते थे । जिसकी साक्षिता उपर्युक्त पद्यही दे रहे हैं ।

अमोघवर्षका राज्यत्वकाल.

अमोघशासने तस्मिन्भुवं शासति भूभुजि ।
न दण्डघ्नपक्षः कोऽप्यासीत्प्रजानामकृतागसाम् ॥

अर्थात्—वज्रजंघराजाके अप्रतिहत शासन करनेपर निरपराधिनी प्रजाओंको कभी दंड नहीं हुआ ।

उपर्युक्त श्लोकमें जो **अमोघशासन** यह पद है इससे मालूम पड़ता है कि, वज्रजंघके विशेषण व्याजसे इन्होंने अपने शिष्य राठोर कुलतिलक (राष्ट्रकूट वंशीय) महाराज अमोघ वर्षको याद किया है । क्योंकि अप्रासंगके भयसे इस पुराणमें मुख्यतया तो इन्होंने अमोघवर्षकी चर्चा की नहीं; किन्तु शिष्य—वात्सल्योद्रेकसे इन्होंने इस श्लोकमें अमोघवर्षकी बड़ी विशद रीतिसे राज्यशासनप्रणाली तथा नामका उल्लेख किया है ।

मैं पहले कह आया हूं कि, भगवज्जिनसेनने इस पुराणमें प्रायः सभी विषयोंका समावेशकिया है । इनका आशय बड़ाही उच्च था । इस पुराणको इन्होंने आदर्शरूपसें प्रणयन किया है । एकही पुराणमें जिसतरह इन्होंने चौबीसो तीर्थङ्करोंकी कथा लिख डालनेका सुसङ्कल्प कियाथा उसी प्रकार साहित्य तथा काव्योंके प्रायः सभी अङ्गोंकीभी चर्चा करनेमें आप बाज नहीं आये हैं । मैने यहां स्थूल-रूपसे इनके काव्यका कुछ विवेचन किया है । आगामी किरणोंमें इनका सूक्ष्म-पाण्डित्य दिखानेका प्रयास करूं गा ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हरिवंशपुराण.

अनुक्रमसंख्या ३.
विषय—ऐतिहासिक (प्रथमानुयोग).
ग्रन्थकार—श्रीजिनसेनाचार्य.
भाषा—संस्कृत और हिन्दी.
लिपि—नागरी.
ग्रन्थविवरण—प्राचीन, हस्तलिखित, शुद्ध प्रति, पत्रसंख्या ४२५, श्लोकसंख्या ११०००, अध्याय ६६.
ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेका समय सम्बत् १८६४.

मंगलाचरण ।

ॐनमो वीतरागाय ॥

सिद्धं ध्रौव्यव्ययोत्पादलक्षणं धर्म्मसाधनम् ।
जैनं द्रव्याद्यपेक्षातः साद्यनाद्यथ शासनम् ॥ १ ॥
शुद्धज्ञान-प्रकाशाय लोकालोकैकभानवे ।
नमः श्रीवर्द्धमानाय वर्द्धमानजिनेऽशिने ॥ २ ॥

* * * * *

जीवसिद्धिविधायेह कृतयुक्त्यनुशासनम् ।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥ ३० ॥
जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः ।
बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥ ३१ ॥
इन्द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापिव्याकरणेक्षणाः ।
देवस्य देवसंघस्य न वन्द्यन्ते गिरः कथम् ॥ ३२ ॥
वज्रसूरेर्विचारिण्यः सहेत्वोर्बन्धमोक्षयोः ।
प्रमाणधर्म्मशास्त्राणां प्रवक्तृणामिवोक्तयः ॥ ३३ ॥
महासेनस्य मधुरा शीला-लंकारधारिणी ।
कथा न वर्णिता केन वनितेव सुलोचना ॥ ३४ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता ।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥ ३५ ॥
वरांगनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक् ।
कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम् ॥ ३६ ॥
शान्तस्थापि च वक्रोक्ती रस्योत्प्रेक्षा बलान्मनः ।
कस्य नोद्घाटिते त्वर्थे रमणीयेऽनुरज्जयेत् ॥ ३७ ॥
यो शेषोक्तिविशेषेषु विशेषः पद्यगद्ययोः ।
विशेषवादिता तस्य विशेषत्रय-वादिनः ॥ ३८ ॥
आकूपारं यशो लोके प्रभाचन्द्रोदयोज्ज्वलम् ।
गुरोः कुमारसेनस्य विचरत्यजितात्मकम् ॥ ३९ ॥
जितात्मपरलोकस्य कवीनां चक्रवर्तिनः ।
वीरसेनगुरोः कीर्तिरकलङ्कावभासते ॥ ४० ॥
यामिताभ्युदये तस्य जिनेंद्रगुणसंस्तुतिः ।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिः संकीर्त्तयत्यसौ ॥ ४१ ॥
वर्द्धमानपुराणोद्यदादित्योक्तिगभस्तयः ।
प्रस्फुरन्ति गिरीशान्तः स्फुटस्फटिकभित्तिषु ॥ ४२ ॥
निर्गुणोपि गुणान्सद्भिःकर्णपूरिकृताकृतिः ।
बिभर्त्येव वधूवक्त्रे चूतस्येवाग्रमंजरी ॥ ४३ ॥
साधुरस्यति काव्यस्य दोषवत्तामयाचितः ।
पावकः शोधयत्येव कलधौतस्य कालिकाम् ॥ ४४ ॥
काव्यस्यान्तर्गतं लेपं कुतश्चिदपि सत्समाः ।
प्रक्षिपन्ति बहिः क्षिप्रं सागरस्येव वीचयः ॥ ४५ ॥
मुक्ताफलतयादाना परिषद्भिः कृतिः स्फुरेत् ।
जलात्मापि विशुद्धाभिस्तोयधेरिव शुक्तिभिः ॥ ४६ ॥
दुर्वचोविषदुष्टान्तर्मुखस्फुरितजिह्वकान् ।
निगृह्णन्ति खलव्यालान् सन्नरेन्द्राः स्वशक्तिभिः ॥ ४७ ॥
रजोबहुलमारूक्षं खलं कालं विदाहिनम् ।
सन्तः कालैकलब्धान्नाः शमयन्ति यथा घनाः ॥ ४८ ॥
साध्वसाधुसमीकारप्रवृत्त (?)मम्बुधं बुधाः ।
वारयन्ति तमोराशिं रवीन्द्वोरिव रश्मयः ॥ ४९ ॥
इत्थं साधुसहायोऽहमनातंकमनुद्धतम् ।
देहं काव्यमयं लोके करोमि स्थिरमात्मनः ॥ ५० ॥
बद्धमूलं भुवि ख्यातं बहुशाखाविभूषितम् ।
पृथुपुण्यफलं पूतं कल्पवृक्षसमं परम् ॥ ५१ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अरिष्टनेमिनाथस्य चरिते प्रोज्ज्वलीकृतम् ।
पुराणं हरिवंशाख्यं ख्यापयामि मनोहरम् ॥ ५२ ॥
द्युमणिद्योतनं द्योत्यं द्योतयन्ति यथार्णवः ।
मणिप्रदीपखद्योताविद्युतोऽपि यथायथम् ॥ ५३ ॥
द्योतितस्य तथा तस्य पुराणस्य महात्मभिः ।
द्योतने वर्त्ततेऽत्यल्पो माद्दशोऽप्यनुरूपतः ॥ ५४ ॥
विप्रकृष्टमपि ह्यर्थं सौकुमार्ययुतं मनः ।
सूरिसूर्यकृतालोकं लोकः सोऽर्चिरवेक्षते ॥ ५५ ॥
पञ्चधा प्रविभक्तार्थं क्षेत्रादिप्रविभागतः ।
प्रमाणमागमाख्यं तत्प्रमाणपुरुषोदितम् ॥ ५६ ॥
तथा हि मूलतन्त्रस्य कर्त्ता तीर्थंकरः स्वयम् ।
ततोप्युत्तरतन्त्रस्य गौतमाख्यो गणाग्रणीः ॥ ५७ ॥
उत्तरोत्तरतंत्रस्य कर्तारो बहवः क्रमात् ।
प्रमाणन्तेऽपि नः सर्वे सर्वज्ञोप्यनुवादिनः ॥ ५८ ॥
जयकेवलिनः पञ्च ते चतुर्दशपूर्विणः ।
क्रमेणैकादश प्राज्ञा विज्ञेया दशपूर्विणः ॥ ५९ ॥
पञ्चैवैकादशाङ्गानां धारकाः परिकीर्त्तिताः ।
आचारांगस्य चत्वारः पञ्च चेति युगस्पतिः (?) ॥ ६० ॥
वर्द्धमानजिनेन्द्रस्यादिन्द्रभूतिः श्रुतं दधे ।
ततः सुधर्म्मस्तस्मात्तु जम्बूनामान्त्यकेवली ॥ ६१ ॥
तस्माद्विष्णुः क्रमात्तस्मान्नंदिमित्रोऽपराजितः ।
ततो गोवर्द्धनो दध्रे भद्रबाहुः श्रुतं ततः ॥ ६२ ॥
दश पूर्व विशाखाख्यः प्रोष्ठिलः क्षत्रियो जयः ।
नागसिद्धार्थनामानौ धृतिषेणगुरुस्ततः ॥ ६३ ॥
विजयो बुद्धिलाभिख्यो गंगदेवाभिधस्ततः ।
दशपूर्वधरोऽन्यस्तु धर्म्मसेनमुनीश्वरः ॥ ६३ ॥
नक्षत्राख्यो यशःपालः पाण्डुरेकादशां धृतः ।
ध्रुवसेनमुनिस्तस्मात्कंसाचार्यस्तुपञ्चमः ॥ ६४ ॥
सुभद्रोऽतो यशोभद्रो यशोबाहुरनन्तरः ।
लोहाचार्यस्तुरीयोऽभूदाचारांगधृतात्ततः ॥ ६५ ॥
पूर्वाचारेभ्य एतेभ्यः परेभ्यश्च वितन्वतः ।
एकदेशागमस्यायमेकदेशोपदिश्यते ॥ ६६ ॥
अर्थतः पूर्व एवायमपूर्वो ग्रन्थतोऽल्पतः ।
शास्त्रविस्तारभीतिभ्यः क्रियते सारसंग्रहः ॥ ६७ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मङ्गलाचरणके अन्तर्गत इसपुराणका संक्षिप्त सूत्र.

—————:o:—————

लोकसंस्थानमत्रादौ राजवंशोद्भवस्ततः ।
हरिवंशावतारोऽतो वसुदेवाविचेष्टितम् ॥ ७० ॥
चरितं नेमिनाथस्य द्वारवत्त्यां निवेशनम् ।
युद्धवर्णननिर्वाणे पुराणेऽष्टौ शुभा इमे ॥ ७१ ॥
संगृहादधिकारैः स्वैः संगृहीतैरलङ्कृताः ।
अधिकाराः सूत्रिताः प्राक् सूरिसूत्रानुसारिभिः ॥ ७२ ॥
संग्रहैर्नवभागेन विस्तरेण च वस्तुतः ।
शासने देशता यस्माद्विभागः कथ्यते ततः ॥ ७३ ॥
वर्द्धमानजिनेन्द्रस्य धर्म्मतीर्थप्रवर्तनम् ।
गणभृद्गणसंख्यानं भूयो राजगृहागमम् ॥ ७४ ॥
गौतमश्रेणिकप्रश्नं क्षेत्रकालनिरूपणं ।
ततः कुलकरोत्पत्तिमुत्पत्तिं वृषभस्य च ॥ ७५ ॥
कीर्तनं क्षत्रियादीनां हरिवंशप्रवर्तनम् ।
मुनिसुव्रतनाथस्य तत्र वंशे समुद्भवम् ॥ ७६ ॥
दक्षप्रजापतेर्वृत्तं वसुवृत्तान्तमेव च ।
जननं वृष्णिपुत्राणां सुप्रतिष्ठस्य केवलम् ॥ ७७ ॥
वृष्णिदीक्षां तथा राज्यं समुद्रविजयस्य तु ।
वसुदेवस्य सौभाग्यमुपायेन विनिर्गमम् ॥ ७८ ॥
लाभं कन्यकयोस्तस्य सोमाविजयसेनयोः ॥
वन्यहस्तिवशीकारं श्यामया सह संगमम् ॥ ७९ ॥
अंगारकेण हरणं चम्पायां च विमोचनम् ।
लाभं गन्धर्वसेनाया मुनेर्विष्णोर्विचेष्टितम् ॥ ८० ॥
चरितं चारुदत्तस्य तस्यैव मुनिदर्शनम् ।
चारु नीलयशोलाभं सोमश्रीलाभमेव च ॥ ८१ ॥
वेदोत्पत्तिमुपाख्यानं सौदासस्य नृपस्य तु ।
कपलि(?) कन्यकालाभं पद्मावत्युपलम्भनम् ॥ ८२ ॥
सप्राप्तिं चारुहासिन्या रत्नावत्यास्ततोऽपि च ।
सोमदत्तसुतालाभं वेगवत्याश्च संगमं ॥ ८३ ॥
लाभं मदनवेगाया बालचन्द्रावलोकनम् ।
प्रियङ्गुसुन्दरीलाभं बन्धुवत्यां समन्वितम् ॥ ८४ ॥
प्रभावत्याः परिप्राप्तिं रोहिण्याश्च स्वयम्वरम् ।
संग्रामे विजयं तस्य भ्रातृभिः सह संगमम् ॥ ८५ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बलदेवसमुत्पत्तिं कंसोपाख्यानमेव च ।
जरासन्धस्य वचनात्सिंहस्यन्दनबन्धनम् ॥ ८६ ॥
यथा जीवद्यशोलाभं कंसस्य पितृबन्धनम् ।
देवक्या सह संयोगं ततोऽप्यानकदुन्दुभेः ॥ ८७ ॥
सत्पाति (?) मुक्तकादेशं कंससंक्षोभकारणम् ।
प्रार्थनं वसुदेवस्य देवकीप्रसवंप्रति ॥ ८८ ॥
आनकेन मुनेः प्रश्नमष्टपुत्रभवान्तरम् ।
चरितं नेमिनाथस्य पापप्रमथनं तथा ॥ ८९ ॥
उत्पत्तिं वासुदेवस्य गोकुले बालचेष्टितम् ।
ग्रहणं सर्वशास्त्राणां बलदेवोपदेशतः ॥ ९० ॥
चापरत्नसमारोपं कालिंद्यानागनाशनम् ।
वाजिवारणचाणूरमल्लकं सवधं ततः ॥ ९१ ॥
उग्रसेनस्य राज्यं च सत्यभामाकरग्रहं ।
सर्वज्ञातिसमेतस्य प्रीतिं च परमां हरेः ॥ ९२ ॥
जीवंयशाविलापं च जरासन्धतुषं ततः ।
प्रेषितस्य रणे कालयमनस्य पराभवम् ॥ ९३ ॥
तथा पराजितस्यापि मारणं हरिणा रणे ।
सौरीणां परमं तोषमकुतोभयतःस्थितिम् ॥ ९४ ॥
शिवदेव्याः सुतोत्पत्तौ षोड़शस्वप्नदर्शनम् ।
फलानां कथनं पत्या नेमिनाथं समुद्भवम् ॥ ९५ ॥
मेरौ जन्माभिषेकं च बालक्रीडामहोदयम् ।
जरासन्धातिसन्धानं सौरिसागरसंश्रयम् ॥ ९६ ॥
देवताकृतमायातो जरासन्धनिवर्तनम् ।
विष्णोस्साष्टमभक्तस्य दर्भशय्याधिरोहणम् ॥ ९७ ॥
गौतमेन्द्रस्य वचनात्सागरस्यापसारणम् ।
कुबेरेणाक्षणात्तत्र द्वारवत्यां निवेशनं ॥ ९८ ॥
रुक्मिणीहरणं भास्वद्भानुप्रद्युम्नसम्भवम् ।
रौक्मिणोपहृतिं पूर्ववैरिणा धूमकेतुना ॥ ९९ ॥
विजयार्द्धे स्थितिं पित्रोर्नारदेनेष्टसूचनम् ।
प्राप्तिं षोडशलाभानां प्रज्ञप्तेरुपलम्भनम् ॥ १०० ॥
कालसंवर-संग्रामं पितृमातृसमागमम् ।
शम्बोत्पत्तिं शिशुक्रीडां प्रभं वापि पितुः पितुः ॥ १०१ ॥
तेन स्वहिंडनाख्यानं कुमाराणां च कीर्तनम् ।
वार्तोपलंभादूतस्य प्रेषणं प्रतिशत्रुणा ॥ १०२ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यादवानां सभाक्षोभं सेनयोरुपसर्पणम् ।
विजयार्द्धे खगक्षोभं वसुदेवपराक्रमम् ॥ १०३ ॥
अक्षौहिणीप्रमाणञ्च रथिनोऽतिरथांस्तथा ।
महासमारथान्सर्वान्नृपानर्द्धरथानपि ॥ १०४ ॥
चक्रव्यूहव्यपोहार्थं गरुडव्यूहकल्पनं ।
सिंहगारुडविद्यासु रथाग्निं बलकृष्णयोः ॥ १०५
नेमेः सारथिरूपेण मातलेरुपसर्पणम् ।
नेम्य (मि) ना वृष्णिपाथश्च चक्रव्यूहस्य भेदनम् ॥ १०६ ॥
क (?) न्दनं पाण्डुपुत्राणां धृतराष्ट्रसुतैः सह ।
सेनापत्योर्महायुद्धं कृष्णमाधवयोरतः ॥ १०७ ॥
चक्रोत्पत्तिं तथा विष्णोः जरासन्धवधस्ततः ।
विजयं वासुदेवस्य खेचरीभिर्निवेदितम् ॥ १०८ ॥
कृष्णकोटिशिलोत्क्षेपं (?) वसुदेवागमं ततः ।
ततो दिग्विजयं दिव्यं रत्नानां च समुद्भवम् ॥ १०९ ॥
भ्रात्रा राज्याभिषेकञ्च द्रौपदीहरणं सह (?) ।
पाण्डवैर्द्धातकीखण्डाद्विष्णुनानयनं पुनः (?) ॥ ११० ॥
नेमिसामर्थ्यविज्ञानं मज्जनं तदनन्तरम् ।
पूरणं पाञ्चजन्यस्य विवाहारम्भसंभ्रमम् ॥ १११ ॥
मृगमोक्षविधानञ्च दीक्षणं केवलोदयम् ।
देवागमविभूतिं च समवस्थानकीर्त्तनम् ॥ ११२ ॥
राजीमत्यास्तपःप्राप्तिं द्विधा धर्म्मोपदेशनम् ।
धर्म्मतीर्थविहारञ्च षट्सहोदरसंयमम् ॥ ११३ ॥
द्वीपायनमुनिक्रोधाद्द्वारावत्या विनाशनम् ।
रामकेशवयोःष्टुवं (स्तोत्रं) बन्धुपुत्रकलत्रयोः ॥ ११४ ॥
निर्गमं दुर्गमं कोशं कौशाम्बवनसेवनम् ।
सीरिरक्षणमुक्तस्य प्रमादाद्दैवयोगतः ॥ ११५ ॥
जरत्कुमारमुक्तेन शरेण हननं हरेः ।
ततो घातकशोकंच शोकं रामस्य दुस्तरम् ॥ ११६ ॥
सिद्धार्थबोधितस्यास्य निर्विण्णस्य तपस्यनं (?) !
ब्रह्मलोकोपपादं च कौन्तेयानं तपोचनं (?) ॥ ११७ ॥
उर्ज्जयन्तगिरावन्ते नेमिनाथस्य निर्वृतिं ।
उपसर्गं जयन्तंच पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११८ ॥
दीक्षां जरत्कुमारस्य सन्तानन्तस्य चायतम् ।
हरिवंशपुराणस्य जितशत्रोश्च केवलम् ॥ ११९ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुरप्रवेशमन्ते च श्रेणिकस्य पृथुश्रियः ।
वर्द्धमानजिनेशस्य निर्वाणं गणिनां तथा ॥ १२० ॥
देवलोककृतं वक्ष्ये प्रदीपमहिमोदयं ।
हरिवंशपुराणस्य विभागोऽयं समासंग्रहः ॥ १२१ ॥

प्रशस्ति.

अमुष्य यात्राद्य तपोबलान्मुने-रवाप्तकैवल्यफला मनुष्यता ।
मनुष्यभावो हि महाफलं भवे भवेदयं प्राप्तफलस्तपःफलात् ॥ १० ॥
इतीरितेयं हरिवंशसत्कथा समासतः श्रेणिकलोकविश्रुता ।
त्रिषष्टिसंख्यानपुराणपद्धतिं प्रदेशसम्बधवर्तीं श्रियेऽस्तु ते ॥ ११ ॥
सुगौतमात्पुण्यपुराणपद्धतिं सपार्थिव-श्रेणिकपार्थिवस्तदा ॥
सुदृष्टिराकर्ण्य सकर्णतां गतो गतः पुरः प्रीतिमतिः कृतानतिः ॥ १२ ॥
चतुर्निकायामरखेचरादयो जिनं परीत्य प्रणपत्य भक्तितः ।
यथायथं जग्मुरजन्मकांक्षिणः प्रसिद्धसद्धर्मकथानुरागिणः ॥ १३ ॥
विहृत्य पूज्योऽपि महीं महीयसीम् महामुनिर्मोचितकर्म्मबन्धनः ।
इयाय मोक्षं जितशत्रुकेवली, निरन्तसौख्यप्रतिबद्धमक्षयम् ॥ १४ ॥
जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य सन्ततं समन्ततो भव्य-समूह-सन्ततिम् ।
प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीं मनोहरोद्यानवने तदीयके ॥ १५ ॥
चतुर्थकालेऽर्द्धचतुर्थमासकैर्विहीनताविश्चतुरब्दशेषके ।
सकार्तिके स्वातिषु कृष्णभूतसु प्रभातसन्ध्यासमये स्वभावतः ॥ १६ ॥
अघातिकर्म्माणि निरुद्धयोगको विधूय घातीन्धनवद्विबंधनः ।
विबन्धनस्थानमवाप संकरो निरन्तरायोऽत्र सुखानुबन्धनम् ॥ १७ ॥
स पञ्चकल्याणमहामहेश्वरः प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः ।
शरीरपूजाविधिना विधानतः सुरैः समभ्यर्च्यत सिद्धशासनः ॥ १८ ॥
ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया ।
तदास्मपावानगरी समन्ततः प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥ १९ ॥
तथैव च श्रेणिकपूर्वभूभुजः प्रकृत्य कल्याणमयं सहप्रजाः ।
प्रजग्मुरिन्द्राश्च सुरैर्यथायथं प्रयाचमानाजिनबोधिमर्थिनः ॥ २० ॥
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात् प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते ।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक् ॥ २१ ॥
त्रयः क्रमात्केवलिनो जिनात्परे द्विषष्टिवर्षान्तरभाविनोऽभवत् ।
ततः परे पञ्च समस्तपूर्विणः तपोधना वर्षशतान्तरे गताः ॥ २२ ॥
त्र्यशीतिके वर्षशते तु रूपयुक् दशैव गीता दश पूर्विणः शतः ।
द्वये च विंशेऽगभूतोऽपि पञ्च ते सतेऽगमाष्टादशके चतुर्मुनिः ॥ २३ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गुरुः सुभद्रो जयभद्रनामापरो यशोबाहुरनन्तरस्ततः ।
महार्हलोहार्यगुरुश्च ये दधुः प्रसिद्धमाचारमहाङ्गभं व्रते ॥ २४ ॥

महातपोद्वृद्धिनयन्धरश्रुतामृषिश्रुतिं गुप्तपदादिकां दधन् ।
मुनीश्वरोऽन्यः शिवगुप्तिसंज्ञको गुणैः स्वमर्हद्बलिरप्यधात्पदम् ॥ २५ ॥

समन्दरार्योपि च मित्रवीरविं गुरू तथान्योवलनोपमित्रकौ ।
विवर्द्धमानाय त्रिरत्नसंयुतश्रियान्वितः सिंहबलश्च वीरवित् ॥ २६ ॥

स पद्मसेनो गुणपद्मखण्डभृद्गुणाग्रणी व्याघ्रपदादिहस्तकः ।
स नागहस्ती जितदण्डनामभृत् सनन्दिषेणः प्रभुदीपसेनकः ॥ २७ ॥

तपोधनः श्रीधरसेनसंज्ञकः सुधर्मसेनोऽपि च सिंहसेनकः ।
सुनन्दिषेणेश्वरसेनकौ प्रभू सुनन्दिषेणाभयसेननामकौ ॥ २८ ॥

सुसिद्धसेनोभयभीमसेनकौ गुरू परौ तौ जिनशान्तिषेणकौ ।
अखण्डभुत्खंडमखण्डितस्थितिः समस्तसिद्धान्तमधत्त योऽर्थतः ॥ २९ ॥

दधार कर्म्मप्रकृतिं श्रुतिं च यो जिताक्षवृत्तिर्जयसेनसद्गुरुः ।
प्रसिद्धवैयाकरणप्रभाववा-नशेषराद्धान्तसमुद्रपारगः ॥ ३० ॥

तदीयशिष्योऽमितसेनसद्गुरुः पवित्रपुन्नाटगणाग्रणी गुणी ।
जिनेन्द्रसच्छासनवत्सलात्मना तपोभृता वर्षशताधिजीविना ॥ ३१ ॥

सुशास्त्रदानेन वदान्यतामुना वदान्यमुख्येन भुवि प्रकाशिताः ।
तदग्रजो धर्म्मसहोदरः शमी समग्रधीर्धर्म्म इवात्तविग्रहः ॥ ३२ ॥

तपोमयीं कीर्तिमशेषदिक्षु यः क्षिपन्बभौ कीर्तितकीर्तिषेणमाः (?) ।
तदग्रशिष्येण शिवाग्रसौख्यमा (?) गरिष्टनेमीश्वरभक्तिभारिणा ॥ ३३ ॥

स्वशक्तिभाजा जिनसेनसूरिणा धियालपयोक्ता हरिवंशपद्धतिः ।
यदत्र किंचिद्वचितं प्रमादतः परस्परव्याहतदोषदूषितम् ॥ ३४ ॥

तदप्रमादास्तु पुराणकोविदाः सृजन्तु जन्तुस्थिति शक्तिवेदिनः ।
प्रशस्तवंशो हरिवंशपर्वतः क मे मतिः काल्पतरालपशक्तिका ॥ ३५ ॥

अनेन पुण्यप्रभवंस्तु केवलम् जिनेंद्रवंशस्तवनेन वाञ्छितः ।
न काव्यबंधव्यसनानुबन्धतो न कीर्तिसन्तानमहामनीषया ॥ ३६ ॥

न काव्यगर्वेण न वान्यवीक्षया जिनस्य भक्त्यैव कृता कृतिर्मया ।
जिनाश्चतुर्विंशतिरत्र कीर्तिताः सुकीर्त्तयो द्वादश चक्रवर्तिनः ॥ ३७ ॥

नवत्रिधासीरिहरिप्रतिद्विष स्त्रिषष्टिरित्थं पुरुषाः पुराणगाः ।
अवान्तरेऽनेकशतानि पार्थिवाः महीचरा व्योमचराश्च भूरिशः ॥ ३८ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

क्षितौ चतुर्भोगफलोपभोगिनः पुराणमुख्येऽत्र यशस्विनः स्तुताः ।
अगण्यपुण्यं हरिवंशकीर्त्तनाद्यदत्र गण्यं गुणसंचितं मया ॥ ३९ ॥
फलादमुष्मात्तु मनुष्यलोकजाः भवन्तु भव्या जिनशासनस्थिताः ।
जिनस्य नेमेश्चरितं चराचरं प्रसिद्ध जीवादिपदार्थभासनम् ॥ ४० ॥

प्रवाच्यतां वाचकमुख्यसज्ज्ञैः समागतैः श्रोत्रपुटैः प्रपीयताम् ।
शाकेष्वद्वशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तराम् ।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम् ॥
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादिराजेऽपराम् ।
शौर्याणामधिमण्डलं जयत्युते वीरे वराहेऽवति ॥ ५३ ॥
कल्याणैः परिवर्द्धमानविपुला श्रीवर्द्धमाने पुरे
श्रीपार्श्वालयनन्न (?) राजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा ।
पश्चाद्दोस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनावर्द्धने
शान्ते शान्तिगृहे जिने सुरचितो वंशो हरिणामयं ॥ ५४ ॥
व्युत्सृष्टापरसंघसन्ततिबृहन्पुन्नाटसंघान्वये
प्राप्तश्री जिनसेनसूरिकविना लाभाय बोधेः पुनः ।
दृष्टोऽयं हरिवंशपुण्यचरितः श्रीपर्वतः सर्वतो-
व्याप्ताशामुखमण्डलः स्थिरतरः स्थेयात्पृथिव्यां चिरम् ॥ ५५ ॥
इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य
कृतौ पर्वकमलवर्णनो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

इति हरिवंशपुराणं समाप्तम् ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हरिवंशपुराणके मंगलाचरण और प्रशस्तिका आशयानुवाद.

ॐ नमो वीतरागाय।

ध्रौव्य व्ययोत्पादलक्षणावाला, धर्मका साधनभूत और द्रव्यादिकोंकी अपेक्षा सादि तथा अनादि जैनशासन सिद्ध है ॥ १ ॥

शुद्ध ज्ञानके प्रकाश करनेके लिये सारे लोकके एक सूर्य, जिनशासनवधर्क श्री **वर्द्धमान** स्वामीको नमस्कार है ॥ २ ॥

* * * * *

देखिये, संसारमें जीव–सिद्धि करके अकाटय युक्तियोंसे भरी हुई संभ्रान्त वीरकेसे **श्रीसमन्तभद्र** स्वामीकी बातें आज सर्वत्र माननीय हो रही हैं ॥ ३० ॥

प्रसिद्ध बोद्धा वृषभकेसे **सिद्धसेनकी** स्वच्छ सूक्तियां सज्जनोंकी मुद्रित बुद्धिको उन्मिषित करती रहती हैं ॥ ३१ ॥

इन्द्र, चंद्र, अर्क और जैनेन्द्र आदि व्याकरणोंके उत्सव स्वरुप श्रीदेवसंघकी बातें क्या नहीं माननीय होगीं ? यानि होही गीं ॥ ३२ ॥

न्याय तथा धर्मशास्त्रके व्याख्याताओंकी उक्ती की नाइ **वज्रसूरि**की सहेतुक बद्ध और मोक्षकी विचारशालिनी उक्तियां हैं ॥ ३३ ॥

सुंदर आंखवाली स्त्रीकीसी **महासेन**की विनयालंकारालंकृता कथा कौन नहीं वर्णित करेगा ? ॥ ३४ ॥

प्रतिदिन काव्यशोभा अथवा लक्ष्मीको बढ़ानेवाली संसारमें काव्यमूर्ति कीसी सूर्य प्रियाकी नाईं वरांग शब्दको परितार्थ करनेवाली वरांगनाकी ऐसी कविता भला किसके मनमें सुभग अनुराग नहीं उत्पन्न करती ॥ ३५।३६ ॥

जिनकी रम्य उत्प्रेक्षा और शान्तरसानुगामिनी वक्रोक्ति हठात् सब किसीके मनको मनोहर प्रशस्त अर्थमें अनुरंजित करती है ॥ ३७ ॥

गुरु **कुमारसेन**के प्रभापूर्ण चंद्रोदय काव्यका उज्ज्वल यश समुद्रपर्यंत अविजित-रूपसे फैला हुआ है ॥ ३९ ॥

इस लोक और परलोकको जीतनेवाले कविसम्राट् श्रीगुरु **वीरसेन**की कीर्ति स्वच्छ प्रभासित हो रही है ॥ ४० ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जिनसेनस्वामीने पार्श्वनाथ भगवानके गुणोंकी जो अपूर्व स्तुति बनाई है, वह उनकी कीर्तिका भली भांति संकीर्तन कर रही है। तथा उनके अभ्युदयका कारण हुई है। उनके रचे हुए वर्द्धमानपुराणरूपी उदयोन्मुख सूर्यकी उक्तिरूपी किरणें विद्वान् पुरुषोंकी अन्तःकरणरूपी स्फटिक भूमिमें स्फुरायमान हो रही है ॥ ४१–४२॥

जैसे आम्रमंजरी स्त्रियोंके मुखका भूषण हो जाती है, वैसेही सज्जनसे उपदिष्ट होकर निर्गुणीभी गुणोंको धारण करता है ॥ ४३ ॥

जैसे अग्नि सुवर्णकी कालिमा जलाकर अमूल्य तथा स्वच्छ बना देती है वैसे सज्जन बिना कहे हुएभी काव्यका दोष निकाल कर उसका गुण ग्रहण करते हैं ॥४४॥

जिस तरह समुद्रकी लहरें बाहरसे व्यर्थ आई हुई तृणादि वस्तुओंको बाहर फेकती हैं, उसी तरह पण्डितमण्डलीभी काव्य गत दोषको बुद्धि-वैशद्यसे झट निकाल देती है॥४५॥

समुद्रका जल जिस तरहसे स्वच्छ शुक्तिओंसे शोभता है उसी तरह सभानुमोदित किसी कविकी कृति सर्वत्र प्रकाशित होती है ॥ ४६ ॥

दुष्टोंके मुंहमें दुर्वचरूपी विषसे सर्पकी नाईं अनर्गलता भरी रहती है किन्तु अच्छे राजाएं अपनी शक्तिसे खलरूपी सर्पको दबा देते हैं ॥ ४७ ॥

रजोगुणविशिष्ट अथवा धूलिकी अधिकता, वा काव्यनीरसता आदि उपद्रवको मचानेवाले दुष्टकालको सदसद्विवेक सज्जनवर्षाकेसे शमन करते हैं ॥ ४८ ॥

भले बुरेकी परीक्षा नहीं करनेवालोंको विद्वान् लोग सूर्य तथा चंद्रमाकी किरणें जैसे अन्धकारको हटाती हैं, वैसेही औद्धत्यपनेसे रोकते हैं ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार अनुद्विग्नता तथा अनुद्धतासे, सज्जनोंकी सहायतासे सहायवान् होकर पहले मैं अपनी इस कव्यमय देहको स्थिर करतां हूं ॥ ५० ॥

बहुत शाखा प्रशाखाओंसे अलंकृत, जगत्प्रसिद्ध कल्पवृक्षके ऐसा बहुत पुण्यफलको देनेवाला, परम पवित्र और **अरिष्टनेमिनाथजीके** चरित्रमें प्रज्वलित सुन्दर हरिवंश नामका पुराण मै प्रख्यात करताहूं ॥ ५१–५२ ॥

जैसे सूर्यकी चमकको समुद्र, मणि, दीपक, खद्योत और बिजली यथाशक्ति विशेष प्रकाशमय करनेकी चेष्टा करती हैं। वैसेही पूर्वाचार्योंसे प्रकाशित पुराणकी ख्याति कुछ विशेष करनेके लिये मुझसे अल्पज्ञकी चेष्टा समझनी चाहिये ॥५३-५४॥

क्षेत्रादिके विभागसे पांच विभाग इसके किये गये हैं। प्रमाण, आगम इसमें प्रमाण तों पुरुषका बनाया हुआ है ॥ ५६ ॥

मूलतंत्रके कर्ता स्वयं तीर्थंकर हैं, और उत्तरतन्त्रके कर्ता गणधराग्रणी **श्रीगौतम** गणधर हैं ॥ ५७ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

और भी इसके उत्तरोत्तर जो तीन तंत्र हैं उनके कर्ता बहुतसे हो गये हैं, किन्तु सर्वज्ञ देवके कथनके ये लोग पीछा करनेवाले हैं इसलिये प्रमाणीभूत हैं ॥ ५८ ॥

पांच केवली पदके धारक, चतुर्दश पूर्वके धारक, एकादश प्राज्ञ, दशपूर्वके धारी, पांच मुनि एकादशांगके धारक, और आचारांगके चार (मुनि) धारक कहे गये हैं ॥ ५९–६० ॥

वर्द्धमानजिनेन्द्रके शिष्य **इंद्रभूति**ने श्रुतको धारण किया । तत्पश्चात् **सुधर्मा** अन्तकेवली **जम्बूस्वामी**नेभी धारण किया । क्रमशः निम्नलिखित आचार्य श्रुतके धारी हुए ॥ ६१ ॥

विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रबाहु ये श्रुतके धारी (श्रुतकेवली) हुए । ग्यारह अंग और दश पूर्व्वके धारी **विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिसेन विजय, बुद्धिल, गंगदेव** और **धर्मसेन** मुनीश्वर हुए । तत्पश्चात् **नक्षत्राचार्य, यशःपाल**, (जयपाल) **पाण्डु, ध्रुवसेन** और **कंसाचार्य** ये पांच एकादश अंगके धारी हुए ॥६२-६३-६४ ॥

तत्पश्चात् **सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु** (द्वितीय भद्रबाहु) और **लोहाचार्य** ये चार आचारांगके धारण करनेवाले हुए ॥ ६५ ॥

इन पूर्वाचार्योंसे विस्तारपूर्वक ग्यारह अंगके शास्त्रकी रचना हुई है उसका मैं एक-देश (कुछ अंश) लिखताहूं ॥ ६६ ॥

अर्थसे अथवा अल्प ग्रंथ होनेसे यह पुराण अपूर्व है। किन्तु बढ़ जानेके डरसे यहां मैं सार संग्रह करता हूं ॥ ६७-६९ ॥

पुराणभूमिकाके अन्तर्गत इस पुराणका संक्षिप्त सूत्र

इस पुराणमें पहिले लोगका संस्थान, पश्चात् राजाओंकी वंशोत्पत्ति, हरिवंशका अवतार, वसुदेवका अनेक प्रकारकी चेष्टा करना, नेमिनाथ महाराजका चरित्र, द्वारावतीमें प्रवेश करना, युद्ध वर्णन और निर्वाण ये आठ विषय इस पुराणमें बड़े ही मंगलसूचक मालूम पड़ते हैं ॥ ७०-७१ ॥

अपने संगृहीत पूर्व आचार्योंके सूत्रका पीछा करनेवाले अधिकारोंसे अधिकारोंको सूत्र बनाया और इनका नव भागोंमें विभाग किया हुआ है; सो उसीको मैं कहता हूं ॥ ७२-७३ ॥

वर्द्धमानजिनेंद्रका धर्मतीर्थका प्रचार करना, गणधरोंके गणकी स्थापना, फिर राजगृहवनमें आना, गौतम श्रेणिकका प्रश्न, क्षेत्र और कालका निरूपण करना, इसके बाद कुलकर तथा वृषभ (धर्मकी) की उत्पत्ति कही गयी है ७४-७५ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इसके बाद क्षत्रियोंका कीर्तन तथा हरिवंशका प्रवर्तन हुआ। और इसी वंशमें **मुनिसुव्रत** नाथ तीर्थंकरकी उत्पत्ति हुई ॥ ७६ ॥

इसके बाद **दक्ष प्रजापति** (राजा) का वृतान्त और **वसु** राजाका वृत्तान्त लिखा हुआ है। तत्पश्चात् **वृष्णिपुत्रों**का जन्म, **सुप्रतिष्ठ**का केवलज्ञान, वृष्णियोंका दीक्षा धारण करना, **समुद्रविजय**का राज्य, और **वसुदेव**की सौभाग्यसंपत्तिका वर्णन है ॥७७-७८॥

तत्पश्चात् **वासुदेव**को **सोमा** और **विजयसेना** इन दो कन्याओंकी प्राप्ति, बनैले हाथीको वशीभूत करना तथा **श्यामा**के साथ समागम होना, **अंगारक**से उनका हरण होना, चम्पापुरीमें छुटकारा पाना, फिर गंधर्वसेनाकी प्राप्ति तथा **विष्णु**मुनिकी चेष्टा करना ॥ ७९–८० ॥

चारुदत्तका चरित्र पुनः उन्ही मुनिका दर्शन और विस्तृत यशका प्राप्त होना, **सोमश्री**का लाभ, **वेदकी उत्पत्ति, सौदास** राजाकी कथा, । और इसके बाद **कपिला**कन्यका और **पद्मावती**का प्राप्त होना लिखा है ॥ ८१-८२ ॥

पश्चात् **मदनवेगा**की प्राप्ति, **बालचंद्र**का दर्शन, **प्रभावती**का मिलना, **रोहिणी**का स्वयंवर, और युद्धमें उनकी विजय होना तथा भाईयोंके साथ मिलाप होना लिखा है ॥ ८३-८४-८५ ॥

बलदेवकी उत्पत्ति, **कंस**की कथा, **जरासंध**के कहनेसे सिंहस्यंदनको बांधना ८६

मूर्तिमान् यशका लाभ, **कंस**के पिताको बांधना, **वसुदेव**का **देवकी**के साथ संयोग, सत्पाति मुक्तका आदेश (?), **कंस**को संक्षोभ होना, **देवकी**के प्रसवके प्रति वसुदेवकी प्रार्थना ॥ ८७-८८ ॥

वसुदेवका मुनिसे आठ पुत्रोंके जन्मान्तरकी बात पूछना, पापविनाशक ऐसे **श्रीनेमिनाथ**का चरित्रकी जिज्ञासा ॥ ८९ ॥

आगे भगवान् **श्रीकृष्ण**की उत्पत्ति, गोकुलमें बालक्रीडा और **बलदेव**जीके उपदेशसे सब शास्त्रोंका पठन करना, चापरत्नका चढ़ाना, **कालिन्दी**के **सर्प**को दबाना, पीछे अश्व हाथी तथा **चाणूरमल्लका** वध करना, **उग्रसेन**का राज्य करना, **सत्यभामाका** पाणिग्रहण करना, और सपरिवार **कृष्ण**को परमानन्द होना—वर्णन किया गया है ॥ ९०–९२ ॥

जीवंयशाका विलाप, **जरासंध**का संतुष्ट होना, रणमें भेज हुए **कालयवन**का पराभव होना वर्णन किया है ॥ ९३ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तत्पश्चात् युद्धमें हरिसे अपराजितका मरण, वसुदेवको परम संतुष्ट होना तथा निर्भयता प्राप्त करना-लिखा है ॥ ९४ ॥

शिवादेवीको पुत्रोत्पत्तिमें सोलह स्वप्नोंका देखना, पतिसे इनका फल कहा जाना तथा **नेमिनाथ** भगवान् जन्मावतरण होना नेमिनाथको मेरुपर्वतपर जन्माभिषेक होना, बालक्रीडाका महोत्सव होना, तत्पश्चात् **जरा**संधका युद्ध करना लिखा है ॥९५-९६॥

फिर देवताकी मायासे **जरा**संधको युद्धसे हटना, अष्टमभक्तके साथ साथ **विष्णु**को दर्भासनपर विराजमान होना, **गौतमेंद्र**के कहनेसे सागरका हटाना, उत्सवके निमित्तसे कुबेरका द्वारावतीमें प्रवेश, तत्पश्चात् **रुक्मिणीका** हरण होना, सूर्यके समान तेजस्वी **प्रद्युम्नका** उत्पन्न होना और पूर्वशत्रु **धुमकेतु**से प्रद्युम्नका हरण होनेका उल्लेख है ॥ ९७-९९ ॥

विजयार्द्धपर्वतपर प्रद्युम्नके निवासका वृत्तान्त नारदद्वारा **कृष्ण**--**रुक्मिणी**को मालूम होना और सोलह वर्षके बाद विद्याके साथ प्रद्युम्नका मिलना । **प्रद्युम्न**का **काल**-संवरके साथ युद्ध होना, तत्पश्चात् मातापिताका समागम होना तथा **शंबू**कुमारकी उत्पत्ति, बालक्रीडा और पितामहका प्रश्न करना वर्णित है ॥ १००-१०१ ॥

हिंडनाका आख्यान, कुमारोंका कीर्तन, वृत्तान्तोपलब्धिसे शत्रुके प्रति दूतको भेजना, यादवोंकी सभामें क्षोभ होना, तथा दोनो सेनाओंका आना ॥ १०२ ॥

विजयार्द्धपर्वतपर विद्याधरोंका क्षोभ होना, वसुदेवका पराक्रम दिखलाना, अक्षौहिणी (चतुरंग सेना) का प्रमाण, रथी, अतिरथी, महारथी, अर्द्धरथी आदि राजाओंका वर्णन, तथा चक्रव्यूहका नाश करनेके लिये **गरुड़व्यूह**की योजना, बलदेव और कृष्णको सिंह और गारुडी विद्यामें सफलता प्राप्त कर लेना लिखा है ॥ १०३-१०५ ॥

सारथीके रूपसे **नेमिनाथ**को मातुलके समीप जाना, **ने**मिनाथको **वृ**ष्णि और अर्जुनद्वारा चक्रव्यूहका भेदन करना, **पाण्डु**पुत्रोंको **धृतराष्ट्र**के पुत्रके साथ युद्ध होना, सेनापति **कृ**ष्णमाधवमें युद्ध, **विष्णु**को चक्ररत्नकी प्राप्ति होना, **ज**रासंधका वध होना और विद्याधरियोंके द्वारा **वासुदेव**का विजय निवेदन होना उल्लिखित है ॥ १०६-१०८ ॥

कृष्णका कोटिशिलापर आगमन होना, तत्पश्चात् दिग्विजय प्राप्ति होना और दिव्य रत्नोंका लाभ होना, **द्रौपदी**के हरणके साथ साथ दोनो भाइयोंका राज्याभिषेक, पांडवोंद्वारा धातकीखंडसे विष्णुका आगमन होना वर्णन किया है ॥ १०९-११० ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नेमिनाथ कुमारको शक्तिका प्रकट करना तत्पश्चात् नेमिनाथके साथ जलविहार करना, पांचजन्य नामक शंखको बजाना, और नेमिनाथके विवाहकी तयारीका वर्णन किया गया है ॥ १११ ॥

मृगादि पशुओंको मुक्त करना, और **नेमिनाथका** दीक्षा ग्रहण करना, उनको केवल ज्ञानप्राप्ति होना, देवोंके वैभवसे आकर तीर्थंकरकेलिये वैभवयुक्त समवसृति निर्माण करना ॥ ११२ ॥

राजीमतीको संसारको त्याग कर दीक्षा ग्रहण करने तप करना और तीर्थंकरद्वारा द्विविध धर्म—मुनि और श्रावक—धर्मका उपदेश करना, धर्मतीर्थमें विहार करना और पाण्डवादि छः भाईयोंका दीक्षा ग्रहण करना ॥ ११३ ॥

द्वीपायन मुनिको क्रोध उत्पन्न होना और उससे **द्वारका**का विनाश होना, पुत्र, कलत्र और बंधुओंके साथ बलराम और केशवको स्तवन करना लिखा है ॥ ११४ ॥

जरत्कुमार द्वारा मुक्त शरसे हरिको वध होना, तत्पश्चात् घातकको बड़ा भारी पश्चात्ताप होना और **बलराम**को बहुत शोक—संकुल होना ॥ ११६ ॥

सिद्धार्थके कहनेसे तपस्या करना और पंचस्वर्ग जो ब्रह्मलोक उसीकी प्राप्ति करना, **कौन्तेयका** तप करना ॥ ११७ ॥

उर्जयंत गिरिपर **नेमिनाथ** तीर्थंकरको निर्वाण प्राप्त होना, महात्मा पांडवोंको उपसर्ग होना, और जरत्कुमारका दीक्षा ग्रहण करना और इनकी संतानकी वृद्धि होना-लिखा है ॥ ११९ ॥

हरिवंशपुराणकी जीता है शत्रु जिन्होंने ऐसे पांडवोंको केवलज्ञान होना और **हरी**-वंशका कथा वर्द्धमान जिनेंद्रद्वारा सुनकर राजा **श्रेणिक**का राजगृह नगरीमें प्रवेशकरना तत्पश्चात् **वर्द्धमान** स्वामीको तथा उनके सम्मानार्थ देवोंसे दीपोंका महोत्सव करना इस भांति **हरिवंश**में संग्रहके साथ विभाग है । ॥ १२१ ॥

प्रशस्ति.

इस मुनिके तपोबलसे मनुष्यता कैवल्यफलको देनेवाली हुई क्योंकि इस संसारमें मनुष्यजन्म लेनाही बड़ी तपस्याका फल समझना चाहिये ॥ १० ॥

श्रेणिक नरेश्वरसे सुनी हुई यह **हरिवंश** कथा मैने संक्षिप्तसे कही । त्रिषष्टि शलाका पुरुषोंकी पुराण-पद्धतिसे संबंध रखनेवाली यह कथा तुम्हारी मंगलकारिणी होवे ॥ ११ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गौतम गणधरसे राजा श्रेणिक इस कथाको सुनकर सम्यग्दृष्टि तथा सत्कर्णी हुए। बल्कि पहिलेसे प्रसन्न तथा विनयी होकर अपने नगरको गये ॥ १२ ॥

भुवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिषवासी कल्पवासी चतुर्निकायदेव तथा विद्याधर **महावीर** जिनेंद्रको चारों तरफसे घेरकर उन्होंने भक्तिपूर्वक परमात्माको प्रणाम किया. और मोक्षकी आकांक्षा हृदयमें धारण करके प्रसिद्ध सद्धर्मकथापर दृढ़चित्त होते हुए अपने स्थानको पधारे ॥ १३ ॥

पूज्य होते हुए भी संपूर्ण पृथ्वीपर विहार कर सभी कर्मोंसे मुक्त होकर जितशत्रु होते हुए मोक्षपदको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥

महावीर जिनेंद्र भी अनवरत उपदेश देकर, चारों तरफ जिसके भव्य समूह है, ऐसी सुंदर **पावापुरी** नगरीको गये। चौथे कालमें, सार्ध चौथे महीनेमें, चौथे बरसमें **कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी** स्वाती नक्षत्रपर प्रातःकालके रमणीय सान्ध्य प्रकाशमें संपूर्ण कर्मबंधका नाश करके तथा अघाति कर्मको घाती इंधनेके ऐसा नष्टकर सच्चे सुखके स्थानको अर्थात् निर्वाण पदको प्राप्त हुए ॥ १५--१७ ॥

पांचकल्याणिक महामहोत्सवसे युक्त, प्रसिद्ध निर्वाणमहोत्सवमें, शरीर पूजाकी विधिसे चतुर्विध देवताओंसे वह सिद्धशासन श्रीमहावीरस्वामी पूजित हुए ॥ १८ ॥

सुर असुरोंसे प्रकाशित की गयी **दीपावली**से उस समय पावानगरी उद्भासित होकर आकाशको भी प्रकाशित करने लगी ॥ १९ ॥

उसी श्रेणिकके पूर्ववर्ती राजालोग प्रजाओंके साथ कल्याणमहोत्सवका संपादन कर देवताओंका तथा इंद्रोंके साथ साथ अपने अपने स्थानको पधारे ॥ २० ॥

जिनेंद्र भगवान्के **निर्वाण**की विभूतिका भक्तिभाजन होकर सभी लोग प्रतिवर्ष प्रसिद्ध दीपावलीके निमित्तसे जिनेंद्रकी आराधना करनेके लिये समुद्योतित हो गये ॥ २१ ॥

महावीरस्वामीके बाद क्रमशः बासठ वर्षके बीचमें तीन **केवल**ज्ञानी हो गये। तिसके बाद सौ वर्षके अंतर पांच तपस्वी श्रुतकेवलज्ञानी हुए ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् ८३ वर्षके बीचमें दशपूर्वके जाननेवाले दश मुनि हुए। फिर २२० वर्षमें अंगमात्रके जाननेवाले पांच मुनि हो गये। फिर १८ वर्षमें **सु**भद्र, **ज**यभद्र, **य**शोबाहु और **लो**हाचार्य ये चारों मुनि प्रथम अंगके धारक हुए ॥ २३-२४ ॥

तत्पश्चात् **नय**न्धर, ऋषिश्रुति, **गु**प्ति, **शि**वगुप्ति, **अ**र्हद्बलि, **मं**दराचार्य, **मि**त्रवीर, **ब**ल, **ब**लमित्र, **सिं**हबल, **वी**रवित्, **प**द्मसेन, **गु**णपद्म, **गु**णाग्रणी, **व्या**घ्रहस्त, **ना**गहस्ति, **जि**तदण्ड, **नं**दिसेन, **दी**पसेन, धरसेन, **ध**र्मसेन, **सिं**हसेन, **सु**नंदिषेण,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सूरसेन, **सु**नंदिषण, **अ**भयसेन, **सु**सिद्धिसेन, **अ**भयसेन, **भी**मसेन, **जि**नसेन और **शां**तिसेन आदि मुनि क्रमसे हुए। ये समस्त सिद्धशास्त्रके पारगामी और संसारमें प्रसिद्ध थे ॥ २५–२९ ॥

इनके बाद **ज**यसेन मुनि हुए। कर्मप्रकृतिशास्त्रके जाननेवाले, वशी, व्याकरणके अच्छे विद्वान् और सिद्धान्तरूप समुद्रके पारगामी थे ॥ ३० ॥

जयसेनमुनिके शिष्य **अ**मितसेन हुए। उस समय ये पवित्र **पु**न्नाटगणमें प्रधान मुनि गिने जाते थे। इन्हें जिनशासनसे बड़ा प्रेम था। बड़े तपस्वी थे, ये सौ वर्षतक जीवित थे। ये वक्ताओंमें प्रधान वक्ता थे। इन्होंने अपनी वक्तृतासे संसारमें बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी ॥ ३१–३२ ॥

जयसेनके बड़े भाई धर्मबन्धु **की**र्तिषेण हुए। ये बड़े बुद्धिमान्, शान्तस्वभावी थे। मानो धर्म हीने शरीर धारणा किया हो, ऐसे ये मालूम पड़ते थे। इनकी तपोमयी कीर्ति संसारभरमें प्रख्यात थी, ये बड़े भारी तपस्वी थे। इनके अग्रशिष्य, मोक्षसुख चाहनेवाले और **ने**मिनाथके परम भक्त मुक्त **जिनसेन**ने अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार इस हरिवंश पुराणको लिखा है। यदि इसमें प्रमादसे--असावधानीसे--अज्ञानसे कुछ लिखा गया हो, अथवा परस्पर कुछ असम्बद्ध लिखा गया हो, तो उसे पुराणके जाननेवाले और जीवोंकी स्थिति तथा शक्तिके ज्ञाता प्रमादरहित होकर सुधार दें। क्योंकि कहां तो हरिवंश पर्वतरूपी उत्तम वंश और कहां मुझ सरीखा अल्पबुद्धि और थोड़ी शक्तिवाला पुरुष ? ॥ ३३–३६ ॥

जिन भगवान्के वंशके इस स्तवनसे मेरी केवल यही वाञ्छा है कि, इससे पुण्यकी उत्पत्ति हो। काव्यरचनाके व्यसनसे अथवा कीर्ति प्राप्त करनेकी बड़ी भारी इच्छासे मैंने यह प्रयत्न नहीं किया ॥ ३६ ॥

मेरी यह कृति काव्यका गर्व दिखलानेके लिये अथवा दूसरे कवियोंकी ईर्षासे नहीं हुई है। किन्तु जिनेंद्र भगवान्की भक्तिसे हुई है ॥ ३७ ॥

इस ग्रंथमें **चौ**वीस **तीर्थंकर** और कीर्तिमान् **बार**ह **चक्रवर्ती नव बलभद्र नव नारायण नव प्रतिनारायण**, इस तरह **त्रिषष्ठिशलाका** पुरुषोंका तथा इनके सिवाय अन्यान्य सैकडों भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंका कि जिन्होंने इस पृथ्वीपर धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षरूप चारों फलोंका साधन किया है और जिनका यश चारों तरफ फैल रहा है—वर्णन किया गया है।

इस हरिवंशकी कीर्तिका वर्णन करनेसे मैंने जो अगण्य पुण्य और गुणोंका संचय किया है उसका फल मैं यही चाहता हूं कि, मनुष्यलोकमें जिनशासनका धारण करनेवाला भव्य जीव होवे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यह **नेमिनाथ** तीर्थंकरका चरित्र समस्त जीवादि पदार्थोंका प्रकाशक है. जो बाचक (शास्त्रोंका मुख्य व्याख्याता) मुख्य सज्जन हैं, उन्हें चाहिये कि इसे सभामें बांचे और जो सभामें आये हुए श्रोता हैं, वे अपने कानरूपी अंजलिसे इस अमृतका पान करें ॥ ४० ॥

जबकि उत्तर दिशामें **कृष्णराजा**का पुत्र **इंद्रायुध** (नामक राजा राज्य करता था) दक्षिणमें **श्रीवल्लभ**, पूर्वमें **अवन्तीनरेश** और पश्चिममें **वत्सराज** राज्य करते थे—उस समय **शक संवत् ७०५ में** यह ग्रंथ रचा गया. ॥ ५३ ॥

अनेक कल्याणोंके कारण—जहां कि सुख संपत्ति बढ़ी हुई है ऐसा **वर्द्धमान** नामका एक नगर है. वहां **नन्नराज** (रत्नराज) की वस्तीमें श्री **पार्श्व**नाथ भगवानका चैत्यालय है, उसमें इस ग्रंथका लिखनेका आरंभ किया गया और श्री शांतिनाथके मंदिरमें पूर्ण किया । इसलिये उस समय पूजन वगैरहसे खूब उत्सव बनाया गया था ॥ ५४ ॥

दूसरे संघोंकी सन्ततिको जिसने छोड़ दिया है, ऐसे बड़े **पुन्नाट** संघकी परिपाटीमें होनेवाले श्री **जिनसेनसूरि** कविने सम्यग्ज्ञानके पानेके लिये जो यह हरिवंशका पुण्यचरित्ररूपी शोभामय पर्वत देखा है—रचा है, वह सब ओरसे आशाओंके (दिशाओंके वा इच्छाओंके) मुखमंडलको व्याप्त करता हुआ पृथ्वीमें चिरकाल-तक स्थिर रहे ॥ ५५ ॥

इति श्री अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहान्तर्गत हरिवंशका
कालपर्व नामका ६६ वां
अध्याय समाप्त.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शाकासंवत्की उलझन.

इतिहास–मर्मज्ञो ! भूरिविभूति–शाली इस भारतवर्षका इतिहास बड़ी अँधेरी गिरिकन्दरामें पड़ा हुआ है। इसका उद्धार करना मानो लोहेका चना चबाना है। यह बात तो सर्वमान्य हो चुकी है, कि यदि इस भारतवर्षके इतिहासका उद्धार पूर्णरूपसे हो जाय तो, भारतीय इतिहास सभी इतिहासक्षेत्रमें अपना स्थान सर्वोच्च रक्खेगा। अदर्शभूत भारतीय साहित्य और नीति-निपुणता आदि विषयोंने विदेशीय विद्वानोंको यहां तक लालायित कर रक्खा है कि उनकी रगरगमें विद्याभिमान और स्वदेशाभिमानकी विद्युत् अविच्छिन्न दौड़ती रहनेपरभी उन्हें भारतीय संस्कृत-साहित्य-सुन्दरता, भारतीय अलौकिक वीरता, भारतवर्षीय कलाचतुरता, भारतीय प्राचीन सभ्यता तथा भारतकी नीतिनिपुणताकी प्रशंसा आपेसे बाहर होकर मुक्त कण्ठसे करनी पड़ी है।

वर्त्तमानसमयमें इतिहासके आधारभूत प्रचलित कथाएँ, पुराण तथा काव्यादि-कही हैं। परन्तु इनके आधारपर किसी इतिहासकी सत्यताका निर्णय कहाँ तक हो सकता है? यह विवेचनीय विषय है। प्यारे पाठको! यदि हम विक्रमादित्यको इतिहासाकाशके सहस्रकिरणमाली सूर्य्य कहें तो, इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। आज तक विदेशीय तथा भारतवर्षीय विद्या-दिग्गजोंने इनके समयादिकी स्थिरताके लिये दन्तकथासे लेकर शिला-लेख ताम्रपत्रतककी राखें छान डाली हैं, तथा अपनी अकाट्य कल्पनाओंकी बड़ी बड़ी आकाश-स्पर्शिनी इमारतें बना रक्खी हैं। किन्तु ये परस्पर विरोधिनी कल्पनाएँ विक्रमादित्य–विषयक शङ्काओंको निवृत्त करना तो दूर रहे बल्कि सर्वसाधारणोंके विचार-वैभव मस्तिष्कमें एक नये सन्देह-सागरकी तरंगे प्रोच्छलित कर रही हैं। इसीलिये–विक्रमादित्य कब हुए? यह सम्बत् किसने चलाया? इत्यादि अनेक प्रकारके महत्त्वपूर्ण प्रश्न हम भारतवासियोंके सम्मुख सदा उपस्थित ही रहते हैं।

आजतक किम्वदन्ती और प्राचीन निर्मूल दंन्तकथाओंके आधारपर हमलोगोंने यह मान रक्खा है कि आजके १९७० वर्ष पूर्व एक विक्रमादित्य नामक किसी पराक्रमी वीर राजाने म्लेच्छों (Scythions or sakas) के हाथसे इस पवित्र भारतभूमिका उद्धार कर अपनी विजय-वैजयन्ती फहरानेके लिये अपने नामका सम्बत् चलाया था। और प्रायः सभी व्यापारिक मण्डली तथा सामाजिक

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संस्थाओंमें यही सम्बत् समादृत होता है। यह भी कहा जाता है कि, इन्ही महाराज विक्रमादित्यकी सभामें 'नवरत्न' थे। इन्ही प्रसिद्ध रत्नोंमेंसे हमारे सुप्रसिद्ध कविवर कालिदास भी थे।

बंगसाहित्य-मार्त्तण्ड प्रातः स्मरणीय श्रीयुत ईश्वरचंद्रविद्या-सागरने शकुन्तला-नाटकका विक्रमादित्यकी छत्रछायामें रचा जाना लिखा है। आप कहते हैं कि, "वास्तवमें कालिदासका 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' अलौकिक पदार्थ है। धन्य कालिदास! धन्य अभिज्ञान-शाकुन्तल!! प्रलयके पहले तुम्हारे नष्ट होनेकी शङ्का नहीं। धन्य विक्रमादित्य! यह कालिदास तुम्हारे मित्र तथा सभासद थे। यह अभिज्ञान-शाकुन्तल तुम्हारेही परितोषार्थ उज्जयिनीकी रङ्ग-भूमिमें खेला गया था"।

धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटकर्प्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायाम्
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

इत्यादि अनेक प्रचलित श्लोकों तथा उक्तिसे विक्रमसभामें 'नवरत्नों' का रहना सिद्ध होता है। कविवर कालिदासके विक्रम-सभामें रहनेकी पूरी साक्षिता तो इनके दो नाटकही दे रहे हैं। एक तो 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नामक नाटकमें सूत्रधारने नटीसे कहा है कि "आर्य्ये इयं हि रसभाव-विशेष-दीक्षा-गुरोः विक्रमादित्यस्य अभिरूपभूयिष्ठा परिषत्" अर्थात् हे प्राण-प्रिये नटि! शृङ्गारादिरस और रसोद्बोधक धर्म्मकी विशेष बात जाननेवाले विक्रमादित्यकी यह विद्वानोंसे भरी हुई सभा है। दूसरी 'विक्रमोर्वशी' नामक त्रोटक है। इसके नाममें जो 'विक्रम' है इससे मालूम होता है कि कालिदासने अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य राजाके चिरस्मरणार्थही इस त्रोटक का नाम विक्रमनामसे प्रसिद्ध कर दिया। इन दो नाटकोंमें संस्कृत साहित्यवनकेशरी विक्रमादित्य राजाके कुछ उल्लेख होनेसे यह निर्णय हुए बिना नहीं रहता कि कवि-कुल-कुमुद-कलाधर कालिदास विक्रमादित्यकी सभा-कुमुदिनीको अपनी कविता-चांदनीसे सदा प्रकाशित तथा आह्लादित किया करतेथे। दूसरा प्रमाण यह भी है कि, बुद्धगयाके एक शिला-लेखमें इनकी सभाके रत्नोंमेंसे एक रत्न कवि अमरसिंहनें एक मन्दिरके निर्माणके समयमें महाराज विक्रमादित्यका तथा इनके सभास्थ रत्नोंका उल्लेख किया है।

इस शिलालेखका अनुवाद चार्लस वेल्कनेस (Charls wellkenes) ने किया है। आपका मत है कि अमरकोशके रचयिता* तथा विक्रमादित्यकी सभाके नवरत्नों

* अमरकोशके रचयिताके विषयमें हम फिर कभी अपना स्वतंत्र विचार प्रकट करेंगे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में से एकरत्न यही अमरसिंह हैं। क्योंकि इस शिलालेखमें और अमरकोशमें बौद्ध और वैदिक धर्म्म–सम्बन्धी मिश्रित विचार जहां तहां उल्लिखित हुआहै। अस्तु ! ! ! यह एक प्रकारसे निश्चय हो जाता है कि, महाराज विक्रमादित्यकी साभाको उल्लिखित नव धुरंधर विद्वान् अवश्य सुशोभित किया करते थे। परन्तु वर्त्तमान समयमें महाराज विक्रमादित्यके अस्तित्व कालकी सत्यतामें मत मतान्तरके भेदोंने कई बाधाएं खड़ी करदी हैं †

बड़े बड़े इतिहास–खोजी और पुरातत्त्ववेत्ताओंका कथन है कि जिस समय विक्रमादित्यका अस्तित्व माना जाता है उस समय ताम्रपत्र और शिलालेखोंका बड़े बाहुल्यसे प्रचारहो गया था। क्योंकि इनके पूर्व और समकालीन महाराजनन्द, चन्द्रगुप्त, अशोक और खरबेला आदि महाराजाओंके समयके शिलालेख एलेक् जेंडर दी ग्रेट, सैल्यूकस, महाराज कनिष्क, हविष्क और वासुदेव आदिकोंके सिक्के तथा उस समयकी संघटित घटनाओंके उल्लेख–इनके समय तथा अस्तित्वके प्रमाणकी घोषणा बड़े उन्मादसे कर रहे हैं; तो फिर ऐसे समयमें महाराज विक्रमादित्य सरीखे वीर तथा विद्या-प्रेमी राजाके समयका कोई उल्लेख न मिलना, उक्त समय (१९७०) के निश्चित होनेमें ज़रा कठिन समस्या उपस्थित कर देता है।

दूसरी बात यह है कि, प्रथम शताब्दिमें उज्जयिनी राजधानीमें विक्रमादित्य नामक किसी राजाके अस्तित्वका कुछ प्रमाण नहीं मिलता। प्रथम शताब्दिमें माने हुए विक्रमादित्यका कुछ प्रमाण नहीं मिलनेसे, उस आधारपर मानी गईं ऐतिहासिक कल्पनाएँ प्रायः निर्मूलसी मालूम होने लग जाती हैं और भारतीय इतिहाससृष्टि एक प्रकारसे उलट पुलट हो जाती है। अर्थात् जिन राजाओं और कवियोंके समय हमने पूर्व समझ रक्खे थे, वे पर हो जाते हैं और जो पर समझ रक्खे थे वे पूर्व हो जाते हैं। इस लिये भारतीय इतिहासक्षेत्रमें एक अपूर्व कल्पनाका आविर्भाव हो जाता है।

इस कल्पनाके निवारणार्थ हमारे मनमें हठात् कई प्रश्न उपस्थित होने लगते हैं। जैसेः—

(१) म्लेच्छोंका पराभवकर्त्ता और सम्बत्का संस्थापक विक्रमादित्य नामक कोई राजा प्रथम शताब्दि (B. C.) में था या नहीं ?

† मि. फर्ग्युसन, डॉ. एचकर्न, प्रो. बेबर, प्रो. मैक्समूलर डा० फ्लीट, लासन, जै कोबी, मानियर विलियम्स और डॉ० पिटर्सन आदि विदेशी विद्वानोंने और डॉ० भाऊ दाजी, डॉ० रामकृष्ण भण्डारकर, प्रो० काशीनाथ बापूजी पाठक और आर. सी. दत्त आदि भारतीय विद्वानोंने विक्रमादित्यको प्रथम शताब्दिमें माननेकी कई शंकाएं उपास्थितकी हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(२) अनेक राजाओंसे धारित ' विक्रमादित्य ' यह साधारण उपाधि है या नाम ?

(३) विक्रमादित्यकी सभामें जो ' नवरत्न ' थे वे किस विक्रमादित्यकी सभामें तथा किस समयमें ?

(४) प्रथम शताब्दि (B. C.) के पूर्व विक्रमादित्य नामक जब कोई राजा न था तो यह सम्बत् किसने चलाया ?

(५) यह सम्बत् विक्रमके नामसे क्यों प्रसिद्ध हुआ ?

(६) यदि यह सम्बत् पीछेसे चला गया तो इसकी स्थिति इसके पूर्व माननेका क्या कारण है ?

(७) वास्तवमें विक्रमादित्यनामक कोई राजा हुआ था कि नहीं ? और यदि हुआ था तो कब ?

(८) और किन्ही भारतीय राजाओंने अपनी प्रसिद्धि के लिये अपने नाममें कोई सम्बत् चलाया है कि नहीं ?

(९) वास्तवमें प्राचीन शक है या सम्बत् ?

(१०) शकके स्थापन कर्त्ता कौन है ?

प्रिय सुहृत्पाठको ! आइये, भारतीय इतिहास-पुष्पवाटिकामें अनेक सत्यसौरभ पुष्पोंका हम लोग पता लगावें और इस बातको ढूंढ निकालें कि इन उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर किन किन सुदृढ़ प्रमाणों द्वारा दिया जासकता है।

पहले तो इन प्रश्नोंके उत्तरके लिये हम सबोंको चार मार्गोंका आश्रय लेना पड़े गा। वे ये मार्ग हैं:—

(१) (क) प्राचीन पुराण कर्ता अथवा कवियोंके ग्रन्थोंके ऐतिहासिक अविरोधी उल्लेख

(ख) प्राचीन ताम्रपत्र और शिलालेख.

(ग) भारतीय इतिहासोंके मर्मज्ञ तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरातत्त्वान्वेषियोंका युक्तियुक्त कथन.

(घ) जिस समयका उल्लेख किया जाता है, उस समयकी प्राकृतिक घटनाओंका ठीकठीक मिलान।

उत्तर—१ (क)—म्लेच्छोंके पराभव-कर्ता और सम्बत्के संस्थापक विक्रमादित्यके अस्तित्वके विषयमें श्वेताम्बर पाण्डित मेरुतुङ्गाचार्य्यने एक पट्टावलीमें विक्रमको प्रथम शताब्दिमें मानकर उल्लेख किया है। कथासरित्सागरमें भी इसी प्रकार विक्रमका उल्लेख किया गया है। ये दोनों कथन प्रामाणिक तथा अविरुद्ध नहीं माने जासकते।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

क्योंकिं इन दोनोंने किम्वदन्तियोंके आधारपर ही ऐसा लिखा है । इनके कथनकी मूलभित्ति प्रामाणिक नहीं होनेसे इसके माननीय होनेमें बहुत सन्देह है । और दूसरी बात यह है कि ये दोनों ग्रन्थकर्त्ता भी इतने प्राचीन नहीं कि उनकी प्राचीनताके आधारपर ही विक्रमादित्यका अस्तित्व प्रथमशताब्दिमें मान लिया जाय ।

तीसरी बात यह है कि, इनके कथनके विरुद्ध अनेक ऐतिहासिक प्रमाण तथा कवियोंके लेख मिलते हैं । जैसे—राजतरंगिणीके कर्ताने हर्षको विक्रमादित्यके नामसे उल्लिखित किया है; जिनका अस्तित्व लगभग छठवीं और सातवीं शताब्दिमें माना जाता है । चौथी बात यह कि विक्रमादित्यके सभास्थ 'नवरत्न' विद्वानोंके लेखसे भी मालूम होता है कि, उपर्युक्त दोनों मत प्रामाणिक तथा अविरुद्ध नहीं हैं । पांचवीं बात यह है कि कथासरित्सागरके कर्ता सोमेदवेन पाणिनि, व्याड़ि, वार्तिककार कात्यायन, महाराजनन्द, चन्द्रगुप्त, और शालिवाहन आदि ऐतिहासिक नायकोंको समकालीन लिखकर बड़ी गड़बड़ी मचा दी है । हम यह तो अवश्य कहेंगें कि उपर्युक्त व्यक्तियोंकी समकालीनता कभी होही नहीं सकती । यों तो खैंचातानीकी बात ही जुदी है । इससे अब यह साफ साफ मालूम हो जाता है कि कथासरित्सागर एक आख्यायिका मात्र है । अतएव इन मतोंके आधारपर विक्रमको प्रथम शताब्दिमें माननाभी एक आख्यायिका कास मालूम पड़ता है ।

१—(ख) अब दूसरी राह यदि ताम्रपत्र और शिलालेखोंकी दृष्टिसे पकड़ी जाय, तो वर्तमान समयतक विक्रमादित्यके प्रथमशताब्दिमें अस्तित्वको कायम रखनेके लिये ताम्रपत्र अथवा शिलालेख दृष्टिगोचर हुए ही नहीं । दूसरा यह कि छठवीं और सातवीं शताब्दिके पहलेके जितने ताम्रपत्र अथवा शिलालेख मिलते हैं उनमें प्रायः अनेक भिन्न भिन्न राजाओंके सम्बतों का उल्लेख मिलता है । बड़े ही आश्चर्य्यकी बात है कि विक्रमादित्य ऐसे प्रतापशाली राजाका स्वतन्त्र ताम्रपत्र या शिलालेख कहीं मिलता ही नहीं । छठवीं शताब्दिके एक मन्दसोरके शिलालेखमें बड़ी स्पष्टता से ५२९ मालव सम्बत् उल्लिखित किया गया है । मालव सम्बत् वाले शिलालेखमें यह भी साफ-साफ लिख दिया गया है कि मालववंशके स्थापन होनेके ४९३ वर्ष बाद पौष शुक्ल

१—मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये ।
त्रिनवत्यधिकेऽब्दानामृतौ सेव्यघनस्वने ॥ १९ ॥
सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेऽह्नि त्रयोदशे ।
मंगलाचारविधिना प्राक्षादोऽयं निवेशितः ॥ २० ॥

× × × ×

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

त्रयोदशीको एक मन्दिर बनाया गया। ५२९ मालवशक फाल्गुन शुक्ल द्वितीयाको मन्दिरके टूटे हुए किसी भागकी मरम्मत की गयी। इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि ५२९ मालवशक तक विक्रमादित्यके सम्बत्की भी कुछ चर्चा नहीं थी। इसलिये हम समझते हैं कि यह कहनेमें कुछ अत्युक्ति नहीं होगी कि उक्त समय तक विक्रमादित्यके अस्तित्वकी तथा इनके सम्बत्की भी कुछ चर्चा नहीं थी। नहीं तो सम्भव था कि मालववंशका सम्बत् न लेकर ही मालवनरेश विक्रमादित्यका सम्बत् समादृत होता। इस स्थलपर इस शंकाको भी कोई आधार नहीं मिलता कि यह मालवसम्बत् ही विक्रमादित्यका क्यों न मान लिया जाय। क्योंकि श्लोकमें जो 'मालवानां' यह बहुवचनान्त पद है इससे मालूम होता है कि इससे विक्रमादित्यका कोई सम्बन्ध नहीं था, बल्कि यह मालववंशकी परम्पराका सूचन करनेवाला सम्बत् मालववंशसे स्थापित है। दूसरी बात यह है कि छठवीं शताब्दिमें महाराज विक्रमादित्यकी प्रसिद्धिके समय तथा आठवीं और नवमी शताब्दिमें जबकि विक्रम सम्बत्की ख्याति शैशवावस्थामें थी तौ भी उससमयके दानपत्र और शिलालेखादि ऐतिहासिक पत्रिकादिकोंपर विक्रमसम्बत्के साथ साथ मालवंशका भी उल्लेख पाया जाता है।

अस्तु! हम समझते हैं कि मालवसम्बत्को विक्रमादित्यके सम्बत्से भिन्न कहना कुछ अनुचित नहीं होगा।

अनेक ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर पुरातत्वान्वेषी बहुतसे विद्वानोंका विक्रमादित्यको प्रथम शताब्दिमें नहीं माननेका आग्रह होनेपर भी डा० भूलरने विक्रमादित्यको प्रथम शताब्दिमें मानकर आजतक इस विषयमें बड़ी छान बीन की है और

संस्कारितमिदं भूयः श्रेण्या भानुमतो गृहम्॥ २२॥

× × × × ×

वत्सरेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु।
यातेष्वभिरम्यतपस्यमासशुक्लद्वितीयायाम्॥ २५॥

अर्थात्—मालवगणकी स्थितिके ४९३ वर्ष बीतनेके बाद वर्षाऋतुमें पौष शुक्ल त्रयोदशीको मंगलाचारपूर्वक यह प्रासाद बनाया गया और ५२९ मालवशक फाल्गुन शुक्ल द्वितीयाको इसकी मरम्मत हुई।

२—इण्डियन ऐण्टीक्वेरीकी १३ रवीं जिल्दके १६४ वें पृष्ठपर एक शिलालेखमें लिखा है कि:—

सम्वत्सरशतैर्यातैः सपञ्चनवत्यर्गलैः।
सप्तभिर्मालवेशनां धूर्जटेः मन्दिरं कृतम्॥

अर्थात् ७९५ मालव सम्बत्को किसीने शिवजीका मन्दिर बनाया।
इण्डियन आर्किऑलॉजिकल २४ सर्वे व्हाल्युम १० पेज ३२ प्लेट नंबर ११ देखो.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अन्तमें आपने विक्रमकी छठवीं शताब्दिके पूर्व स्थिति कायम रखनेके लिये भड़ोच ज़िलान्तर्गत जम्बूसर तालुकेमें कावीनगरस्थ गुर्ज्जराधिपति महाराज जयभट्टके दान-सम्बन्धी एक शिलालेखका उल्लेख किया है। आपका कथन है कि, इस शिलालेखमें जो ४३० का उल्लेख है, वह विक्रम सम्बत् होना चाहिये और वे इस कथनकी पुष्टि इस आधारपर करते हैं कि, प्रथम जयभट्टके पुत्र गुर्जराधिपति महाराज दादा द्वितीयके भी, कावीमें एक दो दानपत्र मिलते हैं। उनमें ३८० और ४०५ ऐसा समय दिया गया है। इस समयको उन्होंने अनुमानद्वारा शकसम्बत् निश्चित किया है। अस्तु, जब दादा द्वितीय (जयभट्टके पुत्र) का समय ३८० शक निश्चित किया जाता है, तो उनके पिता जयभट्टका समय ४३० लिखना, विक्रमसम्बत् ही निश्चित हो सकता है। परन्तु डॉ० भूलरको भाग्य-वश प्रचुर परिश्रमसे मिले हुए छठवीं शताब्दिके पूर्व विक्रमादित्यके स्थिति-निश्चायक इस एकमात्र शिलालेखके विरुद्ध पुरा-तत्त्वान्वेषी विद्वानोंने प्रमाणका परिपूर्ण भण्डार खोला दिया है।

विज्ञ पाठको! यद्यपि इस छोटेसे लेखमें एतद्विषयक मतमतान्तरके पूरे भेद दिखलाने असम्भवसे हैं, तौभी थोड़ासा उनका दिग्दर्शन करा देना हम उचित समझते हैं।

प्रो० मैक्स मूलरको उपर्युक्त कथन ठीक नहीं जचता। इस शिलालेखके आधारपर हमारे चरित्रनायक विक्रमादित्यको छठवीं शताब्दिके पहले मानना, प्रो. मैक्समूलर साहबको सन्देह-सङ्कुल मालूम पड़ता है। इनका कथन है कि प्रथम तो शिलालेखके जिस अंशपर ४३० लिखा हुआ है वह अंश भग्न* तथा अक्षर सर्वथा अस्पष्ट है, इसलिये उसपर पूर्णतया विश्वास नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह कि, उसमें विक्रम सम्बत्का कहीं नामही निशान नहीं है कि जिससे विक्रम सम्बत्का होना निश्चय हो जाय। तीसरी बात यह है कि शिलालेखमें उत्कीर्ण आषाढ सुदी रविवारका विक्रम सम्बत् ४३० में मिलजाना भी ठीक नहीं मालूम पड़ता। इसलिये इस एकमात्र शिलालेखके अधारपर ही विक्रम सम्बत् को छठवीं शताब्दिके पूर्व मानना भ्रमात्मक मालूम पड़ता है। अतः सन्देहचक्करमें पड़े हुए इस सम्बत्की स्थिरताके लिये बड़े प्रबल प्रमाणकी आवश्यकता है। बल्कि इस प्रश्नका भी उत्तर

---

* Dr. Bulher in Ind Ant Vol V Page 110, himself says :—It is however to be regretted that the date the name of the writer and the signature of the grantor have sufferd mutilation. The plate seems to have undergone very rough treatment as it is full of inundation.

१—प्रो. मैक्समूलर की "हिन्दूस्तान हमें क्या सिखला सकता है" (Indian what it can teach us) नामकी पुस्तकके २८५ और २८६ के पृष्ठ देखो।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नहीं मिलता कि यदि विक्रम सम्बत् प्रथम शताब्दिमें ही प्रचलित होगया था तो इसको ६०० वर्ष गुप्त रखनेका कौनसा कारण है।

गुर्जरवंशीय राजाओं, उनके दानपत्रों और शिलालेखोंकी समालोचना करते समय पं. भगवान् लाल इंद्रजी एक नवीन प्रमाण-द्वारा इन राजाओं और शिलालेखोंका समय बड़ी विद्वत्ता तथा शोधक दृष्टिसे निश्चित करते हैं। आपका कथन है कि गुजरातके चालुक्यवंशीय और गुर्जरवंशीय महाराजाओंके दानपत्रोंमें लिखित समय न तो शाका सम्बत् है और न विक्रम ही सम्बत् है। ये इन दान-पत्रों और शिलालेखोंका समय एक त्रिकुटक नामक सम्बत्सरसे प्रारम्भ मानते हैं। इस सम्बत्सरका प्रारम्भ आप शकसम्बत् १६६ अथवा १६७ (२४४–४५ A. D.) से होना निश्चय करते हैं। अर्थात् यदि हम इस १६६–१६७ से प्रारम्भ हुए त्रिकुटक सम्बत्द्वारा उन दान-पत्रादिकोंका समय निश्चित करें तो इस विषयमें पड़ी हुई उलझनका सुलझाव बड़ा सरलतासे हो जाता है। परन्तु यह प्रश्न अब भी खड़ा ही रह जाता है कि यदि इस त्रिकुट सम्बत्सरको गुर्जरोंके दानपत्रका समय माना जाय तो दादा द्वितीयका समय ३२० और उनके पिता जयभट्टका समय ४३० किस प्रकार हो सकता है। यानि पिताके पहले पुत्रका होना असम्भव है। परन्तु हमारी रायमें अपनी ही राय क्यों कहें बल्कि बहुतसे विद्वानोंकी रायमें जिनका उल्लेख हम आगे करें गे—कावीके शिलालेखवाले जयभट्टको दादा द्वितीयका पिता मानना ही भ्रम है।

इसका मूल कारण यह है कि गुजरात और महाराष्ट्रप्रदेशी हिन्दुओंमें एक साधारण रिवाज है कि पितामहके नामका स्थनापन्न पौत्र हो जाता है। इस गुर्जर राज्यमें दादा और जयभट्ट नामके कई राजाओंने राज्य किया है। बल्कि इस नामके फेरमें पड़कर डा. भूलरने कावीवाले जयभट्टको दादाद्वितीयका पिता लिख दिया है। परन्तु वास्तवमें यदि कावीवाले शिलालेखका उल्लिखित समय त्रिकुट नामक सम्बत्से लगभग ४०० वर्ष माना जाय तो वह समय दादा द्वितीयके पुत्र जयभट्टका होना चाहिये। यदि ४५६ से ४८६ का समय माना जाय तो दादा तृतीयके पुत्र जयभट्ट तृतीयका समय होना चाहिये।

हम अपने पाठकोंको सुगमतासे समझने केलिये, तथा दादा और जयभट्टकी गड़बड़ी मिटानेके लिये पं. भगवान्लाल इन्द्रजीके लिखे हुए गुर्जरराजाओंका वंशवृक्ष यहां उद्धृत करते हैं।

(१) **दादा प्रथम.**

(त्रिकुटक संवत् ३२० से ३२५ तक) ई. स. ५७५–६०० तक.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(२) **जयभट्ट प्रथम अपर नाम वीतराग.**
(त्रि. सं. ३५५ से ३०७ तक) ई. ६००.
|
(३) **दादा द्वितीय अपर नाम प्रज्ञान्तराग.**
(त्रि. सं. ३८०–३८५ से ४०५ तक) ई. ६२५.
|
(४) **जयभट्ट द्वितीय.**
(त्रि. सं. ४०५–४३० तक) ई. ६५०.
|
(५) **दादा तृतीय ऊर्फ (अपरनाम) बाहू सहाय.**
(त्रि. सं. ४३० से ४५६ तक) ई. ६७५.
|
(६) **जभभट्ट तृतीय.**
(त्रि. सं. ४५६–६७६) ई. ७०१–७३१.

अब यही एक विचरणीय विषय है कि ऊपर जो हमने समय निर्दिष्ट किया है उसके निश्चत होनेके लिये हमारे पास कौन कौनसे प्रमाण हैं । प्रथम तो डॉ० बार्डने कनरीके दानपत्रमें २८५ अङ्कित त्रिकुटक सम्बत्सरका उल्लेख किया है । दूसरी बात यह है कि नौसारीके शिला-लेखमें स्पष्टतया यह कथन पाया जाता है कि उज्जयिनीं नरेश शिलादित्य महाराज हर्षवर्द्धन विक्रमादित्यने जब बल्लभीनरेशको युद्धमें पराजित कियाथा तो दादा द्वितीयने उनको आश्रय दिया था । इस लिये दादा द्वितीयको हर्षवर्द्धनका समकालीन होना आवश्यक है । रविकीर्ति नामक एक जैनकविने आय होलीके मेगुत्ती नामक एक जिनेन्द्रभवनमें मन्दिरनिर्माणके समय वहां एक शिलालेख लिखा है । उसमें महाराष्ट्राधिपति पुलकेशी द्वितीयके और उज्जयिनीनरेश हर्ष विक्रमके युद्धकी चर्चा की गयी है और इन्हींने अपने शिलालेखमें कालिदास कीसी कविता-समकीर्ति पानेकी अभिलाषा प्रकटित की है । इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि महाराज हर्ष विक्रम और महाराज पुलकेशी समकालीन थे । इस शिलालेखका समय ५६६ शक (८३५ A. D.) है ।

क्योंकि आयहोलीके मेगुत्ती वस्तीके शिलालेखमें, निरपालके दान-पत्रमें, कर्नूलके दानपत्रमें, तथा टोगुशोर आदिस्थानोंके दान-पत्रोंमें यह उल्लेख पाया जाता है कि, चालुक्यवंशाधिपति पुलकेशी द्वितीयके साथ मालवाधिपति महाराज हर्षवर्द्धन

१—महाराज पुलिकेशीका यह शिला-लेख फिर कभी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करेंगे.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विक्रमादित्यको घोर युद्ध हुआ था और इस युद्धमें विक्रमादित्यको हराकर पुलकेशीने "परमेश्वर" उपाधि धारण कीथी। महाराज पुलिकेशीका समय ६१० से ६३५ तक निश्चित हो चुका है।

अस्तु!!! महाराज हर्षवर्द्धनविक्रमका यही समय निश्चित होता है। और दादा द्वितीयको इनके समकालीन होना अत्यावश्यक है। दादा द्वितीयके ताम्रपत्र और दानपत्रमें ३८० लिखा हुआ है। यदि इस उल्लिखित समय (३८०) को शक माना जाय तौभी यह समय विक्रमादित्यके समकालीनवाले समयसे नहीं मिलता। दूसरे दानपत्रोंद्वारा इनको हर्षवर्धनका समकालीन होना आवश्यक है।

उपर्युक्त कथनसे यह बात साफ हो जाती है कि, काबीके दानपत्रमें उल्लिखित समयको शक अथवा विक्रमसम्बत् मानना निरी भ्रान्ति है। उन उल्लिखित समयोंको त्रिकुटक छेदी अथवा कालीचुरी सम्बत् मानना ही युक्तियुक्त मालूम होता है।

जनरल कैनिंगहंग साहबने कावीशिलालेखमें लिखित आषाढ़ सुदी दशमी रविवारको इस प्रमाणसे सिद्ध किया है कि ४८६+७५०=७३६ को २४ वीं जून होता है और उसी दिन उक्त समय ७३६ का मिलान हो जाता है। इसी प्रकार त्रिकुट-सम्बत्सरमें उल्लिखित और एक शिलालेखका भी पता लगता है।

अभी ४५६ में २४९ या २५० जोड़नेसे ७०५ तथा ७०६ A. D. होता है। जनवरी तथा फरवरीसे माघ मासके मिलान करनेसे दानपत्रका समय ७०६ A. D. होना निश्चित मालूम होता है। क्योंकि उसी वर्षमें २ री फेब्रुआरी मंगलवार-को माघ मासमें ही चन्द्रग्रहण लगना सिद्ध होता है।

अस्तु! इन उपर्युक्त प्रमाणोंद्वारा यह सिद्ध हुए बिना नहीं रहता कि कावी वगैरहके दानपत्रादिकोंमें उल्लिखित समय १६६-१६७ शक वा २४५ अथवा २५० A. D. से प्रारम्भ होनेवाला यह त्रिकुटक* सम्बत्ही है। अब पाठक स्वयम् इस बातका विचार कर सकते हैं कि, जिस कावीदानपत्रके उल्लिखित समयको विक्रम सम्बत् मानकर, जिस विक्रमको छठवीं शताब्दिके पूर्व माननेके लिए आकाश पाताल एक किये जा रहे हैं, वह कहां तक सिद्ध हो सकता है?

कुछ दिन हुए १९११ की ९ संख्यावाली "सरस्वती" में एक वैद्यमहाराजके लेखके आधारपर सरस्वती-सम्पादक महोदयने पेशावरके पास तख्तेशाही नामक

* यदि हमारे पाठकोंको इस सम्बत्के विशेष बात जाननेकी इच्छा होगी तो हम अन्य किसी पत्रमें बड़ी विस्तृतिसे इसकी पूर्ण विवृति लिखेंगे। यहां लेख बढ़ जाने तथा विषयान्तर हो जानेके कारण सामग्री रहनेपर भी हम नहीं प्रकाशित कर सकें।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थानके एक शिलालेखका उल्लेख कियाहै। आप कहते हैं कि "यह उत्कीर्ण लेख पार्थियन राजा गुड़फर्सका है। यह राजा भारतके उत्तर और पश्चिमाञ्चलका स्वामी था। इस लेखमें १०३ के अङ्कपर सम्बत्का नाम नहीं। गुड़फर्सके सिंहासनपर बैठनेके छव्वीसवें वर्षका यह लेख है। डॉ. फ्लीट और मिस्टर विन्सेन्ट स्मिथने अनेक तर्कनाओं और प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया है कि यह १०३ विक्रम सम्बत्का ही सूचक है"।

हमे बड़ा आश्चर्य्य होता है कि न द्विवेदीजीने और न वैद्य ही जीने यह साफ साफ लिखा कि डॉ. फ्लीटने अथवा मि. विन्सेन्ट स्मिथने उपर्युक्त शिलालेखका उद्धार कर अर्थात् शिलालेखका निष्कर्ष समझर कौनसे पत्रमें अथवा पुस्तकमें अपनी सम्मति प्रकटित की है। दूसरी बात यह है कि पूर्व समयमें ऐसी सर्वसाधारण रीति प्रचलित थी कि प्रायः उस समयके सभी राजाओंने अपने अपने समयकी विशेष विशेष घटनाओंको लेकर अपने अपने सम्बत् चलाये हैं; जिनका पूर्ण उल्लेख हम नं. ८ प्रश्नका उत्तर देते समय करेगें।

अब विचार इस बातका होता है कि जिस १०३ को आपने विक्रम सम्बत् समझ रक्खा है, क्या हम उसी १०३ को गुड्फर्सके वंशीयोंका चलाया हुआ सम्बत् नहीं मान सकते हैं? नहीं माने क्यों? और जब शिलालेखमें सम्बत्का उद्बोधक कोई शब्द ही नहीं है तो, फिर किस आधारपर हम १०३ को विक्रम सम्बत् स्वीकार करलें। निष्पक्ष पाठक, स्वयं इस बातको विचार करलें कि ऐसे ही निर्मूल आधारपर उल्लिखित कावी शिलालेखके ४३० को विक्रम सम्बत् मानना कहांतक युक्तियुक्त ठहरा? इसका तो कोई उत्तर ही नहीं हो सकता कि हमे येन केन प्रकारेण प्रथम शताब्दिके पूर्व ही विक्रमसम्बत् ठहराना है। भारतीय इतिहास-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। प्रथम शताब्दिके ही पूर्व क्यों? बल्कि उसके दो चार हजार वर्ष और पूर्व विक्रम सम्बत्का साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। परन्तु विद्वन्मण्डली और ऐतिहासिक समाजमें यह विचार कहांतक मान्य हो सकता है, इसका उत्तर हम नहीं दे सकते। यदि दुराग्रहवश ऐसा मान भी लिया जाय, कि यह १०३ विक्रम सम्बत् है तो क्या कोई कह सकता है कि विक्रमसम्बत् की जगद्व्यापिनी ज्योतिने पेशोरके तख़तेवाहीके कोनेमें ही क्यों प्रकाश किया। महाराज विक्रमादित्यकी मुख्य राजधानी और बहुतसे प्रसिद्ध स्थान इस सम्बत्की अलौकिक छटासे क्यों बञ्चित रहे? यदि कोई महाशय इस प्रश्नका उत्तर निष्पक्ष-भावसे देनेकी कृपा करेंगे तो उन्हें इतिहास—भूमण्डलमें चक्कर लगाकर यह मुक्त-कराठसे स्वीकार करलेना पड़े गा, कि प्रथम शताब्दिके पूर्वके विक्रमसम्बत् सम्बन्धी निदर्शनपत्र, ताम्रपत्र, शिलालेख और सिक्के आदि मिलते ही नहीं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(१) (ग)—अब हमलोगोंको पुरातत्त्वान्वेषी विद्वानोंद्वारा महाराज विक्रमादित्यका समय निर्णय करना है। परन्तु हम इसके आरम्भ करनेके पूर्व अपने पाठकोंको यह याद दिला देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि, महाकवि कालिदास और विक्रमादित्यके समकालीन होनेका यथासाध्य प्रमाण हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं और हम समझते हैं कि विद्वानोंकी सम्मतिपर कालिदासका समयनिर्णय करना ही महाराज विक्रमादित्यका समयनिर्णय करना है। बल्कि महाकवि कालिदासके समय निर्णयार्थ हमने एक स्वतन्त्र लेख ही इस किरणमें अन्यत्र प्रकाशित किया है। उसमें इस उत्तरसे सम्बन्ध रखनेवाली बहुतसे विद्वानोंकी सम्मतियां उद्धृत कीगयी हैं। हमने पुनरुक्ति हो जानेकी शङ्कासे उनको यहां प्रकाशित नहीं किया है। इस लिये पाठक-गण वहांके दोनों अंशोंको सम्मिलित पढ़कर इस उत्तरकी पुष्टि कर लेंगे। उनके अतिरिक्त जो कुछ सम्मत्ति है उसको यहां उद्धृत करते हैं।

१—ह्वेनसंग नामक चीननिवासी एक बौद्ध धर्म्मोपदेशक अनेक देशोंमें परिभ्रमण करता हुआ भारतवर्षमें आया था। चीन इतिहासलेखकोंके कथनानुसार ह्वेनसंगका आगमन लगभग ६२९ A. D. से ६४५-५० A. D. में हुआ था। यद्यपि उस उल्लिखित समयमें दस पांच वर्षका हेरफेर हो सकता है तौभी हम यह कहेंगे कि ह्वेनसंगका आगमन सातवीं शताब्दिमें अवश्य हुआ था।

ह्वेनसंग स्वयं महाराज हर्षवर्द्धन शिलादित्य विक्रमादित्यकी सभामें जाकर उपस्थित हुआ था। इसने विक्रमादित्यका उपर्युक्त इन तीन भिन्न भिन्न नामोंसे उल्लेख किया है। ह्वेनसंगका कथन है कि जब मैं प्रथम ही विक्रमादित्यकी राजधानीमें गया था, तो उस समय महाराज मोक्षमहाधर्म्मपरिषद्में गये हुए थे। वह बड़े शक्तिशाली राजा थे। इन्होंने पूर्वसे लेकर पश्चिमाञ्चल तक अपनी विजयशालिनी सेनाको बढ़ाया था और इसी महाराज हर्षवर्द्धनने अगणित सेना लेकर महाराष्ट्राधिपति पुलिकेशीपर चढ़ाई की थी, किन्तु भाग्य-वश इनकी इसबार जीत नहीं हुई। महाराज हर्षवर्द्धन ऐसे पराक्रमशाली राजा थे कि, इनसे सभी निकटवर्ती राजा भयभीत रहते थे। इन्हींने जब युद्धमें वल्लभी नरेशको पराजित किया था तब गुर्जराधिपति महाराज दादा द्वितीयने इनको आश्रय दिया था। इस बातका उल्लेख कई दानपत्रादिकोंमें है।

ह्वेनसंग साहबने अपनी "भारतभ्रमण" नामक पुस्तकमें कई जगह दिगंबर जैनमुनि और आचार्योंका 'निर्ग्रन्थ' 'अर्हत्' और 'श्रमणक'* आदि विशेषणोंसे उल्लेख किया है।

* विषयच्युतिकी शङ्कासे यहां हमने इस विषयका पूरा विवरण नहीं लिखा। फिर कभी हम इस विषयपर अलग लेख लिखेंगे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कहा जाता है कि महाराज हर्षवर्द्धन विक्रमादित्यके यशोगान तथा गुण-गान इनकी प्रजाएं संगीतरूपमें गाया करतीथीं। इन्होंने अपने नामका सम्बत्भी चलाया है।

(२)—रमेशचन्द्रदत्त C. I. E. अपने भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें कन्नौज और उज्जैनका उल्लेख करते समय कहते हैं कि, गुप्तवंशके पश्चाद् भारतीय इतिहासके प्रधान नायक उज्जयिनीके महाराज विक्रमादित्य ही हुए। एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय युद्धके विजेता, प्राचीन सर्वाङ्गसुन्दर संस्कृतसाहित्यके मुख्य संरक्षक, और अनेक प्रचलित दन्तकथाओंके स्वामी—फ्रेञ्चोंके लिये कारमलजवान, मुसल्मानोंके लिये हरून अल्रसीद अंग्रेजोंके लिये आल्फ्रेड़ और बौद्धोंकेलिये अशोक जैसे माननीय हो गये हैं, वैसे ही हिन्दुओं कोलिये विक्रमादित्य थे।

इस राष्ट्रीय वीरके सम्बन्धमें भारतवर्षकी भिन्न भिन्न भाषाओंमें अगणित दन्तकथाएं प्रचलित हो गयी हैं। ग्रामवासिगण आजपर्य्यन्त उन काहानियोंको बड़े मनोयोग पूर्वक सुना करते हैं। दन्तकथाओंका इतना बड़ा साहित्य आजतक किसी दूसरेके विषयमें इतना प्रचलित नहीं हैं। परन्तु इन कथा और कहानियोंसे उनके सच्चे इतिहासका अभावसा हो गया है। इतिहासलेखक और पुरातत्वान्वेषियोंमें इनके समयके निर्णय करने केलिये बड़ी खलबली मचगयी है। कोई कहता है कि ५६ वी. सी. से प्रारम्भ होनेवाले सम्बत्के साथ उनका नाम जोड़ दिया गया है। कुछ विद्वानोंका मत है कि ईशाकी प्रथम शताब्दिमें विक्रमादित्य थे। और कितने विद्वान् ईसाकी पांचवीं छठवीं शताब्दिके पूर्व विक्रमादित्यका अस्तित्व मानते ही नहीं। हम इन झगडोंमें पड़ना नहीं चाहते। किन्तु हम यह अवश्य कहेगें कि इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि विक्रमादित्य ईसाकी छठवीं शताब्दिमें राज्य करतेथे। इनके सामयिक बड़े बड़े कवि और लेखकोंने जो अपने अपने महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ लिख छोड़े हैं वे आज बड़ी पूज्यश्रद्धासे समादत होकर पढे जाते हैं।

इस सारांशके माननेके सामानतया ये चार कारण हैं। पहला तो यह है कि काश्मरिके हिन्दू इतिहासलेखकोंने कनिष्क और विक्रमादित्यके बीचमें अन्यान्य तीस राजाओंका उल्लेख किया है; जिसमें विक्रमादित्यके राजत्वका समय छठवीं शताब्दिमें आजाता है। दूसरा यह कि, ह्वेनसंगके भारतवर्षमें आगमनद्वारा महाराज हर्ष विक्रमका पूर्ण वर्णन किया गया है। तीसरा यह कि वराहमिहिर जो विक्रम सभाके नव रत्नोंमेंसे एक रत्न थे उन्होंने अपने वराहमिहिर ज्योतिषग्रन्थमें आपना समय ५०५ से ५८७ तक लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि, इनका अस्तित्व छठवीं शताब्दिमें था नकि प्रथम शताब्दिमें। चौथा कारण यह है कि इनके सभास्थ नवरत्नोंमेंके एक समुज्ज्वल रत्न कविवर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कालिदासने बहुतसे अपूर्व रघुवंश आदि काव्य बनाये हैं। उनमें भी विक्रमका जहां तहां उल्लेख है। इससे भली भाँति यह सिद्ध होता है कि, विक्रमको पहली शताब्दिमें मानना बड़ी भ्रान्ति है।

प्रो. मैक्समूलर साहबका कथन है कि, उज्जयिनीनरेश महाराज विक्रमादित्यकी सभामें कविशिरोमणि कालिदासादि रत्न रहते थे। ईसाके ५६ वर्ष पूर्व अर्थात् ६६ B. C. से चला हुआ सम्बत् (जिसका संस्थापन हुए आज १९७० वर्ष, हुए) इन्हीं विक्रमादित्यका है। यह बात प्रायः सर्वमान्य होरही थी परन्तु अब इसके स्वीकार करनेमें बड़ा भारी परिवर्त्तन हो रहा है। आप कहते हैं कि, शकोंका पराभव कर्त्ता तथा सम्बत्का संस्थापक विक्रमादित्यनामक कोई राजा प्रथम शताब्दिके पूर्व था ही नहीं।

आपका कथन है कि उज्जयिनीके महाराज हर्ष विक्रमादित्यने ही कोरूरके युद्धमें म्लेच्छोंका पराभव कर उस विजयोपलक्ष्यमें अपना सम्बत् संस्थापित किया और इस नवस्थापित सम्बत्को ६०० वर्ष पहले माननेके लिये सबोंको बाध्य किया। अर्थात् लगभग ५४४ ईस्वी A. D. इस कोरूरके युद्धका समय निश्चित होता है। महाराज विक्रमादित्यने इस समयको विक्रम सम्बत् ६०० के शुरूसे उद्घोषित किया। इसीसे इस सम्बत्का प्रारम्भ ५६ B. C. से समझा जाता है।

मि. फर्गुसन, डॉ. फ्लीट, जनरल कैनिंगहंग, कर्नल टाड, डा. रामकृष्ण भण्डारकर और पं. भगवान्लाल इन्द्रजी आदि विद्वानोंकी भी यही राय है कि म्लेच्छोंका पराभव कर्त्ता तथा सम्बत्के संस्थापक विक्रमादित्य नामका कोई राजा प्रथम शताब्दिमें हुआ ही नहीं।

१ (घ) महाराज विक्रमादित्यके समयकी प्राकृतिक घटनाओंका मिलान उनके सभास्थित पण्डितप्रवर महाकवि कालिदासकी अलौकिक कल्पनाओंपर ही निर्भर है। इस लिये उनके ग्रन्थोंमें जिस स्थानपर ऐतिहासिक बात का मिलान करना कुछ सम्भावित है उसका यत्किञ्चित् मैं यहां कुछ उल्लेख करता हूं।

१—जैसे महाराज रघुने विजययात्रा करके हूणोंको पराजित किया है।

" तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् " र० अ० ४ स० ६८. श्लो०

अर्थात् रघुराजाके दिग्विजय-व्यापारमें हारे हूए हुणोंकी स्त्रियोंके कपोलमें जो लालिमा है वह रघुराजाके पराक्रमकी चेष्टा सूचित कर रही है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इतिहास खोजी विद्वानोंका कथन है कि, पञ्चम शताब्दिके बाद हूणोंका सम्बन्ध भारतवर्षके साथ था। इसलिये कविवर कालिदासका यह उल्लेख पञ्चम शताब्दिके बादका मालूम होता है। निम्नलिखित रघुवंशके श्लोकसे सुमुद्रगुप्तका भी सम्बध स्पष्टतया मालूम होता हैं।

" **आसमुद्रक्षितीशानाम्**[1] " र० वं० १ स० ५ श्लो०
" **तस्मै सभ्याः सभार्य्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः**[2] " १ स० ५५ श्लो०
" **अन्वास्य गोप्ता गृहिणी-सहायः**[3] " २ स० २४ श्लो०
" **तनु-प्रकाशेन विचेयतारका**
प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी[4] " ३ स० २ श्लो०
" **इक्षुच्छाय-निषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्**[5] ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ॥ ४ स० २० श्लो०
स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः ।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया[6] ॥ " ४ स० २६ श्लो०

प्रथम श्लोकमें जो 'समुद्र' ऐसा पद आया है इससे समुद्रगुप्तका सम्बन्ध ज्ञात होता है।

द्वितीय और तृतीय श्लोकमें 'गोप्त्रे' 'गुप्त' 'गोप्ता' का भी प्रयोग गुप्त ही वंशके लक्ष्यसे किये जानेका कारण मि. हरिनाथ दे बता ते हैं।

चौथे श्लोकमें उपमा–रूपसे "शशिना" इस पदसे चन्द्रगुप्तका वर्णन होना निश्चित होता है।

पांचवे और छठवें श्लोकमें 'गोप्तुः' 'आकुमार' और 'गुप्त' पदप्रयुक्तिसे कुमार-गुप्तका सम्बन्ध साफ साफ ज़ाहिर होता है।

एक बात और यह है कि, पांचवे श्लोकका जो आशय है वह प्रयागमें जो समुद्रगुप्तके विजयस्तम्भका शिलालेख है, उस शिलालेखान्तर्गत आशयके कुछ अंशसे मिलता है।

---

१ – समुद्र-पर्य्यन्त राजाओंका वर्णन मैं करता हूं।

२—सस्त्रीक, उस राजाकी इन्द्रियजीत मुनियोंने सेवा की।

३—पत्नी ही है सहायक जिसकी ऐसा राजा दिलीप गायकी सेवा कर.

४—थोड़ी चमकवाले शशिके ऐसा जिनकी आंखकी तारा कुछ मन्दसी पड़ गयी है. वह प्रातःकालासन्न रात्रिकीसी दीख पड़ती थी।

५ ईखकी छायामें बैठी हुई धान रखनेवाली स्त्रियां गोप्ता राजाका गुण-गान कुमारावस्था (कुमार) से लेकर अबतकका गाती थीं।

६ शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले और अपने किले तथा निवासस्थानकी रक्षा करनेवाले कुशली रघुने छः प्रकारके साधन (सेना) लेकर दिशा जीतनेकी इच्छासे यात्रा की।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

" राजाऽपि लेभे सुतमाशु तस्मात् [1]
आलोकमर्कादिव जीवलोकः " र. वं. ५ स. श्लो. ३५.
" ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी [2]
कुमार-कल्पं सुषुवे कुमारम् ॥ " र. वं. ५ स. श्लो. ३६.
" रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्य्यं [3]
तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।
न कारणात् स्वाद्विभिदे कुमारः
प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् " ॥ र. वं. ५ स. श्लो.

उपर्युक्त तीनों श्लोकोंमें जो ' कुमार ' यह पद आया है इससे तथा श्लोकोंके अर्थानुसार यह अनुमान किया जाता है, कि **चन्द्रगुप्त द्वितीय**के पुत्र **कुमारगुप्त**के नाम करणके उपलक्ष्यमें ये श्लोक कालिदासने रचे हैं।

" **दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपात्** [4] " मे. दू. १४ श्लो.

इस श्लोकसे दिङ्नाग और कालिदासकी समकालीनता जो मल्लीनाथने दिखलाई है, सो इसकी विशेष बात हमने जिनसेन और कालिदासकी समकालीनतावाले लेखमें दिखाई है, पाठकजन वहांके उतने अंश से यहांकी भी पुष्टि समझेंगे।

विज्ञपाठको! इस लेखमें हमने दश प्रश्न किये हैं; उनमें पहले प्रश्नका उत्तर ताम्रपत्र और ऐतिहासिक घटना आदि चार मार्गके आश्रयसे यथा साध्य हमने दिया है। इस उपस्थित-सामग्रीसे हमे यह बात निश्चित हो जाती है कि विक्रमादित्य प्रथम शताब्दि ५६ B. C. के पहले नहीं थे। इसके प्रतिकूल यदि हमारे विज्ञ इतिहास-मर्मज्ञ ताम्रपत्रादि ऐतिहासिक प्रमाणद्वारा अपनी सम्मति प्रकट करनेकी कृपा करेंगे तो उसके स्वीकार करनेमें हमे कुछ आपत्ति नहीं होगी। यह विषय बड़े महत्त्वका है, क्योंकि इस विषयको लेकर बड़े बड़े विद्वानोंने कई निबन्ध लिखे हैं। भारतीय इतिहास-मर्मज्ञोंका इस ओर ध्यान आकृष्ट होवे तथा फिर इस विषयपर आन्दोलन होकर कोई एक सिद्धान्त निकल आवे; इसलिये हमने भास्करकी प्रत्येक किरणमें भारतवर्षके इस एक श्लाघनीय ऐतिहासिक विषयपर कुछ कुछ अपना मन्तव्य प्रकाशित करनेका विचार किया है। साथही साथ श्रीयुत परेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय एम. ए. सबजजका विक्रमादित्यका प्रथम शताब्दिके पहले अस्तित्वकी परिपुष्टि करनेवाला लेख इन किरणोंमें प्रकाशित किया

१ जैसे संसार सूर्य्यसे प्रकाश पाता है वैसे ही ऋषिसे राजाने कुमार पाया।

२ ब्राह्ममुहूर्तमें देवीने कार्त्तिकेयके सदृश पुत्र पैदा किया।

३ इनका वैसा ही ओजस्वी वीर्य्य तथा स्वाभाविक औन्नत्य था। जैसे दीपकसे निकली हुई ज्योति दीपकसे भिन्न नहीं होती वैसे ही यह अपने पितासे किसी बातमें कम नहीं थे।

४ अपने (कालिदासके) प्रतिपक्षी दिङ्नागाचार्य्योपलक्षित दोषको निर्दोष करते हुए।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गया है। इस लेखपर पुरातत्त्ववेत्ता तथा हमारे इतिहास-हितैषी पाठक अवश्य विचार करें। हमे आपके लेखके कई अंशोपर बहुत कुछ लिखना है। स्थानाभावके कारण इन किरणोंमें नहीं लिखकर अगली किरणमें लिखेंगे। (क्रमशः)

सुभाषित.

अहो ! महोदार-महोदयो ! सुनो
स्वधर्म्मका ह्रास हुआ इसे गुनो।
वही गुणी जैन तथा प्रभाववान्
जिनेश-तत्वैक-रुचिः शरीरवान्[1] ॥ १ ॥

कभी नये सभ्य-समाजमें पड़ा
कभी पुरानी पगिया डटे खड़ा।
न एक सत्कार्य्य विमूढ़ सोचते
यथा गताक्षो न जनो विलोकते[2] ॥ २ ॥

ये हैं सुविज्ञ सकलज्ञ धनी महान्[3]
सद्वंश-जात सुकृती सबमें प्रधान
कोई कहे यदि तुम्हे करना न मान।
किं किं न दोषमथवा कुरुतेऽभिमानः[4] ॥ ३ ॥

कोई कहे यह लबार तथा अनारी
मूर्खाधिराज शठ दुष्ट भले भिखारी।
किन्तु क्षमा कर सुधी-जन यत्र तत्र
ज्ञानान्वितेन भवति क्षमितव्यमत्र[5] ॥ ४ ॥

१—जो जिनेशतत्त्वैका अनन्य प्रेमी है वही जैन शरीरी है।

२—जैसे अन्धा आदमी नहीं देखता।

३—यह शब्द यद्यपि हलन्त है किन्तु यहां इसे स्वरविशिष्ट उच्चारण करना चाहिये, अन्यथा छन्दोभङ्ग हो जायगा। इसी प्रकार आगे के दो पद्योंमें "शान्ति" और "सृष्टि" इनपदों में भी ह्रस्व इकार है। इन्हें भी पढती वार दीर्घ उच्चारण करनेसे छन्दश्च्छुतिकी शङ्का नहीं हो सकती।

४—भला अभिमान कौन कौनसी बुराइयां नहीं करता?

५—ज्ञानी जीवको इस संसारमें सदा क्षमा करनी चाहिये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कैसी छद्म-मयी यहै जवनिका संसारकी हे प्रभो !
शोक-क्रोध-भयादिकी नित नयी झाँकी दिखाती विभो !
छोड़ो अज्ञ ! हुए विपन्न इससे भी शास्त्रवित्केशरी
मत्तेभं हि हिनस्ति यः स हरिणं किं मुञ्चते केशरी ॥ ५ ॥
धर्म-ध्यान धरे न लोक-हितकी चर्चा करे एक भी
स्वार्थी लोभ-वशी गुणी सुजनकी निन्दा करे द्वेष भी।
शिक्षा-वारिजको निशाकर बने दुर्दृश्य ही देखते
यस्तं लोक-विनिन्दितं खलजनं कः सज्जनः सेवते ॥ ६ ॥
जगत् चिन्ताका है गृह विषय शत्रु प्रबल है
कलत्रादि प्राणी निरय-पथ-दर्शी सबल है।
सभी सृष्टि सच्चे सुखमय-पथोंसे विरहिता
इति ज्ञात्वा सन्तः स्थिरतरधियः श्रेयसि रताः ॥ ७ ॥
तमःप्राया आंखें रदन नहीं दीखें वदनमें
उन्हें शान्ति कैसी ? सघन वनमें या सदनमें।
चलें यष्टि-द्वारा शिरसिज हुए श्वेत नतिमानं
मनो जन्मोच्छित्त्यै तदपि कुरुते नायमसुमान् ॥ ८ ॥
नर-वर-जॅनि पाई हा ! वृथा ही बिताई
व्यसन-वसन ओढ़े विश्व-विद्या नशाई
विषय-विटप काटो मूलसे देर होती
यदिह विषय-शत्रु दुःख मुग्रं करोति ॥ ९ ॥
अहरह अविकारी कीर्ति-कान्ति-प्रसारी
सकल-सुकृत-सार मान विद्या-प्रचार।
विमुख इस सुधासे जो वही सापराध
स्खलति यदि स मार्गे तत्र दैवापराधः ॥ १० ॥

१—शास्त्रवित्केशरी (विद्वानोंमें श्रेष्ठ) क्योंकि सिंह-पर्यायवाची शब्द श्रेष्ठताका भी सूचन करता है जैसेः—पुरुष-सिंह नर-शार्दूल नर-केशरी आदि।

२—जो मतवाले हाथीको मारता है वह सिंह कभी हरिणको छोड़ सकता है ?

३— निन्दित जनकी सेवा भला कौन सज्जन कर सकता है ?

४—सज्जन ऐसा विचार कर स्थिरबुद्धितासे अपने कल्याणमें रत रहते हैं।

५—झुके हुए (कुबड़े).

६—तौभी प्राणी पुनर्जन्मको रोनेके लिये यानि मुक्ति केलिये ध्यान नहीं देते।

७—जनि (जन्म) ८—संसारमें विषयरूपी शत्रु बड़े भीषण दुःखका अनुभव कराता है।

९—इस चरण का भाव यह है कि प्रयत्न-प्रथिक मनुष्यका यदि कहीं मार्गमें स्खलन (पतन) होवे तो वह भाग्यका दोष समझना चाहिये नकि उसके प्रयत्नका।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होठोंमें लालिमा हो त्रिवलि उदरमें कालिमा हो स्तनोंमें
नाभीमें निम्नता हो गुरुतर कुचहो चक्रता श्रोणियों में ।
सच्चारित्रा सुगात्रा प्रकटितसुखमा दिव्यलावण्यज्योति
बुध्वैवं स्त्रीं पवित्रां शिव-सुखकरणीं सज्जनः स्वीकरोति ॥

पाण्डित हरनाथ द्विवेदी

'भगवज्जिनसेनाचार्य्य और कविवर कालिदास.

यह देखकर हमारे हर्षका पारावार नहीं रहता कि, अब हमारे भारतवर्षमें भी ऐतिहासिक महत्त्वका पुरनरुत्थान हो रहा है, और सभी समाजवाले अपनी अपनी ऐतिहासिक खोजोंमें लगरहे हैं। परन्तु साथ साथ यह देखकर हमे आश्चर्य होता है कि, भारतवासी अभीतक किसी नई खोज और नवीन बातोंके सुनने और माननेके लिये सहमत नहीं होते। परन्तु अब वह समय नहीं रहा कि संसार अन्धपरम्पराके विश्वासपर चल सके, बल्कि अब समय आपकी प्रत्येक कल्पना और सिद्धान्तोंका सुदृढ प्रमाण मांगे गा। इसलिये आपको अपनी निर्मूल कल्पनाएं छोड़ देनी होगीं और यदि आपके हृदयकी कष्टकर हों तौभी सुदृढ प्रमाण और नई खोजें स्वीकार करनी होगीं।

हम समझते हैं कि, हिन्दी-क्षेत्र तथा बहुदर्शिमण्डलीमें हिन्दी समाचारपत्रोंमें सर्वप्रधान " सरस्वती " मासिक पत्रके सुयोग्य सम्पादक द्विवेदीजीसे प्रायः सबकोई परिचित होगें। आपकी ऐतिहासिक मर्मज्ञता, बहुदर्शिता तथा समालोचनासुदक्षताके साथ साथ पुस्तक-पर्य्यालोचनताकी गीतिकाएँ श्रीमती " सरस्वती " महीने महीनेपर अपने पाठकोंके समीप वीणावादन-द्वारा सुमधुर स्वरोंसे गागाकर द्विवेदीजीमें पाठकोंकी पूज्यश्रद्धाकी मात्रा उत्तारोत्तर बढ़ाया करती हैं। द्विवेदीजीने कविवर कालिदासके गुणदोष तथा समयादिके निर्णय करनेमें कितनी माथापच्ची कीहै, इसका पूरा प्रमाण और रात्रिन्दिन पुस्तकाध्ययनका चिन्ह आपकी लिखित " कालिदासकी निरंकुशता " ही काफी है। सरस्वतीके प्रायः बहुतसे अङ्क ऐसे होगें कि जिनको द्विवेदीजीने अवश्य कालिदासीय-कवित्व-विभूतिसे विभूषित किया होगा।

१—ऐसा समझकर सज्जन पवित्र कल्याण तथा सुखकी करनेवाली स्त्रीको स्वीकार करते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हमने **भास्कर**की गत किरणमें "भगवज्जिनसेन और गुणभद्राचार्य्यका परिचय" शीर्षक लेखमें प्रसङ्ग–वश कविवर कालिदास और भगवज्जिनसेनाचार्य्यकी समकालीनताकी कुछ चर्चा की थी। सो कालिदास-सर्वस्वसंरक्षक तथा अनन्य कालिदासीयज्ञेयज्ञाता द्विवेदीजीने विगत नवम्बर मासकी सरस्वतीकी बारहवीं संख्याके ५७२ पृष्ठमें "कालिदासके विषयमें जैनी पण्डितोंकी एक निर्मूल कल्पना" शीर्षक एक लम्बा चौड़ा लेख लिख डाला है।

द्विवेदीजी अपनी निर्मूल काल्पनिक युक्तियोंसे "पार्श्वाभ्युदय" रचे जानेका कारण यह बतलाते हैं कि, "अनुमानसे मालूम होता है कि, विनयसेनको 'मेघदूत' का विषय, जो शृंगार रससे परिप्लुत है, अच्छा न लगा। उन्होंने शायद सोचा कि, ऐसा अच्छा काव्य यदि किसी जैन तीर्थङ्करपर घटा दिया जाय तो घटानेवालेके कविता–चातुर्य्यका भी प्रकाशन हो जाय, और यह काव्य जैन साधुओंके पढने योग्य भी हो जाय। यह बात विनयसेनने जिनसेनसे कही होगी। इस सलाहको जिनसेनने पसन्द करके ही जान पड़ता है, पार्श्वाभ्युदयकी रचना की है"

द्विवेदीजीको स्मरण रहे कि आपको "मालूम होता है" "शायद" "कही होगी" इत्यादि निस्सार युक्तियोंको वे ही स्वीकार करेंगे जो आपके वाक्योंको ही सर्वज्ञ-वाक्य मानते हों। बिना सुदृढ प्रमाण दिये तथा अकाट्य युक्तियोंको प्रकाशित किये वर्त्तमान इतिहासखोजी इस बातको कभी नहीं मान सकते।

वर्त्तमान समयतक जो अनेक इतिहासमर्मज्ञ तथा प्रत्नतत्त्ववेत्ताओंने कालिदासका समय स्थिर करनेके लिये अगणित ऐतिहासिक अन्वेषण किये हैं, उनसे निर्णय होना तो दूर रहे बल्कि मतविभिन्नताकी धाराएं आज सहस्रपथसे प्रवाहित हो रही हैं।

अबतक किसी पुरातत्त्ववेत्ताओंने संदेहरहित अपनी अकाट्य तर्कनाओंसे यह नहीं निश्चय किया कि, कालिदास अमुक शताब्दिमें हुए तथा अमुक राजाके आश्रित थे! कोई कहता है कि, कालिदास संवत् शताब्दिके प्रारंभमें हुए. कोई कहते हैं कि कालिदासका प्रथम शताब्दिमें होना बिलकुल असंभव है, क्योंकि संवतका संस्थापक विक्रमादित्य नामक कोई राजा हुआ ही नहीं। कोई संवत्का स्थापक कनिष्क तथा चंद्रगुप्तहीको बतलाते हैं, अतएव इनके समयमें ही कालिदासका अस्तित्व मानना परमावश्यक है। कोई कहता है कि नहीं नहीं, कालिदास ईस्वी सनके ५४४ में ही हुए हैं। क्योंकि, हर्षराजाने विक्रमादित्य नाम धारण करके अपना संवत् चलाया है, अतएव उनके समयमें ही कालिदासका होना आवश्यक है। कोई कहता है, विक्रमकी सभाके नवरत्नमालान्तर्गत एक ज्योतिषी कवि वराहमिहरने अपने ग्रंथमें कालिदासका उल्लेख किया है.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस वास्ते कालिदासको उनका समकालीन होना ज़रूरी है, तो इसके विपक्षमें कोई ऐसा कहता है कि, राजा भोज जब उज्जयिनीके सिंहासनपर विराजमान थे तब उनकी सभाको कालिदास भवभूति आदि अनेक कविमण्डली अनुरंजित किया करती थी, इसलिये इनके ग्यारहवीं शताब्दिमें होनेमें कुछ संदेह नहीं है। कोई कहता है कि, कालिदास नामसे कई कवि हो गये। कोई कहता है कि ११ वीं शताब्दिके भोजके सभामें; कोई कहता है प्रथम शताब्दिके विक्रमादित्यकी सभामें, तो कोई कहता है, पंचम शताब्दिके हर्ष विक्रमादित्यके सभामें। इसी प्रकार कालिदासके विषयमें अनेक इतिहास लेखकोंने सैकडों सप्रमाण किंवदन्तियां अपने मनमाने समयमें कालिदासका अस्तित्व परिपुष्ट करनेके लिये बना डाली हैं, किन्तु इनके साधक बाधक प्रमाणके सारगर्भित होनेमें प्रायः बहुतसे विद्वानोंको संदेह है। ऐतिहासिक लेखकोंने आजतक कालिदासके कालसम्बन्धी जितने प्रमाण प्रकाशित किये हैं, उनको वे कभी ऐसा नहीं कहते कि सब कोई हमे परमेश्वर तथा सर्वज्ञ समझकर हमारी कही हुई बातको ही सर्वथा मान्य करो। बल्कि उन इतिहास–खोजियोंका यह आभिप्राय सर्वथा प्रकटित होता था कि, हमारे इस नये संशोधनके विषयमें और विद्वानोंकी जो उक्तियाँ होंगी वे हम सहाय्यरूपसे स्वीकार करेंगे। और जबतक कोई बात निर्णीत नहीं होती तबतक वे अपने प्रकाशित मन्तव्यको भी सर्वस्वीकृत होने केलिये अस्त व्यस्त नहीं होते। आजकलके जो नये आविष्कर्ता हैं वे इस मन्तव्यसे सर्वथा प्रतिकूल हैं। और हम समझते हैं कि, जबतक ऐसा धर्म–वश विवेचन चलता रहेगा तबतक नयी खोज, नया संशोधन और नयी बातें कभी भी कृतकार्य नहीं हो सकतीं। इसलिये सच्चे इतिहासका भी निर्णय होना कठिन हो जायगा। नयी खोज प्राचीन इतिहासकी अंगपुष्टि केलिये एक बड़ी भारी सहायिका है। इसीलिये हमने गत किरणमें कालिदास और जिनसेनकी समकालीनता दिखलानेकी चेष्टा की थी। वह हमारी नयी खोज नहींथी। प्रायः बहुदर्शी विद्वच्छिरोमणियोंको मालूम होगा कि, पार्श्वाभ्युदयके टीकाकार पण्डिताचार्य योगीराट् कैसे उद्भट विद्वान् थे। उन्हींके पार्श्वाभ्युदयके अवतरणके आधारपर, कालिदास और जिनसेनाचार्यकी काव्यरचनाप्रणालीकी समता निश्चित कर तथा ऐतिहासिक विद्वानोंकी सम्मति विवेचन कर हमने यह लिखा था कि, कालिदास और भगवज्जिनसेनाचार्य समकालीन थे। हमने इस विषयमें पूरे प्रमाणके प्रकाशनके लिये जो अपने पाठकोंको सूचना दी थी, उसपर 'द्विवेदी'जीने अपनी सरस्वतीमें बाग्विलास करनेकी कृपा की है। हम इसके लिये द्विवेदीजीके बड़े ही उपकृत होते हैं कि, आपने हमे 'भास्कर'में कालिदासके और भगवज्जिनसेनाचार्यके विषयमें कुछ लिखनेका अच्छा अवसर दिया है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कालिदासके विषयमें बड़े बड़े इतिहासवेत्ताओंकी क्या राय है, वह हम नीचे उद्धृत किये देते हैं और हम अपने सहयोगीपत्रसंपादकों तथा पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि, वे अन्यान्य पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानोंकी मतभेदपरिपूर्ण सम्मतियां पढकर भलीभांति विचार करलें कि वास्तवमें कालिदासका अस्तित्व कब मानना उचित है।

(१) **हिप्पोलाइट फौचे**की कालिदासके कालनिर्णयके विषयमें सम्मति है कि, जब पोष्यपुत्र (Posthumouse child) को उत्तराधिकारी होनेका प्रचार भारतमें प्रचलित था तभी कालिदास हुए। क्योंकि रघुवंशके अंतमें–पोष्यपुत्र सिंहासनारूढ हुआ, ऐसा लिखा है। इस लिये कालिदासका समय बी. सी. अष्टम शताब्दि मानना ज़रूर है।

(२) **सर विल्यम जोन्स**का मत है कि, कालिदासका समय प्रथम शताब्दिमें मानना चाहिए। उसका प्रमाण आप यों देते हैं कि, परंपरागत किंवदंतिओंसे जो विक्रमके सभामें नवरत्नोंके उद्ग्रथित होनेकी चर्चा लोगोंने की है उसके अनुसार कालिदासका भी समय विक्रमके समयानुसार प्रथम शताब्दिमें होना चाहिए, और विक्रम संवत् प्रथमशताब्दिके पहलेसे प्रारंभ है।

डॉ० फ्लीट साहेबने यह निश्चयपूर्वक लिखा है कि, बी. सी. ५७ से जिसका संवत् प्रचलित है वह **विक्रम** नामका राजा कोई हुआ ही नहीं। 'विक्रम' यह उपाधि **चंद्रगुप्त** प्रथम या द्वितीयकी ही होनी चाहिए। क्योंकि, विक्रमके इतिहासके विषयमें न कोई ऐतिहासिक विश्वसनीय बात ही साक्ष्य देती है और न कोई शिलालेख अथवा शिक्के ही मिलते हैं। अतएव विक्रमके अस्तित्वसंबंधी वार्ता प्रथम शताब्दिकी व्यर्थ है। जब विक्रमका ही पता नहीं लगता तब बिचारे कालिदासको पूछता ही कौन है? इसलिये प्रथम शताब्दिमें कालिदासका मानना ठीक नहीं।

(४) **प्रो० शारदारंजन रॉय** विक्रम संवत्के बारेमें लिखते हैं कि, उज्जयिनीमें 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण करनेवाला **श्रीहर्ष** नामका राजा था। उसीने ५४४. ई० में कोरूरमें म्लेच्छोंके साथ युद्ध किया था और म्लेच्छोंको भारतसे भगाया था। म्लेच्छोंपर विजयाक्रमण करनेसे ही उसके संस्मरणार्थ हर्षने अपना संवत् चला दिया। और उसीको ६०० वर्षका पुराना बतलाया। अर्थात् इस संवतका प्रारंभ ईस्वीके पहिले ५६ में हुआ ऐसा ज़ाहिर किया। विक्रमसंवत्का उल्लेख ५४४ के सिवा और दूसरा किसी ऐतिहासिक लेखोंमें आताही नहीं। इसलिये इसीको प्रमाण माना और उसीके अनुसार कालिदासका भी अस्तित्व छठवीं शताब्दिमें माना।

फिर भी प्रोफेसरसाहेब कहते हैं अश्वघोष और कालिदासकी कवितामें बहुत समता दिखती है। कालिदास का भाव तथा आशय इन्होंने लियाथा, यदि ऐसा माना जाय तो

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अश्व घोषका समय प्रायः ७९ ईस्वी विद्वानोंने नियत किया है और अशोकका बी. सी. २२७। इससे माळूम होता है कि, अश्वघोष और अशोकके बीचमें कालिदासका अस्तित्व अवश्य था। अतः बी. सी. की प्रथम शताब्दिमें कालिदासका समय मानना चाहिये।

इन्होनें एक और ऐतिहासिक विवेचन इस प्रकार किया है कि कालिदासके काव्यके टीकाकर मल्लिनाथका समय १४ वीं शताब्दि है और गणरत्न महोदधिका उल्लेख इन्होनें अपनी टीकामें जहां तहां किया है। इसलिये माळूम होता है कि कमसे कम इनके सौ वर्ष पहले १२५० ई०में अवश्य गणरत्नमहोदधि-कार हो गये हैं. तब ११५७ वर्ष पहले विक्रम हुए। अर्थात् बी. सी. ५७ में विक्रमने राज्य किया था, यह ज्ञात होता है। जब विक्रमके समकालीन कालिदास माने जायं तो बी. सी. के प्रथम शताब्दिमें कालिदासको होना चाहिए*।

(५) **ज्योतिर्विदाभरण** नामक ज्योतिषशास्त्रके कर्ता कालिदासने धन्वंतरी, क्षपणक, अमरासिंह,वराहमिहिर आदि नव रत्नोंका अपने ग्रंथमें उल्लेख किया है। उससे विक्रमके समकालीन कालिदासका होना ज्ञात होता है। और विक्रमक प्रथम शताब्दिमें हुए ऐसा माननेसे कालिदास भी प्रथम शताब्दिमें हुए, किन्तु इसपर अनेक शंकाए हैं जैसे:—

डॉ० भाऊ दाजी कहते हैं काव्यादि ग्रंथोंके रचयिता और ज्योतिःशास्त्रके रचयिता कालिदास भिन्न भिन्न हैं। आपके मन्तव्यानुसार यदि ज्योतिर्विदाभरणके कालिदास प्रथम शताब्दिमें माने जायं तो, काव्योंके कर्ता कालिदासका औरही समय निश्चित करना पडेगा। और जैसे:—

बुद्धगयामें **अमरसिंह**नें एक मंदिर बनवाया है. इसका समय ४१४–६४२ ई. तक माना गया है। इसपर जनरल **क्यानिंगहॅम**का मत है कि, यही अमरदेव विक्रमसभाके एक रत्न थे। तब छठवीं सातवीं शताब्दिमें विक्रमका समय मानना चाहिये। इसलिये कालिदासको भी छठवीं सातवीं शताब्दिमें माननेसे किसी प्रकारकी आपत्ति नही हैं।

अमरदेवके बुद्धगयाके शिलालेखके विषयमें History of Literature नामक ग्रंथमें **प्रो० वेबर**साहेब लिखते हैं कि जिसका नाम विक्रमके सभान्तर्गत नवरत्नोंमें था, उस अमरदेवने संवत् १०१५ (ई. ९४९) में मंदिर बनवाया है। ऐसा उल्लिखित क्यानिंगहॅमके मतके विरुद्ध मत प्रकाशित कर कालिदासका समय ग्यारहवीं शताब्दिमें मानते हैं। क्या खूब है ? एक ही शिलालेखमें दोपाश्चात्य पुरातत्त्ववेत्ता-

* देखो रॉयल ॲ. सो. बेंगालब्रँच ६ व्हाल्युम.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ओंका इतना लंबा चौड़ा मदभेद ? और भी एक नये ऐतिहासिक खिलौनेकी कारीगरी देखिये:—

वराहमिहर—जोकी विक्रमसभाके एक रत्न थे, उन्होंने अपना समय ५८७ ई. अर्थात् छठवीं शताब्दिमें बताया है। इस आधारपर कालिदासका समय **डॉ० भाऊ दाजी** तथा **मि० आपटे**ने छठवीं शताब्दि माना है।

पाठको! ज़रा विचार कर इस ऐतिहासिक प्लुतिको देखिये कि विक्रमसभाका एक रत्न ज्योतिर्विदाभरणका कर्ता—**कालिदास** प्रथम शताब्दिमें, दूसरा रत्न वराहमिहर छठवीं शताब्दिमें, तीसरा रत्न अमरसिंह—ग्यारहवीं तथा सातवीं शैताब्दिमें—अन्यान्य पुरातत्त्वान्वेषी पण्डित मानते हैं। अब आप ही लोग बतलावें कि विक्रमको किन रत्नोंके समकालीन मानना उचित है? बलहारी है इस ऐतिहासिक संशोधनकी!!!

(६) **जॉन मुरीमिचेल** लिखते हैं कि, हमे किसी ऐतिहासिक तथा शिलालेखान्तर्गत प्रमाणद्वारा यह बात निश्चित नहीं मालूम हुई कि, कालिदास विक्रमादित्यके सभामें थे। किन्तु यह बात लोगोंने ठीक मान रक्खी है कि, भोजराजाके सभामें कालिदास नहीं थे, परन्तु इन दोनों बातोंमे लोगोंको सहमत होना साधारण बात नहीं है। **जोन्स**साहेब कालिदासको बी. सी. की प्रथम शताब्दिमें मानते हैं। **एलफिन्स्टन**साहेब आपको पंचम शताब्दिमें खैंचते हैं। **कोलेब्रक** और **प्रो० विल्सन**साहेब ९०० वर्ष पहिले होनेको बताते हैं। विल्सनसाहेबकी राय है कि, कालिदास दो होने चाहिए। क्योंकि, नलोदय काव्यके कर्ता कालिदासको माननेसे मेघदूतादि कीसी सरस रचना नलोदयकी नहीं मालूम पड़ती, इसलिये जब संस्कृतसाहित्य उच्च श्रेणीका था, तब कालिदासका होना सम्भवपर* है।

(७) **मि० पी. पिटर्सन** कहते हैं कि कालिदासको जो आधुनिक इतिहास लेखकोंने अर्वाचीन मान रक्खा है, सो ठीक नहीं. उन्हें प्राचीन ही मानना उचित है। अर्थात् प्रथम शताब्दिके पहले कालिदासका अस्तित्व था।†

(८) **प्रो० मोक्षमूलर** साहेब कहते हैं, ई. ५८५—८६ के शिलालेखमें प्रसिद्ध कवि भारवीके साथ साथ कालिदासका उल्लेख मिलता है, इसलिये इस शिलालेखके कुछ वर्ष पहले कालिदासका समय मानना चाहिये।

प्रथम शताब्दिमें विक्रमादित्य हुआ ऐसा कोई प्रमाण—पत्र आजतक उपलब्ध नहीं हुआ। किन्तु निर्मूल इस बातपर लोगोंको कैसे विश्वास हुआ, यह मुझे आश्चर्य मालूम

* देखो—रॉ. अ. सो. व्हाल्युम १-३०८ का पृष्ठ.

† देखो—कोर्टशिप इन एन्शन्ट इंडिया पृष्ठ ११०

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पड़ता है। इस आश्चर्यित उलझनका सुलझाव मि. फर्ग्यूसन साहेबने इसप्रकार किया है कि, कोरूरके युद्धमें जो उज्जयनीके महाराज हर्ष विक्रमादित्यने ई. स. ५४४ में म्लेंच्छोको पराजित किया था, उसी अपने विजयोपलक्ष्यमें इस संवत्को ६०० वर्ष पीछे खैंचकर चलाया था। यह मि. फर्ग्यूसन साहेबकी सारगर्भित सम्मति मुझे अच्छी मालूम पड़ती है और इसी समयमें कालिदासका अस्तित्व संभवपर है।

(९) **मल्लिनाथ**ने मेघदूतकी टीकामें एक जगह लिखा है कि, दिङ्नाग और निचुल ये दोनों कालिदासके प्रतिस्पर्धी कवि थे। बौद्धोंके इतिहासमें लिखा है कि, दिङ्नाग असंगके शिष्य थे। कनिष्कके ५०० वर्ष पीछे असंग हुए। अर्थात् ५७८ ईस्वीमें असंगका समय निश्चित होता है। अतएव कालिदासको दिङ्नागके समसामायिक होनेसे इनका अस्तित्व छठवीं शताब्दिमें निर्णीत होता है। यह **आपटे** महाशयका कथन है। मि० **आपटे** महाशयका दूसरा यह भी कथन है कि, राजतरंगिणीमें—उज्जयनीमें जब विक्रमादित्य राज्य करते थे, तब उस समय उन्होंने काश्मीरमें **मातृगुप्त** नामक एक कविको भेजाथा—ऐसा वर्णन है। बल्कि उस कविको आधा राज्य भी दे दिया था। यह मातृगुप्त **कालिदास** ही होना चाहिए। क्योंकि उसका नाम कालिगुप्त तथा कालिदास भी था। और दूसरी बात यह है कि कालिदासके काव्योंमें जो काश्मीरके सृष्टिसौंदर्यकी आभा बीचबीचमें मालूम पड़ती है इससे कालिदासको छठवीं शताब्दिमें होना युक्तियुक्त है। डॉ० भाऊ दाजी भी इस कथनसे सहमत है। अन्तमें मि० रघुनाथ नारायण आपटे महाशयका निर्णय है कि, कालिदासको ई. सन ४७२—६३४ तकके बीचमें, होना ही चाहिए।

(१०) **प्रो० के. बी. पाठक** लिखते हैं कि, रघुवंशमें जो हूण लोगोंपर रघुसे आक्रमण किया गया है सो हूणोंका समय छठवीं शताब्दि ही निश्चित होता है। क्योंकि, हूण लोगोंका राज्य काश्मीरमें जब सिंधुनदीपर था तभीका यह वर्णन है। और यह घटना छठवीं शताब्दिकी ही है। इसलिये कालिदासका अस्तित्व छठवीं शताब्दिमें मानना उचित है।

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्॥ ६८॥

सर्ग चतुर्थ.

(११) बल्लाल कविविरचित भोजप्रबंधमें कालिदासके बारबार उल्लेख आनेसे **मि० बेंटली** साहेब कहते हैं कि, भोजराज ग्यारहवीं शताब्दिमें हुए थे। इसलिये कालिदासको भी ग्यारहवी शताब्दिमें होना चाहिये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(१२) **डॉ० भाऊदाजी**का कथन है कि, कालिदास साढ़े छठवीं शताब्दिमें* हुए।

(१३) **मि० टी. डब्ल्यु. रैस डेव्हिड** कहतें हैं कि, सिलोनके सभी विद्वानोंका यही सर्वसाधारण मत है कि कालिदास नामक प्रसिद्ध कवि छठवीं शताब्दिके प्रारंभमें हुआ है और उनका समय ५५२ ईस्वी +बतलाते हैं।

(१४) मि० **रमेशचन्द्र दत्त** की राय है कि, कालिदास छठवीं† शताब्दिमें हुआ।

(१५) प्रो० **म्याक्डोनल्ड**साहेब लिखते हैं कि; कालिदास पांचवी शताब्दिके प्रारंभमें हुए थे‡।

(१६) मि० **मनमोहन चक्रवर्ति**का कथन है कि, कालिदासने जो रघुवंशमें हूणोंका वर्णन किया है इससे ज्ञात होता है कि, कालिदास स्कंधगुप्तके समयमें हुआ था। जिसका अस्तित्व ४७० ईस्वी माना जाता है। और भी आप कहते हैं कि, रघुवंशका लेखनसमय ईस्वी ४८० से ४९० तक होना चाहिए। और मेघदूत तथा ऋतुसंहारादि काव्योंका प्रणयन इसके २०।३० वर्ष पहले हुआ है। अतएव कालिदासका समय पंचम शताब्दिका है।

(१७) कालिदासके विषयमें विल्यमजोम्सका जो कथन है कि विक्रमादित्यका समय बी. सी ५७ होना हमे मंजूर है; अध्यापक मि० **नन्दरगीकर** उसीपर अपनी सम्मति देते हैं कि बी. सी. ४० मे कालिदास हुए, यह बात हमे विश्वसनीय ज्ञात होती है। क्यों कि मल्लिनाथने भी इसी बातको प्रमाणित किया है।

(१८) कोई कहते हैं कि यशोवर्मनने ईस्वी सन ७००–७३० तक राज्य किया। उसकी सभामें भवभूति कवि थे। भवभूतिने जब अपना उत्तर रामचरित्र नाटक बनाकर राजाको दिखाया था तब कालिदासने **रात्रिरेवं व्यरंसीत्** की जगह **रात्रिरेव व्यरंसीत्** होना चाहिये ऐसा कहकर भवभूतिकी बड़ी प्रशंसा की थी। इससे भवभूति और कालिदास समकालीन हो सकते हैं, अर्थात् कालिदास लगभग अष्टम शताब्दिमें हुए थे ऐसा मालूम पड़ता है।

(१९) किसीका कथन है कि श्वेताम्बर जैनशास्त्रोंमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि मानतुंगाचार्य और कालिदाससे राजा भोजकी सभामें वादविवाद हुआ था, अतः भोजको ग्यारहवीं शताब्दिमें होनेसे कालिदासको भी ग्यारहवीं शताब्दिमें मानना पड़ेगा।

---

* देखो–Library Remains of Dr. Bhau Daji Page–37.

+ देखो लंडन जर्नल रॉ. अ. सो. व्हा. २० पेज १४९

‡ देखो–Ancient India Page 145-44 149

† देखो–History of sanskrit Litrature Page 325

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(२०) **वाणभट्टने** हर्षचरित्रमें लिखा है कि:—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

बाणभट्टको श्रीहर्षराजाके समकालीन माना जाता है। हर्षका समय सप्तम शताब्दिके प्रारंभमें है, इसलिये हर्ष विक्रमादित्यके सभामें जो कालिदास थे, उनका भी छठ्वीं शताब्दिका अन्त और सप्तम शताब्दिका प्रारंभ मान लेनेसे कुछ आपत्ति नहीं।

(२१) **कर्नल विलफोर्ड, जेम्स प्रिन्सेप** वगैरह पुरातत्त्वान्वेषी विद्वान् कालिदासको पंचम शताब्दिमें मानते हैं. इनका यह कथन मि. एल्फिन्स्टन साहबने भी प्रमाणित माना है।

(२२) प्रो० **लॅसन**ने ईस्वी सनकी द्वितीय शताब्दिके उत्तरार्धमें कालिदास हुए हैं, ऐसा प्रमाणित किया है। क्योंकि कालिदास समुद्रगुप्तके समयमें थे। इसका प्रमाण शिलालेखमें जो 'कविमित्र' है वही काफी है।

(२३) **कर्नल टॉड**साहेबने कालिदासप्रभृति नवरत्नोंका अस्तित्व परमारवंशीय राजा भोजके* समयमें माना है। इनकी रायमें भोज नामके तीन राजा हुए। प्रथम भोज संवत् ६३१ (५७५ ईस्वी) में, द्वितीय भोज संवत् ७२१ (६६५ ईस्वी) में और तृतीय भोज संवत् ११०० (१०४४ ईस्वी) में हुए। ऐतिहासिक संशोधकों कि दृष्टिमें प्रथम भोजके समयमें कालिदासका होना युक्तियुक्त जँचा है। इसी प्रथम भोजकी उपाधि **विक्रमादित्य** है ऐसा टॉड़साहेबने माना है।

(२४) प्रो० **कोवेल**का मत है कि, अश्वघोषका बुद्धचरित ईस्वी सन ७० में प्रसिद्ध था। अश्वघोषके काव्यकी समता कालिदासके रघुवंशादि काव्योंसे होती है, इसलिये कालिदासका समय प्रथम शताब्दिमें मानना चाहिए।

(२५) प्रो० **कर्न**साहेब बृहत्संहिताके प्रारंभमें लिखते हैं कि, विक्रमादित्य शकके प्रारंभमें हुए थे, अतएव कालिदासको भी उनके समकालीन होने चाहिए।

(२६) चीन प्रवासी **हुएनसंग** विक्रमादित्यको द्वितीय शताब्दिके प्रारंभमें मानते हैं, इसलिये कालिदासका भी वही समय निर्द्धारित होता है।

(२७) **आलबेरुणी**ने विक्रमसंवत्का प्रारंभ शकके १३५ वर्ष पहले माना है. अत एव कालिदासका भी यही समय होना चाहिये।

(२८) दिङ्नागाचार्य असंग नामक बौद्धाचार्यके शिष्य थे। दिङनाग २०० ईस्वीमें हुए हैं। उस समय भी एक विक्रमादित्य नामका राजा श्रावस्ती नगरीमें राज्य करता था। इसलिये कालिदासको भी विक्रमके साथ मानना युक्त है।

* देखो Annals of Rajasthan Val II Page 92

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(२९) एक किसी विद्वान्की राय है कि, **कुमारिल भट्ट** ७०० ईस्वीमें हो गये हैं। इनके तंत्रवार्तिक ग्रंथमें कालिदासके शकुन्तलाका:—

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

यह श्लोकांश कुमारिलभट्टने उद्धृत किया है। इससे जाना जाता है कि दो चार दस वर्षके हेरफेरमें कुमारिलभट्टके ही समयमें कालिदास हुए हैं।

(३०) **रविकीर्ति** जैनाचार्यके आयहोलीके शिलालेखपर जो ५५६ शक (ईस्वी ६३४) लिखा है वही समय प्रायः कालिदासका भी होना चाहिए। क्योंकि रविकीर्तीने साफ साफ लिख दिया है कि, कालिदास और भारवी कीसी हमारी कीर्ति है। इस शिलालेखपर डॉ. भाण्डारकर कहते हैं कि:—

"कालिदासका अभीतक सप्रमाण और संतोषजनक समय निर्णय नहीं हुआ। तौभी उनका उल्लेख रविकीर्तिने आयहोलीके शासनमें किया हैं। जिससे कालिदासका समय साढ़े सातवीं शताब्दिका जान पड़ता है"।

(३१) किसी किसीकी राय है कि, बुद्धचरितके कर्त्ता **अश्वघोष** कालिदाससे भी प्राचीन हैं, क्योंकि **माघ** आदि अर्वाचीन कवियोंकी रचना-प्रणालीकी कुछ भी समता बुद्धचरित्रमें नहीं पाई जाती। कालिदाससे प्राचीन होनेका प्रमाण लोगोंने यों ठहराया है कि, कालिदासवत् यह भी माधुर्य-प्रिय थे और महर्षि वाल्मीकिके ऐसा इनके काव्यगुम्फनका ढर्रा है। जैसे:—

अश्वघोष—**नवपुष्करगर्भकोमलाभ्यां**
तपनीयोज्वलसङ्गताङ्गताभ्याम्।
स्वपिति स्म तथाऽपरा भुजाभ्याम्
परिरभ्य प्रियवन्मृदङ्गमेव॥

वाल्मीकि—**स्त्रियो ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढाः**
निशीथकाले रमणोपगूढाः।
ददर्श काश्चित्प्रमदोपगूढाः
यथा विहङ्गा विहगोपगूढाः॥

(३२) कोई कहता है कि कालिदास **जानकीहरण** के कर्त्ता कुमारदासके समकालीन थे। बौद्धग्रन्थोंमें लिखा हुआ है कि चन्द्रगुप्तके पौत्र **प्रियदर्शी** के वंशमें यह हुए हैं, और इनका समय छठवीं शताब्दि निश्चित होता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(३३) राजशेखर कविने तीन कालिदास माने हैं। जैसेः—

"एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदास-त्रयी किमु"

अष्टम शताब्दिके **भवभूति** के समकालीन कालिदास, **परिमल** कालिदास, **माघ** समकालीन कालिदास, **अभिनव** कालिदास उपाधिवाले **भागवत चम्पूकार**, **शङ्करविजय** कालिदास आदि अनेक कालिदास हैं।

एक किम्वदन्ती है कि, कुमारदासके मित्र कालिदास एकवार सिंघल नगरमें गये। वहां एक वारविलासिनीके दरवाजेपर निम्नलिखित समस्या लिखी हुई थीः—

"कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते"

इस पूर्ति कालिदासने कीः—

"बाले तव मुखाम्भोजे दृष्टमिन्दीवरद्वयम्"
कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते।

(३४) कोई महोदय तो बड़ी सूक्ष्मदर्शितासे कालिदासीय काव्योंमें छन्दोरचनापर विचार कर कविवर कालिदासको आशातीत प्राचीन कायम करते हैं। और कोई कालिदासकी हिन्दी के दो चार पद्य दिखा कर इनको हिन्दी कवियोंकी श्रेणीमें बिठलाते है।

अब मुझे द्विवेदीजीसे यह बात पूछनी है कि द्विवेदीजी! उल्लिखित चौंतीस कल्पनाओंमें कौनसी कल्पना 'निर्मूल' है। मैं समझता हूं कि द्विवेदीजीकी समझमें कालिदासका प्रथम शताब्दिके बाद अस्तित्व कायम करनेवाली प्रायः सभी कल्पनाएं निर्मूल होंगी।

धन्य कालिदास! धन्य तेरी महिमा!! और धन्य तेरी ऐतिहासिचर्चा!!! हिन्दुओंकी श्रुतियोंने ईश्वरके विषयमें जिसतरह "नेति नेति" कहा है, उसी तरह प्रायः सभी इतिहासमर्मज्ञोंने इतिहास-क्षेत्रमें बड़ी बद्धपरिकतासे तथा द्रुतपदसे कवायतें करके आखीरमें उन्हें 'अनुमान' प्रायः 'मालूम' आदि सन्देह-परिपोषक शब्दोंकी ही शरण लेनी पड़ती है। पर मैं द्विवेदीजीकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करता हूं कि आपने निस्सन्देहपूर्वक कालिदासका अस्तित्व प्रथम शताब्दिके पहले माना है।

द्विवेदीजीको स्मरण रहे कि अभी हमने केवल कालिदासके विषयमें इतिहासज्ञोंकी सम्मतियां ही उद्धृतकी हैं। अभी मुझे "**पार्श्वभ्युदय**-की ज्योति जैनियोंके ही शास्त्रभाण्डारमें क्यों जगमगाती रही" इसका उत्तर तथा भगवज्जिनसेन और कविवर कालिदासकी समकालीनताके **पूरे प्रमाण** अभी प्रकाशित करनेही हैं। अगामी किरणोंमें उन्हें मैं अवश्य प्रकाशित करूंगा। (क्रमशः)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भारतवर्षीय प्राचीन शिल्पकला.

:o:

भारतवर्षमें जबसे सभ्यताकी नीव पड़ी है, तभीसे शिल्पकलाकीभी अवतारणा हुई है। किन्तु भारतीय सभ्यताकी प्रभा कब छिटकी है, इसकी पूर्वास्थिति कैसी थी, इत्यादि बातोंका ठीक ठीक पता अभी-तक इतिहास-वेत्ताओंने लगाया ही नहीं। और सच पूछिये,तो, इस विषयका ठीक पता लगना भी बड़ा दुस्साध्य है। परन्तु मैं इतना तो अवश्य कहूंगा शिल्पकलाका जनक भारतवर्ष ही है।

शिल्प और सभ्यतामें बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय शिल्पके बीचमें जातीय भाव तथा प्रकृतिकी एक अक्षुण्ण छाप रहती है। यहांके शिल्पमें विशेषता तो यह है कि, भीतर और बाहर दोनों सौन्दर्यसे ओतप्रोत रहतें हैं। शिल्पका जो बाह्य अंश है वही शिल्पका सर्वस्व नहीं समझना चाहिये। उस शिल्पका प्राण अर्थात् शिल्पी अपने जिस मानसिक भाव-द्वारा शिल्पीय पदार्थको अनुरञ्जित करता है, वही भाव उसका प्राकृतिक सौन्दर्य्य है। शिल्पीमात्र रेखा और वर्णादि-द्वारा अपने अपने मनका भाव प्रकटित करते हैं। जिस रसको प्रकट करना शिल्पीका उद्देश्य है, वह यदि शिल्पमें परिलक्षित हो जाता है तो शिल्पी अपनेको कृतकार्य्य समझता है।

बहुतेरे लोगोंका कथन है कि, शाक्य बुद्धदेवके आविर्भावके पहले शिल्पकलाकी उत्पत्ति थी ही नहीं। किन्तु जब मैं प्राचीन काव्यों और पुराणोंके शिल्पीय वर्णनोंकी ओर दृष्टि देता हूं तो मुझे मालूम होता है कि, इस स्वर्णमय भारतवर्षहीने शिल्पकलाकी अविष्कृति कर शिल्पकलाविष्कारकर्ताओंमें अपनेको आदर्श बनाकर भारतवासिओंका मुख समुज्ज्वल किया है। दूसरी बात यह है कि, जैन, बौद्ध और हिन्दूके वेदादिक ग्रन्थोंमें बड़ी स्पष्टतासे मूर्ति-पूजाका विधान लिखा हुआ है, इसलिये यह मानना पड़ेगा कि भारतवर्षमें ही सबसे पहले शिल्पीय स्रोत बहा था और शाक्य बुद्धदेवके पहले भी शिल्पकलाका प्रचार था। जैनशास्त्र तो शिल्पकलाकी मनोऽतीत प्राचीनता बतला रहा है। क्योंकि जैनग्रन्थोंमें बहुत जगह अकृत्रिम चैत्यालय का वर्णन आया है। प्राचीन कालमें शिल्प-कलाकी क्या अवस्था थी, इस बातका भी पता मुझे पुराणों तथा शिलालेखादि ऐतिहासिक सामग्री ही द्वारा मालूम होता है। प्राचीन कालकी शिल्पकला ऐसी अभ्युदयावस्थामें थी कि, उस समयके एक साधारण राज-प्रासादकी भी धनव्ययिताकी इयत्ता के लिये आज कलके बड़े बड़े राजाओंकी राज्य-सम्पत्ति भी पर्याप्त नहीं समझी जासकती है। प्राचीन राजाओंके दैनिक उपभोगके लिये, जो सामग्री-सम्भार पुराणोंमें वर्णित है, आज वह स्वप्नसा मालूम पड़ता है। यह सब काल ही का प्रभाव समझना चाहिये कि, भारतीय सभ्यता, शिल्पकला-निपुणता तथा धनाढ्यता, आज गजभुक्तकपित्थवत्

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अथवा पुञ्जीभूतकर्पूरवत् एकदम विलुप्तप्राया हो गयी। जब मनुष्य सभ्यता तथा ऐश्वर्य्यकी अन्तिम सीढ़ीपर पहुंच जाता है, तब उसकी सौन्दर्य्यानुभूतिकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़कर पहले शिल्प-कला ही को कार्य-क्षेत्रमें अग्रसर करती है। किन्तु ऐश्वर्य्य तथा सभ्यताकी आकांक्षाकी परितृप्ति होनेसे साहित्य-सुन्दरता, सभ्यता और शिल्प—कला हतश्री होने लगजाती हैं। ठीक, यही हालत हमारे भारतवर्षकी भी है। इसने पहले तो सब विषयोंमें अपनी असीम उन्नति की, किन्तु पीछे सन्तुष्टिके शिखरपर चढ़कर अपनेको परमुखापेक्षी तथा सर्वप्रशंसनीय विषयोंका अपात्र बनादिया। किन्तु हम-सबोंको इस भारत वसुधामाताके चरणकमलोंमें अपने तन, मन, धन समर्पित करने चाहिये कि, जिन्होंने अपने गर्भसे शिल्पकलाके आदर्शभूत नक्काशीदार पत्थरके टुकड़े, शिलालेख और प्राचीन मन्दिर तथा चैत्यालय आदि प्राचीन प्रमाण आविर्भूत कर सब विद्वानोंके परिचायक प्रतिभापट्टपर भारतीय प्राचीन सभ्यता, और भारतीय प्राचीन शिल्पकलाकी उत्तमताका परिचय भली भांति करा दिया। यहांपर मुझे वङ्गीय साहित्यके एक अप्रतिम लेखक श्री मधुसूदन गोस्वामीजीका एक बंगला पद्य याद आगया। वह यह है:—

ओरे बाछा ! मातृ-कोषे रतनेर राजी।
ए भिखारी दशा तबे केन तोर आजि॥

भावार्थ—

अरे वत्स ! मुझ मातृकोषमें रत्नोंका है ढेर पड़ा।
तो फिर क्यों तू भिक्षुक बनकर और दीन हो आज खड़ा॥

पाठको ! यह कैसी उक्ति है ? सचमुच यदि हम सब रत्नगर्भा वसुन्धरा माताकी इस पुत्र-वात्सल्ययुक्त तथा करुणामयी उक्तिकी ओर ज़रा दृष्टि-पात करें तो आज फिर भारतीय साहित्य, विज्ञान और शिल्पकलाकी वही प्राचीन छटा दिखा सकते हैं, फिर भी भारतवर्षका वही स्वर्णयुग उपस्थित हो सकता है, और सब किसीके अकर्म्मण्य, परमुखापेक्षिता और विद्या-व्यसन-विमुखता सदाके लिये दूर भाग सकती हैं। किन्तु फिर भी यदि हम लोग कानमें तेल डालकर नींद के खर्राटे तथा आलस्य आहकेनके पिनक मारते रहे गें, तबै तो असभ्यादि आक्षेपोंके लक्ष्य बने ही हैं। इसमें नयी बात क्या है ?

शिल्पकला-का अवतरण

पृथ्वीपर मानव जातिके निवास होनेका जबसे प्रारम्भ हुआ, तबसे इस बातकी ज़रूरत हुई कि, मानवीय आरोग्यरक्षण तथा सम्वर्द्धनके लिये कोई आश्रय चाहिये। यह बात प्रायः अन्यान्य इतिहासों और पुराणोंमें लिखी हुई है कि, पहले मनुष्य, वृक्षोंके नीचे तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें आश्रय बनाकर रहते थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बौद्ध, जैन, वेदानुयायी और अन्यान्य धार्म्मिक मतोंमें इस कथनकी पुष्टि पाई जाती है कि, शिल्पकलाके पूर्ण उद्धार होनेके पहले मानवजातिका निवास वृक्षोंके तले और गिरि-कन्दराओंमें रहताथा, इस लिये उपर्युक्त कथनके माननेमें कोई सन्देह नहीं मालूम पड़ता।

मनुष्य-जातिके प्रथम उद्धारक **अन्तिम मनु नाभिराजा** के पुत्र **महाराज आदिनाथ** चतुर्थकालमें हुए। इन्होंने ही साधारण जीवन व्यतीत करनेकी प्रणाली बदल डाली। क्रमशः समाजकी नियम-बद्धरचना हुई, कायदे और कानूनका प्रसार हुआ तथा अनेक प्रकारके औद्योगिक कार्य प्रचलित हुए। इन्हीं महाराज आदिनाथके सार्वभौमत्वमें नूतन सुसंस्कृत पद्धतिसे आनन्दमय जीवन व्यतीत करनेके लिये शिल्पकलाका उदय हुआ। ऐश्वर्य्यानुसार लोग उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट श्रेणीके गृहमन्दिरादि निर्मित कर उनमें रहने लगे। सृष्टि-निर्मित नाना पदार्थों तथा प्राणियों के गृहों और मन्दिरोंपर चित्र खुदवा कर लोग उनसे अपना मनोविनोद करने लगे।

इसी प्रकार शिल्प-कलाकी दिन दिन उन्नति होने लगी। उस समय शिल्पियोंने शिल्प-सृष्टि—सौन्दर्य्यकी बड़ी प्रख्याति की।

शिल्पकलाके प्रसारका दूसरा कारण यह था कि, भारतवासी जनोंमें बहुत प्राचीन कालसे मूर्त्ति-पूजा प्रचलित थी। बहुधा सम्पूर्ण आर्य्य (जिनमें जिनमतानुयायी, वेदानुयायी और बुद्धानुयायी आदि सभी समाविष्ट हैं) पुरातन कालसे मूर्ति-पूजक हैं। भारतवर्षकी मूर्तियाँ कैसी भाव-भरी तथा सुन्दर होती हैं, इसका अनुभव वे ही अनुभवी विद्वान् कर सकते हैं, जिन्होंने अच्छे अच्छे शिल्पियोंके हाथकी बनी सर्व-सुन्दर आदर्शभूत मूर्तियां देखी होगीं।

शिल्पकलाके प्रथम प्रसारके विषयमें इतिहास-लेखकोंकी भिन्न भिन्न राय है। किन्तु भारतीय शिल्पसृष्टिको सर्व-प्राचीन मानना ही उचित है। अफशोस है कि, **महाराज-चन्द्रगुप्त** तथा **अशोक**के पहलेके शिलालेख, मूर्त्तियाँ और नक्काशीदार टुकड़े वगैरह प्रायः मिलते ही नहीं। किन्तु इनलोगोंके समयके शिल्पकला-समलङ्कृत पदार्थोंको देखकर यह मानना पड़ता है कि, उस कालमें शिल्पकला बड़ी समुन्नतावस्थामें थी। क्योंकि उस समयके एक राज-प्रासादका वर्णन यों आया है कि:-" प्रमोद वाटिकाके बीचमें राज-प्रासाद बना हुआ है। इसमें लकड़ीका काम प्रायः बहुत है। कोठेके खंभोंमें सोनेके पत्तर तथा तारोंसे कई चित्र तथा नक्काशी खुदी हुई है। सोनेके बनी हुई अंगूरकी लताएं उनमें परिवेष्टित हैं। लताओंपर चांदीकी चीड़ियाएं अंगूर खानेके लोभसे आबैठी हैं। प्रासादके चारों तरफ अनेकप्रकारकी मछलियोंसे प्रोच्छलित संगमर्मर सोपानमय कई सरोवर हैं। इनमें सुवर्णके कृत्रिम हंस भी हवाके सहारे इधरसे उधर तैर रहे हैं, दरवाजेके ऊपर दोनों तरफ दो सुवर्ण तथा रजत-निर्मित सिंह बैठे हुए हैं। और प्रासादके अन्तःकक्ष तो ऐश्वर्य्य तथा विलासिताकी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लीलाभूमि ही थी"। इत्यादि अनेक प्रकारके वर्णनोंसे हठात् यह बात माननी पड़ती है कि यह भारतवर्ष ही किसी समयमें धनाढ्यता, सभ्यता, शिल्पकलानिपुणता, सौन्दर्य्य-प्रियता और विलासिताका प्रधान स्थान तथा उत्पादक था। तभी हमारी न्यायप्रिय गवर्नमेन्टका भी यह भारतवर्ष सदा कृपा-पात्र बनरहा है। भारतीय शिल्पकलाका प्राचीन आदर्श क्या है? भारतवर्ष ही क्यों शिल्पकलाका जनक है? इन सब बातोंका सप्रमाण विवेचन मैं अपने पाठकोंकी सेवामें निवेदित करता हूं। (क्रमशः)

शास्त्र-महत्त्व.

सुख सौजन्य शान्ति सौभाग्योंकी जड़ शास्त्र कहाता है।
धृति धर्म्माधिकता धन्याढ्यताका भी मूल कहाता है॥ १॥
महिमा इसकी महा-महिम-विद्वानोंने जो गाई है।
ऋषि मुनियोंने भी इसके बल मर्यादा जो पाई है॥ २॥
शेष शारदाकी जिह्वा करसकती इसका नहीं कथन।
भारतवासी उऋण न होंगे चाहे करें वे कोटि नमन॥ ३॥
हाय! शोक है इसी बातका कि सब भूलें अपनी बान।
सच्चे उन्नत्तिपथसे पीठ दिखाके झूठी करते शान॥ ४॥
जैन धर्म्मका मर्म्म जैनशास्त्रोंके तत्त्वोंको सुविचार।
जुलियस आदि विदेशी विज्ञोंका है इसपर प्रेम अपार॥ ५॥
आज सभी सत्कला यहींसे प्रचरित है सब देशोंमें।
विविध-विषय-भूषित ग्रन्थोंकी धाक अभी सब देशोंमें॥ ६॥
किन्तु अभी सब लोगोंने तो नहीं किया है ध्यान इधर।
तभी गँवाकर सम्पत् अपनी ठोकर खातें जिधर तिधर॥ ७॥
जिसने स्याद्वाद-सागरमें गोता खूब लगाया है।
विविध-पुराण-विपिनमें अविरत मनो-मयूर नचाया है॥ ८॥
ताम्रपत्र प्रस्तर लेखोंसे नव्य प्राक्त्व बिलगया है।
"जीव दया है परम धर्म्म" यह तथ्य तत्त्व अपनाया है॥ ९॥
है मेरा अनुरोध उन्हींसे वे ही करें धर्म्म उद्धार।
जीर्ण शीर्ण जिनसद्ग्रन्थोंकी भी रक्षाका करें प्रचार॥

पण्डित हरनाथ द्विवेदी.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

परिशिष्ट शिलालेख.

श्रीः ॥ जयत्यजेयमाहात्म्यं विशासितकुशासनम् ।
शासनं जैनमुद्भासि मुक्तिलक्ष्म्यैकशासनम् ॥ १ ॥
अपरिमितसुखमनल्पावगममयं प्रबलबलहृतातङ्कम् ।
निखिलावलोकविभवं प्रसरतु हृदये परं ज्योतिः ॥ २ ॥
उद्दीप्ताखिलरत्नमुध्दृतजडं नानानयान्तर्गृहम् ।
स स्यात्कारसुधाभिलिप्तिजनिभृत्कारुण्य कूपोच्छ्रितम् ॥
आरोप्यश्रुतमानपात्रममृतद्वीपं नयन्तः पराम् ।
एते तीर्थकृतो मदीयहृदये मध्येभवाब्ध्यासताम् ॥ ३ ॥
तत्राभवाद्भिभुवनप्रभुरिद्धवृद्धिः । श्रीवर्द्धमानमुनिरन्तिमतीर्थनाथः ॥
यद्देहदीप्तिरपि सन्निहिताखिलानाम् । पूर्वोत्तराश्रितभवां विशदीचकार ॥ ४ ॥
तस्याभवच्चरमचिज्जगदीश्वरस्य । यो यौवराज्यपदसंश्रयतः प्रभूतिः ॥
श्रीगौतमो गणपतिर्भगवान्वरिष्ठः । श्रेष्ठैरनुष्टितनुतिर्मुनिभिस्स जीयात् ॥ ५ ॥
तदन्वये शुद्धिमति प्रतीते समग्रशीलामलरत्नजाले ।
अभूद्यतीन्द्रो भुवि भद्रबाहुः पयः पयोधाविव पूर्णचन्द्रः ॥ ६ ॥
भद्रबाहुरग्रिमस्समग्रबुद्धिसम्पदा ।
शुद्धसिद्धशासनं सुशब्दबन्धसुन्दरम् ॥
इद्धवृत्तसिद्धिरत्र बद्धकर्म्मभित्तपो ।
वृद्धिवार्द्धिता प्रकीर्तिरुद्धधीर्महार्द्धिकः ॥ ७ ॥
यो भद्रबाहुः श्रुतकेवलीनां मुनीश्वराणामिह पश्चिमोऽपि ।
अपश्चिमोऽभूद्विदुषां विनेता सर्वश्रुतार्थप्रतिपादनेन ॥ ८ ॥
यदीयशिष्योऽजनि चन्द्रगुप्तः समग्रशीलानतदेववृद्धः ।
विवेश यत्तीव्रतपःप्रभावप्रभूतकीर्तिर्भुवनान्तराणि ॥ ९ ॥
तदीयवंशाकरतः प्रसिद्धादभूददेषा पतिरत्नमाला ।
बभौ यदन्तर्मणिवान्मुनीन्द्रस्सकुंदकुंदोदितचण्डदण्डः ॥ १० ॥
अभूदुमास्वाति मुनिः पवित्रे वंशे तदीये सकलार्थवेदी ।
सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं शास्त्रार्थजातं मुनिपुंगवेन ॥ ११ ॥
स प्राणिसंरक्षणसावधानो बभार योगी किल गृध्रपक्षान् ।
तदाप्रभृत्येव बुधा यमाहुराचार्य्य शब्दोत्तरगृध्रपिच्छम् ॥ १२ ॥
तस्मादभूद्योगिकुलप्रदीपो बलाकपिच्छः स तपोमहार्द्धिः ।
यदङ्गसंस्पर्शनमात्रतोऽपि वायुर्विषादीनमृतीचकार ॥ १३ ॥
समन्तभद्रोऽजनिभद्रमूर्तिस्ततः प्रणेता जिनशासनस्य ।
यदीयवाग्वज्रकठोरपातश्चूर्णीचकार प्रतिवादिशैलान् ॥ १४ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रीपूज्यपादोद्धृतधर्म्मराज्यस्ततो सुराधीश्वरपूज्यपादः ।
यदीयवैदुष्य गुणानिदानीं वदन्ति शास्त्राणि तदुद्धृतानि ॥ १५ ॥
धृतविश्वबुद्धिर्यमत्रयोगिभिः कृतकृत्यभावमनुबिभ्रदुच्चकैः ।
जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत्स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधुवार्णितः ॥ १६ ॥
श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौषधार्द्धर्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः ।
यत्पादधौतजलसंस्प ?)र्शप्रभावात्कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥१७॥
ततः परं शास्त्रविदां मुनीनामग्रेसरो भूदकलङ्कसूरिः ।
मिथ्यान्धकारास्थगिताखिलार्थाः प्रकाशिता यस्य वचोमयूखैः ॥ १८ ॥
तस्मिन्गते स्वर्गभुवं महर्षौ दिवः पतिं नर्तुमिवप्रकृष्टां ।
तदन्वयोद्भूतमुनीश्वराणां बभूवुरित्थं भुवि संघ-भेदाः ॥ १९ ॥
स योगिसंघश्चतुरः प्रभेदानासाद्य भूयानविरुद्धवृत्तान् ।
बभावयं श्रीभगवान् जिनेन्द्रश्चतुर्मुखानीव मिथस्समानि ॥ २० ॥
देव-नन्दि-सिंह-सेन संघभेदवर्तिनां देशभेदतः प्रबोधभाजिदेवयोगिनाम् ।
वृत्ततः समस्ततो विरुद्धधर्म्मसेविनां मध्यतः प्रसिद्ध एष नन्दिसंघ इत्यभूत् ॥२१॥
नन्दिसंघे स देशीयगणे गच्छेच्छपुस्तके ।
इङ्गुलेशबलिर्जीयान्मंगलीकृतभूतलः ॥ २२ ॥
तत्र सर्व्वशरीरिरक्षाकृतमतिर्विजितेन्द्रियः ।
सिद्धशासनवर्द्धनप्रतिलब्धकीर्तिकलापकः ॥ २३ ॥
विश्रुतश्रुतकीर्तिभट्टारकयतिस्समजायते ।
प्रस्फुरद्वचनामृतांशुविनाशिताखिलहृत्तमाः ॥ २४ ॥
कृत्वा विनेयान्कृतकृत्यवृत्तीन् निधाय तेषु श्रुतभारमुच्चैः ।
स्वदेहभारं च भुविप्रशान्तः समाधिभेदेन दिवं स भेजे ॥ २५ ॥

× × × × ×

गते गगनवाससि त्रिदिवमत्र यस्योच्छ्रिता न वृत्तगुणसंहतिर्वसति केवलं तद्यशः ।
अमन्दमदमन्मथप्रणमदुग्रचापोच्चलत्प्रतापहतिकृत्तपश्चरणभेदलब्धं भुवि ॥ २६ ॥
श्रीचारुकीर्तिमुनिरप्रतिमप्रभावस्तस्मादभून्निजयशोधवलीकृताशः ।
यस्याभवत्तपासि निष्ठुरतोपशान्तिश्चित्ते गुणे च गुरुता कृशता शरीरे ॥२७॥
यस्तपोवल्लिभि र्वेल्लिताद्यद्रुमो वर्त्तयामास सारत्रयं भूतले ।
युक्तिशास्त्रादिकं च प्रकृष्टाश्शयशब्दविद्याम्बुधेर्वृद्धिकृच्चंद्रमाः ॥ २८ ॥
यस्य (?) योगिसिंहपादयोस्सर्वदा सङ्गिनीमिन्दिरां पश्यतश्शार्ङ्गिणः ।
चिन्तयेवाभवत्कृष्णतावर्ष्मणः सान्यथानीलतो किं भवेत्तत्तनोः ॥ २९ ॥
एषां शरीराश्रयतोऽपि वातो रुजः प्रशान्ति विततान तेषाम् ।
बल्लालराजोत्थितरोगशान्तिरासीत्किलैतात्किमु भेषजेन ॥ ३० ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मुनिर्म्मनीषाबलतो विचारितं समाधिभेदं समवाप्य सत्तमः ।
विहाय देहं विविधापदां पदं विवेश दिव्यं वपुरिद्धवैभवम् ॥ ३१ ॥
अस्तमायाति तस्मिन्कृतिर्नेर्णयं विनाभविष्यत्तदा पण्डितयतिः । (?)
सोमवस्तुमिथ्यातमस्तोमपिहितं सर्व्वमुत्तमैरित्ययं वक्तृभिरुपाधोषि ३२
विबुध जनपालकं कुबुधमतहारकम् ।
विजितसकलेंद्रियं भजत तमलं बुधाः ॥ ३३ ॥
धवलसरोवरनगरजिनास्पदमसदृशमाकृतदुरुत्तपोमहः ॥
यत्पादद्वयमेव भूपतिततिश्चक्रे शिरोभूषणम् ।
यद्वाक्यामृतमेव कोविदकुलं पीत्वा जिजीवानिशम् ॥
यत्कीर्त्या विमलं बभूव भुवनं रत्नाकरेणावृतम् ।
यद्विद्या विशदीचकार भुवने शास्त्रार्थजातं महत् ॥ ३४ ॥
कृत्वा तपस्तीव्रमनल्पमेधास्संपाद्यपुण्यान्यनुपप्लुतानि ।
तेषां फलस्यानुभवाय दत्तचेता इवायं त्रिविधं सयोगी ॥ ३५ ॥
तस्मिञ्जाते भूम्नि सिद्धान्तयोगी प्रौद्यद्वाचा वर्द्धयन् सिद्धशास्त्रम् ।
शुद्धे व्योम्नि द्वादशात्माकरौर्धैर्यद्रत्पद्मव्यूहमुन्निद्रयन्स्वैः ॥ ३६ ॥
दुर्वाद्युक्तं शास्त्र–जातं विवेकी वाचानेकान्तार्थसंभूतया यः ।
इंद्रोऽशन्या मेघजालोत्थया भू–वृद्धीं भूभृत्संहतिं वा बिभेद ॥ ३७ ॥
यद्रत्पदाम्बुजनतावनिपालमौलिरत्नांशवोऽनिशममुं विदधुस्सरागम् । (?)
तद्वस्त्रवस्तु न वधुर्न च वस्त्रजातं नो यौवनं नच बलं नच भाग्यमिद्धम ॥३८॥
प्रविश्य शास्त्राम्बुधिमेक धीरो जगाद पूर्णं सकलार्थरत्नम् ।
पारं समर्थास्तदनुप्रवेशादेकैकमेवात्र न सर्वमापुः ॥ ३९ ॥
सम्पाद्य शिष्यान्स मुनिः प्रसिद्धानध्यापयामास कुशाग्रबुद्धीन् ।
जगत्पवित्रीकरणाय धर्म्मप्रवर्तनायाखिलसंविदे च ॥ ४० ॥
कृत्वा भक्तिं ते गुरोः सर्वशास्त्रं नीत्वा वत्सं कामधेनुः पयो वा ।
स्वीकृत्योच्चैस्तत्पिबन्तोऽतिपुष्टाः शक्तिं स्वेषां ख्यापयामासुरिद्धम् ॥ ४१ ॥
तदीय शिष्येषु विदाम्वरेषु गुणैरनेकैःश्रुतमुन्यभिख्यः ।
रराज शैलेषु समुन्नतेषु सरत्नकूटैरिव मन्दराद्रिः ॥ ४२ ॥
कुलेन शीलेन गुणेन मत्या शास्त्रेण रूपेण च योग्य एषः ।
विचार्य तं सूरिपदंस नीत्वा कृतक्रियं स्वं गणयाञ्चकार ॥ ४३ ॥
अथैकदा चिंतयदित्यनेनाः (?) स्थितिं समालोक्य निजायुषोल्पाम् ।
समर्प्य चास्मिन्स्वगणे समर्थे तपश्चरिष्यामि समाधियोग्यम् ॥ ४४ ॥
विचार्य चैवं हृदये गणाग्रणीर्निवेदयामास विनेयबान्धवः ।
मुनिस्समाहूय गणाग्रवर्त्तिनं स्वपुत्रमित्थं श्रुतवृत्तशालिनम् ॥ ४५ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मदन्वयादेषसमागतोऽयं गणो गुणानां पदमस्य रक्षा ।
त्वयाङ्गमद्वत्क्रियतामितीष्टं समर्प्पयामास गणी गणं स्वम् ॥ ४६ ॥
गुरुविरहसमुद्यदुःखदूनं तदीयं मुखमगुरुवचोभिस्सुप्रसन्नं चकार ।
सपदिविमलिताब्द (ब्ज) श्लिष्टपांसुप्रतानं किमधिवसतियोषिन्मन्दफूत्कारवातैः ॥४७॥
कृततितिहितवृत्तस्सत्त्व गुप्तिप्रवृत्तो जितकुमतिविशेषश्शोषिताशेषदोषः ।
जितरतिपतिसत्व-तत्त्व विद्या-प्रभूत्वः सुकृतिफलविधेयं सोऽगमद्दिव्यभूयम् ॥४८॥
गतेऽत्र तत्सूरिपदाश्रयोऽयं मुनीश्वरो संघमवर्द्धयत्तराम् ।
गुणैश्चशास्त्रैश्चरितैरनिन्दितैः प्रचिन्तयंस्तद्गुरुपादपंकजम् ॥ ४९ ॥
प्रकृत्यकृत्यं कृतसंघरक्षो विहाय चाकृत्यमनल्पबुद्धिः ।
प्रवर्द्धयन्धर्ममनिन्दितं तद्गुरूपदेशान् सफलीचकार ॥ ५० ॥
अखण्डयदयं मुनिर्विमलवाग्भिरत्यद्भुतान् ।
अमन्दमदसंचरत्कुमतवादिकोलाहलम् ॥
भ्रमन्नमरभूमिभृद्भ्रमितवारिधिप्रोच्चलत् ।
तरङ्गततिविभ्रमग्रहणचातुरीभिर्भुवि ॥ ५१ ॥
कां त्वं कामिनि ! कथ्यतां श्रुतमुनेः कीर्तिः किमागम्यते ।
ब्रह्मन्मत्प्रियसन्निभो मुनिबुधः संमृग्यते सर्व्वतः ॥
नेंद्रः किं स च गोत्रभिद्धनपतिः किं नास्त्यसौ किन्नरः ।
शेषः कुत्र गतः स च द्विरशनो रुद्रः पशूनां पतिः ॥ ५२ ॥
वाग्देवताहृदयरंजन मंडनानि मन्दारपुष्पमकरन्दरसोपमानि ।
आनंदिताखिलजगन्त्यमृतं वमन्ति कर्णेषु यस्य वचनानि कवीश्वराणां ॥ ५३ ॥
समन्तभद्रोप्यसमन्तभद्रः श्रीपूज्यपादोऽपि न पूज्यपादः ।
मयूरपिच्छोप्यमयूरपिच्छः चित्रं विरुद्धोऽपि विरुद्ध एषः ॥ ५४ ॥
एवं जिनेन्द्रोदितधर्ममुच्चैः प्रवर्द्धयन्तं मुनिवंशदीपिनम् ।
अदृश्यवृत्त्या कलिना प्रयुक्तो वधाय रागः तमवाप दूतवत् ॥ ५५ ॥
यथा खलः प्राप्य महानुभावं तमेव पश्चात्कवलीकरोति ।
तथा शनैः सोऽयमनुप्रविश्य वपुर्वबाधे प्रतिबद्धवीर्यः ॥ ५६ ॥
अङ्गान्यभूवन्सकृशानि यस्य न च व्रतान्यद्भुत-वृत्तभाजः ।
प्रकम्यमापद्वपुरिद्धरोगान्न चित्तमावश्यकमित्यपूर्वम् ॥ ५७ ॥
स मोक्षमार्गे रुचिमेष धीरो मुदञ्च धर्मे हृदये प्रशान्तिम् ।
समाददे तद्विपरीतकारिन्यस्मिन्प्रसर्प्पत्यधिदेहमुच्चैः ॥ ५८ ॥
अंगेषु तस्मिन्प्रविजृम्भमाने निश्चित्य योगी तदसाध्यरूपताम् ।
ततः समागत्य निजाग्रजस्य प्रणम्य पादाववदत्कृताञ्जलिः ॥ ५९ ॥
देव पण्डितेंद्र योगिराज धर्म्म-वत्सल त्वत्पदप्रसादतः समस्तमर्जितं मया ।
सद्यशः श्रुतं व्रतं तपश्च पुण्यमक्षयं किं ममात्र वर्त्तितक्रियस्य कल्पकांक्षिणः ।६०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

देहतो विनात्र कष्टमस्ति किं जगत्त्रये तस्य रोगपीडितस्य वाच्यता न शब्दतः ।
ध्येय एव योगतो वपुर्विसर्ज्जनक्रमः साधुवर्ग सर्वकृत्यवेदिनां विदांवरः ॥ ६१ ॥
विज्ञाप्य कार्यं मुनिरित्थमर्य्यं मुहुर्मुहुर्वारयतो गणेशात् ।
स्वीकृत्य सल्लेखनमात्मनीनं समाहितो भावयति स्म भाव्यम् ॥ ६२ ॥
उद्यद्विपत्तिमितिमिङ्गिलनक्रचक्र-प्रोत्तुंगमृत्युमृतिभीमतरङ्गभाजी । (?)
तीव्राजवं जवपयोनिधिमध्यभागे क्षिप्नात्यहार्निशमयं पतितस्स जन्तुः।६३।
इदं खलु यदङ्गकं गगनवाससां केवलम्
न हेयमसुखास्पदं निखिलदेहभाजामपि ।
अतोऽस्य मुनयः परं विगमनाय बद्धाशया
यतन्त इह संततं कठिनकायतापादिभिः ॥ ६४ ॥
अयं विषयसंचयो विषमशेषदोषास्पदम् ।
स्पृशज्जनिजुषामहो बहुभवेषु सम्मोहकृत् ॥
अतः खलु विवेकिनः तमपहाय सर्वंसहाः ।
विशन्ति पदमक्षयं विविधकर्म्महान्युत्थितम् ॥ ६५ ॥
उद्दीप्तदुःखशिखिसंगतिमङ्गयष्टिं तीव्राजवं जवतयातपतापताप्ताम् ।
स्रक्चन्दनादिविषयामिव तैलसिक्तम् कोवाऽवलंब्य भुवि संचरीति प्रबुद्धः ॥६६॥
स्रष्टुः स्त्रीणामेनसा सृष्टितः किं गात्रस्याधोभूमिसृष्ट्या च किं स्यात् ।
पुत्रादीनां शत्रुकार्य्यं किमर्थं सृष्टेरित्थं व्यर्थता धातुरासीत् ॥ ६७ ॥
इदं हि बाल्यं बहुदुःखबीजं इदं वयःश्री घनरागदाहा ।
सवृद्धिभावोऽप्यमर्षास्रशाला (?) दृश्येयमङ्गस्य विपत्फला हि ॥ ६८ ॥
लब्धं मया प्राक्तनजन्मपुण्यात्सुजन्मसद्रात्रमपूर्वबुद्धिः ।
सदाश्रयः श्रीजिनधर्म्मसेवा ततो विना मा च परः कृती कः ॥ ६९ ॥
इत्थं विभाव्य सकलं भुवनस्वरूपम्
योगी विनश्वरमिति प्रशमं दधानः ।
अर्द्धावमीलितदृगस्खलितान्तरङ्गः
पश्यन्स्वरूपमिति सो विहितः समाधौ ॥ ७० ॥
हृदयकमलमध्ये सौधमादाय रूपं प्रसरदमृतकल्पैर्मूलमन्त्रैः प्रसिञ्चन् ।
मुनिपरिषदुदीर्णा(?) स्तोत्रघोषैस्सहैव श्रुतिमुनिरयमङ्गं स्वं विहाय प्रशान्तः ७१
अगमदमृतकल्पं कल्पमल्पीकृतैना विगलितपरिमोहस्तत्र भोगाङ्गकेषु ।
विनमदमरकान्तानन्दबाष्पाम्बुधारापतनहृतरजोन्तर्धामसोपानरम्यम् ॥ ७२ ॥
यतौ याते तस्मिञ्जगदजनि शून्यं जनिभृतम्
मनो मोहध्वान्तं वत बलमपूर्य्यप्रतिहरं । (?)
व्यदीप्यद्यच्छोको नयनजलमुष्णं विरचयन्
वियोगः किं कूर्यादिह न महतां दुस्सहतरः ॥ ७३ ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पादा यस्य मुहामुनेरपि न कैर्भूभृच्छिरोभिर्द्धृता
वृत्तं सन्नविदाम्बरस्य हृदयं जग्राह कस्यामलम् ।
सोऽयं श्रीमुनिभानुमान्विधिवशादस्तं प्रयातो महान् ।
यूयं तद्विधिमेव हन्त तपसा हन्तुं यतध्वं बुधाः ॥ ७४ ॥

यत्र प्रयान्ति परलोकमनिन्द्यवृत्ता
स्थानस्य तस्य परिपूजनमेव तेषाम् ।
इज्या भवेदिति कृताकृतपुण्यराशेः
स्थेयादियं श्रुतमुनेस्सुचिरं निषद्या ॥ ७५ ॥

इषुशरशिखिविधुमितशकपरिधाविशारदतिद्वियगाषाढे ।
सितनवमिबुधदिनोदयजुषि स वैशाखे प्रतिष्ठितमिह ॥ ७६ ॥
विलीनसकलक्रियां विगतरोधमत्युर्जितम्
विलंघिततमस्तुलाविरहितं विमुक्ताशयम् ।
अवाङ्मनसगोचरं विजितलोकशक्त्यग्रिमम्
मदीयहृदयेऽनिशं वसतु धाम दिव्यं महत् ॥ ७७ ॥

प्रबन्धध्वनिसम्बन्धा सद्रागोपादनक्षमा ।
मङ्गराजकवेर्वाणी वाणी वीणायतेतराम् ॥ ॥ ७८

परिशिष्ट शिलालेखका भावानुवाद.

शिलालेख नं. १०८

१. कुशासनका विध्वंस करनेवाला मुक्तिलक्ष्मीका एक शासन और अजेय है माहात्म्य जिसका ऐसा समुज्ज्वल जैनशासन जयशाली होवे ।

२. सब सुखोंका मूल और सब प्रकारके आतंकों (मनोवेदनाओं) को दूर करनेवाली प्रकाशमय ज्योति हमारे हृदयमें फैले ।

३. रत्नत्रयके प्रकाश करनेवाले, मूर्खता हटानेवाले, विविधनयके विवेचक और स्याद्वाद सुधासे वितृप्त ये तीर्थंकर हमारे हृदयमें विराजमान होवें ।

४. त्रिभुवनमें विख्यात अन्तिम तीर्थनाथ श्री वर्धमानस्वामी हुए । इनकी देहकी कान्तिने सभी सृष्टिको प्रकाशित कर दिया ।

५. इनके रहते रहते मुनियोंसे वंदित श्रेष्ठ संघाधिपति श्रीमान् गौतम मुनि हुए ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

६–८. इन्हीके समुज्ज्वल वंशमें समुद्रसे चन्द्रमाके ऐसे यतिराज श्री **भद्रबाहु** स्वामी हुए । इनकी कीर्ति तथा सिद्धशासन भूमंडलमें व्याप्त थे । यद्यपि **भद्रबाहु** स्वामी श्रुतकेवली, मुनीश्वरोंके अन्तमें हुए तौभी ये सभी पंडितोंके नायक तथा श्रुत्यर्थ प्रतिपादन करनेसे सभी विद्वानोंके पूर्ववर्ती थे ।

९–१०. इन्हीके शिष्य शीलवान् श्रीमान् **चन्द्रगुप्त** मुनि हुए । इनकी तीव्र तपस्या उससमय भूमंडलमें व्याप्त हो रही थी । इन्हीके वंशमें बहुतसे यतिवर हुए । जिनमें मुनीद्र **कुं**दकुंदस्वामी, प्रखर तपस्या करनेवाले हुए ।

११–१३. तत्पश्चात् सभी अर्थको जाननेवाले **उ**मास्वाति नामक मुनि इस पवित्र आम्नायमें हुए । जिन्होंनें श्री**जि**नेंद्रप्रणीत शास्त्रको सूत्र रूपमें रूपांतर किया । सभी प्राणियोंके संरक्षणमें तत्पर योगी **उ**मास्वाति मुनिने गृध्रपक्षका धारण किया । तभीसे विद्वद्गण उन्हें गृध्रपिंच्छाचार्य कहने लगे । इन योगी महाराजकी परंपरामें प्रदीप-रूप महर्द्धिशाली तपस्वी **ब**लाकपिच्छ हुए । इनके शरीरके संसर्गसें विषमयी हवा भी उस समय अमृत (निर्विष) हो जाती थी ।

१४. इसकेबाद जिनशासनके प्रणेता भद्रमूर्ति श्रीमान् **स**मन्तभद्र स्वामी हुए । इनके वाग्वज्रके कठोर पातने वादिरूपी पर्वतोंको चूर्ण चूर्ण कर दिया ।

१५–१७. इनकी परंपरामें श्रीधर्मराज **पू**ज्यपाद स्वामी हुए, जिनके बनाये हुए शास्त्रोंमें जैनधर्मका बहुतही महत्त्व मालूम होता है । इन्होंने निरंतर कृतकृत्य होकर संसारहितैषिणी बुद्धीको धारण किया । अनंगके ताप हरनेवाले साक्षात् **जिन**भगवान्के ऐसे विदित होनेसे लोगोंने इनका नाम ' जिनेंद्र ' रक्खा । औषधशास्त्रमें परम प्रवीण, विदेह **जि**नेंद्र दर्शनसे पवित्र होनेवाले श्रीमान् **पू**ज्यपाद मुनि जयशाली रहें । इनके चरणकमलके धौत जलके संसर्गसे कृष्णलोह भी सुवर्ण हो जाता था ।

१८–१९. इनके बाद शास्त्रवेत्ता मुनिओंमें अग्रेसर **अ**कलंकसूरि हुए । इन्हींके वाङ्मय रूपी किरणोंसे मिथ्यांधकारसे आच्छादित अर्थ संसारमें प्रकाशित हुआ । इनके स्वर्ग जानेपर इनकी परंपराके मुनिसंघोमें कई भेद (फूट) हुआ

२०. इनके बाद श्रीमान् योगी जिनेंद्र भगवान् अविरुद्धवृत्तिवाले चार संघोंको पाकर परस्पर समान चार मुखके ऐसे उन्हें समझकर शोभने लगे ।

२१. क्रमशः **दे**व, **नं**दि, **सिं**ह और **से**न ये चार संघ निर्मित हुए । जिनमें **नं**दिसंघ बड़ा प्रसिद्ध था ।

२२. **नं**दिसंघमें देशीय गण, पुस्तक गच्छके स्वामी इंगुलेश्वर, जिन्होंने सारी भूतलको मंगलमय कर दिया है—वह विजयशाली होवें ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

२३–२५. उसी नंदिसंघमें संपूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले, इंद्रिय निग्रही स्याद्वादमतके प्रचार करनेसे कीर्तिकलापको पानेवाले, प्रसिद्ध यतिवर श्रुतकीर्ति भट्टारक हुए। जिनकी प्रभामयी वचनामृतकिरणोंसे सारा अज्ञानांधकार विनष्ट हो गया। विनयी सज्जनोंको कृतकृत्य बनाकर तथा उनपर श्रुतशास्त्रका भार समर्पित कर और पृथ्वीपर अपनी देहका भार रखकर समाधीपूर्वक शान्त होकर उन्होंने स्वर्गधामको अलंकृत किया।

२६. महात्मा दिगम्बरके स्वर्ग चले जानेपर इस भूतलपर उनकी कीर्ति स्थिर-रूपसे रहगयी।

२७. इनके शिष्य अप्रतिम प्रतापशाली **श्रीचारुकीर्ति** मुनि हुए। इन्होंने अपने सुयशसे दिशाओंको भी समुज्ज्वल कर दिया। इनकी तपस्यामें निष्ठुरता, चित्तमें शान्ति, गुणमें गुरुता तथा शरीरमें कृशताकी मात्रा दिन दिन बढ़ने लगी।

२८. जिनके तपरूपीवल्लीसे वलयित होकर वृक्षरूपी संसारमें रत्न-त्रयका प्रचार होने लगा। इनकी युक्ति, शास्त्रादि तथा प्रकृष्टाशय विद्याम्बुधिके बढानेके लिये चन्द्रमाके तुल्य थे।

२९. जिस योगिसिंह महत्माके चरणकमलोंकी सदा सेवा करनेवाली लक्ष्मीको देखकर (अहो मुझे यह कैसे मिले) ईर्षासे विष्णुका सारा शरीर काला हो गया। नहीं तो उनके काले होनेकी दूसरी वजह नहीं थी।

३०. जिनके शरीरके सम्पर्कमात्र ही से वा सब किसीके रोगोंको शान्ति हो जाती थी। लोग कहा करते थे कि बल्लालराजकी कृपासे रोग छुटा है, दवासे क्या?

३१. मुनिने समाधिपूर्वक अनेक आपद्का स्थान इस विनश्वर शरीरको छोड़कर दिव्य शरीरको पाया।

३२. इनके स्वर्ग चले जानेपर ऐसा कोई विद्वान् नहीं हुआ। उस समय यह संसार अज्ञानांधकारसे आवृत था। ऐसा उत्तम वक्ताओंने कहा।

३३. इसलिए कुमतान्धकारके विनाशक, अपनी सभी इन्द्रियोंको जीतनेवाले, और विद्वद्गणोंके रक्षक उन महात्माको हे विद्वद्वर्य्य! भजो।

३४. जिनके चरणकमलको राजाओंने शिरोभूषण बनाया, जिनके वचनामृत पानकर पण्डितगण अहर्निश जीते थे, जिनकी कीर्तिरूपी समुद्रसे परिवेष्टित होकर यह पृथ्वीतल धवलित हुआ और जिनकी विद्याने भूतलमें शास्त्रोंको विशद बनादिया।

३५. वे महात्मा योगिराज एक चित्त होकर बड़ी कठीन तपस्याको करके तथा बहुत पुण्य इकट्ठा करके उन्ही पुण्योंको उपभोग करनेके लिये स्वर्गको चले गये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

३६. उनके स्वर्ग चले जानेपर अपनी शास्त्रमयी वाणीसे सिद्धशास्त्रोंको श्रृङ्खलित करते हुए, शुद्धाकाशमें वर्तमान, शास्त्ररूपी पद्मोंको विकशित करते हुए सूर्य्यकेसे सिद्धान्त योगीने सज्जनोंके मनको प्रफुल्लित किया।

३७. इन्द्रका वज्र जिस प्रकार पर्वतोंका भेदन करता है उसी प्रकार इन्होंने एकान्त अर्थसे युक्त दुर्वादियोंकी उक्तिको खण्ड खण्ड कर दिया।

३८ उनके चरणोंपर गिरे हुए राजाओंकी मुकुट-मणिकी धूलिओंने जिस तरहसे इनको रागवान् बनाया था, उसतरह सांसारिक वस्तु, स्त्री, वस्त्र तथा यौवनादि उनको रागी नहीं करसके।

३९. ये महात्मा शास्त्ररूपी समुद्रमें प्रविष्ट हो कर अनेक अर्थरूप रत्न निकाल लाये और उन रत्नोंको अपने शिष्योंको वितरित करदिया।

४० इन्होंने संसारको पवित्र करनेके लिये तथा धर्म्मका प्रचार होनेके लिये अपने शिष्योंको कुशाग्रबुद्धि बनाकर पढ़ाया।

४१. जिस प्रकार बछड़ा गायसे दूध ग्रहण करता है उसी प्रकार गुरुमें असीम भक्ति कर उन सबोंने उनसे सब शास्त्रोंका ग्रहण कर संसारमें अपनी खूब कीर्ति फैलायी।

४२. जिस प्रकार समुन्नत पर्वतोंमें रत्नकूटोंसे मन्दराचल पर्वत शोभता है, उसी प्रकार उनके सकल शास्त्रवेत्ता शिष्योंमें अनेक गुणोंद्वारा श्रुतमुनि शोभाको प्राप्त हुए।

४३. कुल, शील, गुण, मति, शास्त्र और रूप इनसबोंसे इन्हें योग्य समझकर सूरि पद दिया।

४४. इसके बाद सांसारिक स्थितिको सोचते हुए इन्होंने अपनी आयु थोड़ी जान कर यह बिचारा कि अगर मेरा गण समर्थ हो जावे तो मैं समाधियोग्य तपस्या करूंगा।

४५. मनमें ऐसा सोचकर श्रुत-वृत्तशाली अपने गणाग्रवर्त्ती पुत्रको बुलाकर कहा कि:—

४६. हमारी वंश-परंपरासे ये **गण** चले आते हैं, इसलिये तुम भी इनकी रक्षा करो, ऐसा कहकर गणीने अपने गणको उनके सपूर्द किया।

४६. असह्य विरहजन्य दुःखसे ये बहुत दुःखी हुए किन्तु इनके गुरु कोमल वचनोंसे इनको प्रसन्न किया।

४७. अच्छे अच्छे सुकृत कार्यको करनेवाले, कुमति तथा दोषको समूल नष्ट करनेवाले और कामदेवकी तत्त्वविद्याको जीतनेवाले वे दिव्य स्वर्गधामको गये।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४८–४९. उनके स्वर्गधाम चले जाने पर सूरिपदको धारण करनेवाले ये अपने संघकी शनैश्शनैः वृद्धि करने लगे । किन्तु गुणोंको शास्त्रोंको तथा उनके अनिन्द्य चरित्रोंको बार बार स्मरण कर सदा अपने गुरुके चरणकमलकी ही चिन्ता करते थे ।

५०. कृत्यको करके, अपने संघकी रक्षा करके तथा अपने अनिंदित धर्म्मसे उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए इन्होंने अपने गुरुके उपदेशको सफल किया ।

५१. इन्हीं मुनिने अपनी विमल वाक्धारासे उद्धत वादियोंको शमन करते हुए संसारमें अपने धर्म्मका प्रचार किया ।

५२. हे कामिनि ! तू कौन है ? क्या **श्रुतमुनि**की कीर्ति तू इधर आ रही है ? क्या इन्द्र है, नहीं यह तो गोत्रभिद् हैं । कुवेर तो नहीं है ? किन्तु यह किन्नर नहीं मालूम पड़ता है । ब्रह्मन् ! मैं अपने ऐसे किसी विद्वान् मुनिको चारों तरफ खोज रहाहूं ।

५३. सरस्वती देवीके हृदयको रंजन करनेवाली, मन्दार तथा मकरन्दके रसके सदृश और सभी संसारको आनन्दित करनेवाली कवीश्वरोंकी सुमधुर वाणी सबके कानोंमें अमृतधाराको भरती है ।

५४. **समन्तभद्र** होते हुए भी असमन्तभद्र, श्रीपूज्यपाद होते हुए भी अपूज्यपाद और मयूरपिच्छ धारण करते हुए भी मयूरपिच्छको नहीं धारण करनेवाले हुए । आश्चर्य्य है कि इनमें विरुद्ध अविरुद्ध दोनों वृत्तियां थीं ।

५५. इस प्रकार जिनेंद्रसे कहे गये धर्म्मकी बड़ी वृद्धि हुई किन्तु पीछेसे गुप्त रीतिसे कलिकालसे प्रयुक्त जो रोग (पञ्चम कालका प्रभाव) है वह धर्म्ममें बाधा पहुंचाने लगा ।

५६. जैसे दुष्ट सज्जनकों अपनी सेवासे मुग्धकर पीछे सर्व ग्रास करनेको तयार हो जाते हैं उसी प्रकार पञ्चम कालका प्रभाव मुनियोंके प्रभावको रोककर उनके धर्म्म-कार्य्यमें बाधा पहुंचाने लगा ।

५७–५८. जिनके अङ्गोंके खिन्न होनेपर व्रतादिक नियम ज्योंके त्यों दृढ़ बने रहे। उस महात्माने मोक्षमें रुचि, धर्म्ममें हर्ष और हृदयमें शान्तिको अवधारित किया ।

५९. अनन्तर महात्माने अपने शरीरमें रोगको बढ़ते हुए देखकर और उसको असाध्य समझकर अपने ज्येष्ठ भ्राताके निकट आकर प्रणाम करके कहा ।

६०–६१. हे पण्डित-प्रवर योगिराज ! आपकी कृपासे मैंने सभी दोषोंको प्रक्षालित किया, यशको विस्तृत किया और बहुतसे व्रतोंको किया, परन्तु रोगग्रस्त शरीर रहने की अपेक्षा अब इस भूतलमें नहीं रहना ही अच्छा है ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

६२ मुनिने संघको भी ऐसी सूचना देकर संघके बार बार रोकने परभी अन्तिम क्रिया सल्लेखनको सम्पादित कर अन्तिम समाधि लगाई ।

६३. भयङ्कर विपत्तिरूप ग्राहादि जीवोंसे तथा मृत्युरूपी लहरोंयुक्त व्यग्रतारूपी समुद्रके बीचमें गिरकर यह जीव रात दिन क्लेशको पा रहा है ।

६४. दिगम्बर जैन तथा सभी देह–धारियोंके लिये यह दुःख-मय शरीर त्याज्य ही समझना चाहिये । इसीसे मुनि–गण पुनर्जीवन रोकनेके लिये काय-कष्टकर अनेक तपस्याएं करते हैं ।

६५. यह विषय-सञ्चय भीषण दोषका स्थान समझना चाहिये । इस लिये सहिष्णु विवेकी सांसारिक विषयको छोड़कर विविध कर्मको नष्टकरनेके लिये अक्षय पदको प्राप्त होते हैं ।

६६. बड़े उद्दीप्त दुःखाग्निसे तप्त, अनेक रोगोंसे युक्त और माला चन्दन आदि विषम पदार्थोंसे संवलित इस शरीरके धारण करनेसे संसारमें क्या लाभ है ?

६७. पापमयी स्त्रीकी सृष्टिसे क्या ? शरीरके नीचे पृथ्वीकी सृष्टि करनेसे क्या प्रयोजन ? और पुत्रादिकोंमें शत्रुता क्यों रख छोड़ी गयी ? इसलिये मैं समझता हूं कि ब्रह्माकी सृष्टि व्यर्थ ही है ।

६८. पहले बाल्यावस्था ही दुःखका बीज है, तत्पश्चात् युवावस्थाको भी रोगका अड्डाही समझना चाहिये और वृद्धावस्थाको भी ऐसा ही विषमय समझकर यह मानना पड़ता है कि इस शरीरकी दशा ही विपत्ति–परिणामको दिखलानेवाली है ।

६९. प्राक्तन जन्मके पुण्यसे मैंने सुन्दर शरीर, सुन्दर मनुष्यजन्म तथा अच्छी बुद्धि पाई हैं, इसलिये मुझे सज्जनोंकी संगति, श्री जिनधर्म्मकी सेवा करनी चाहिये । क्योंकि इनके बिना आदमी कृती नहीं हो सकता ।

७०. सारे संसारका स्वरूप जानकर, योगिराट्—सभी संसार विनश्वर हैं, ऐसा कह कर शान्तिको धारण करते हुए आधी आँखें मीचकर स्वरूपको देखते हुए समाधिको प्राप्त हुए ।

७१. अपने हृदय-कमलमें स्वच्छ रूपको धारणकर तथा अमृतसदृश उन मूल मन्त्रोंसे सींचते हुए **श्रुतिमुनि**ने स्तोत्र-पाठके साथ साथ शान्तितापूर्वक अपने शरीरको छोड़ा ।

७२. जिनके उत्पन्न होनेपर अज्ञानान्धकारावृत यह संसार ज्ञानवान् होकर हर्ष-युक्त हुआ, सो आज उन्हींके स्वर्ग जानेपर लोग उष्ण उच्छ्वास लेलेकर आँखोंसे शोकाश्रुधारा बहा रहे हैं । ठीक है, बड़ोंका वियोग दुस्सह होता ही है ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

७४. इन महा मुनिके चरण-कमल प्रायः सभी राजाओंने शिरोधृत किये तथा इनकी सच्चरित्रिता भी अपने हृदयमें सभी ऋषिवर्य्योंने गृहीत की। वही महात्मा आज भाग्य-वश परलोकको चलबसे, इस लिये आप लोग भी उन्हींकेसे सद्धर्म्मकार्य्य पालन करनेके लिये अविरत कोशिश करें।

७५. जिन महात्माओंके चरित्र अनिन्द्य हैं, वे जिस स्थानसे परलोकको जाते हैं उस स्थानकी भी पूजा करनी उन्हीकी पूजा करनी है, इसलिये जिनधर्म्म–प्रचारक श्रुतमुनिका यह स्थान (निषद्या) सदा बना रहे।

७६. शक १३६५ वैशाख शुक्ल नवमी बुधवारको इन्होंने स्वर्गका प्रस्थान किया।

७७. सभी क्रियाको शान्त करनेवाला, अज्ञानान्धकारको हटानेवाला, सभी आशयसे रहित और अवाङ्मनसगोचर संसारमें सभी शक्तिको जीतनेवाला जो कोई दिव्य तेज है वह मेरे हृदयमें सदा रहे।

७८. इस प्रबन्धकी ध्वनिसे सम्बन्ध रखनेवाली, तथा सच्चे प्रेमको उत्पन्न करनेवाली मङ्गराजकी वाणी वीणाकीसी होवे।

सम्पादकीय टिप्पणी.

इतिहासकी आवश्यकता.

हमारी शिक्षा तथा इतिहासप्रिय गवर्नमेन्ट तो ऐतिहासिक वस्तुसम्भार इकट्ठा करनेके लिये प्रयत्नवती थी ही, किन्तु बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब भारत-वासी भी अपने अपने समाजकी सभ्यता, शिक्षाप्रियता, सुजनता और शूरता आदि प्रशंसनीय सद्गुणोंकी ख्याति प्रकटित करनेके लिये थोड़ी थोड़ी इतिहासकी उपयोगिता समझने लगे हैं।

सामाजिक देहके जीवनवृतान्तका नाम इतिहास है। जिस तरह मनुष्यके शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि होनेपर उसके मातापिता उसकी देहका सारा वृतान्त समझकर दवा करानेके लिये प्रवृत्त होते हैं, उसी तरह समाज–चिकित्सक अथवा सुधारक भी समाजका इतिहास ही समझकर संस्कार-कार्य्यमें अग्रसर होते हैं। मैं क्या था? अब क्या हूं?? समयने क्यों ऐसा पल्टा खाया??? इत्यादि ऐतिहासिक विवेचन करनेसे भविष्यमें क्या होगा? यह निरूपण करना सहज हो जाता है। समाजको

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

किस राहसे जाना उचित है ? सामाजिक आदर्श कैसा होना चाहिये ?—प्राचीन इतिहास ही इन प्रश्नोंका सदुत्तर दे सकता है। अर्थात् ऐतिहासिक आलोचनाद्वारा अतीत समाजकी परिणाम—नियामक—नीति भली भाँति ज्ञात हो जाती है। इसी प्रकार भविष्यत् दृष्टिके फलसे समाजको किस आदर्शमें परिणत करना चाहिये—इसकी मीमांसा करनी ज़रा सरल हो जाती है। अनुमानतः बीस शताब्दिमें जब भारतवासीके प्राण अनेक अभिनव आदर्शके आकर्षणसे उन्मत्त हो उठे और जबकि समाज भी जड़ता छोड़कर हाथ पैर फैलाकर कालस्रोतसे पार होनेकी इच्छा कर रहा है तब फिर ऐसे समयमें इतिहासका सहारा न लेकर निर्विघ्न अग्रसर होनेमें बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती है। एक बात यह भी है कि इतिहासकी सहायता मिलनेमें अभी बड़ी भारी अड़चन है। क्योंकि किसी समाजका आनुक्रमिक इतिहास मिलता ही नहीं। किन्तु आनुक्रमिक इतिहास भले ही न मिले, इतिहास-सामग्री मिलने में कुछ कठिनता नहीं होती। क्यों कि गवर्नमेन्टने एसिआइटिक-सुसाइटी और आर्कियोलाजिकल सर्वे डिपार्टमेन्ट आदि ऐतिहासिक संग्रहालय जहाँ तहाँ प्रधान प्रधान नगरों में खोलकर इस अभावको एकदम दूर करदिया है। यदि गाँव गाँव और नगर नगरमें उपर्युक्त संग्रहालयोंकी शाखा—प्रशाखा खुलजाय तो सम्भव है कि सर्वसाधारण जन भी इतिहास-स्नेही बनकर सच्चे दिलसे ऐतिहासिक कार्य्य करनेवाले लोगोंकी हँसी नहीं उड़ाकर बल्कि सहायक बन जायगें। हमारे जैन समाजमें ऐसे बहुत कम आदमी हैं जिन्हें कुछ इतिहाससे प्रेम हो, किन्तु जो विरलप्राय हैं उन्हीं वितरणशूरों तथा जैन-वंशविभूषणोंसे मेरी प्रार्थना है कि जहाँ आप लोगोंके करकमलोंसे अगणित धर्म्म-कार्य्यकी सद्गति होती है वहाँ इस दीन जैनसमाजके इतिहासका कुछ सुधार हो जाय तो यह जैनसमाज आप सबोंका चिरकृतज्ञ बना रहेगा।

* * * *

जैनदर्शनपर अजैनोंकी मीमांसा.

हर्षका विषय है कि बङ्गीय विद्वद्गणोंकी भी दृष्टि जैनियोंके सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक विषयोंकी ओर आकृष्ट होने लगी है। विगत वर्षके एकादश भाग तथा द्वितीय खण्डवाले **प्रवासी**की पाँचवी संख्यामें **जैन-दर्शनेर जीवतत्त्वेर एकांश** इस शीर्षकका एक लेख निकल चुका है। इस लेखके पाण्डित्य-पूर्ण तथा सार गर्भित होनेमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि इसको श्रीयुत विधुशेखर भट्टाचार्य्य शास्त्रीजीने लिखा है। यह लेख शास्त्री-जीके चित्रके साथ साथ प्रकाशित किया गया है। आपने वृक्षादिककी सचित्तता तथा अ-चित्तताका विचार बड़ी सूक्ष्म दर्शितासे करके अन्तमें महाभारतके कुछ श्लोक उद्धृतकर लिखा है कि वृक्षोंके छेदनकी निवृत्तिका प्रायः ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन इन तीनोंने ही उपदेश दिया.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। शास्त्रीजीका जैन शास्त्रपर बहुत दिनोंसे प्रेम है। कई वर्ष हुए जब आप काशीमें थे तो "मित्रगोष्ठी" नामकी एक संस्कृत मासिकपत्रिका निकाला करते थे। उसके सम्पादक शास्त्रीजी तथा श्री पण्डित रामावतार शर्म्मा एम. ए. साहित्याचार्य्य काव्यतीर्थ थे। उसके कई अङ्कोंमें "जैनधर्म्मस्य संक्षिप्तमिति वृत्तम्" इस शीर्षकका लेख आपने लिखा था। जैन इतिहासके अन्तमें आपने अपनी सम्मति लिखी थी कि, "वैदिकधर्म्म ही सब धर्म्मोंका मूल है" किन्तु इस बातको सर्वमान्य कर देना कठिन है। धर्म्मकी सर्वश्रेष्ठताका यही लक्षण है कि जिसको सब कोई अपना समझे। इतना मैं अवश्य कहूंगा कि शास्त्रीजी यदि निष्पक्ष दृष्टिसे विचार करेगें तो आज नहीं तो कल्ह उनको यह निर्विवाद स्वीकार करना पड़ेगा कि यह जैन ही धर्म्म आदि धर्म्म तथा सार्वधर्म्म था, अथवा होनेकी योग्यता रखता है। शास्त्रीजी लाहोरकी शास्त्रिपरीक्षा पास और काव्यतीर्थके सिवा आप दर्शनशास्त्रके अच्छे ज्ञाता हैं। क्योंकि उस समय मित्रगोष्ठीमें **अनेकान्तवादः, मीमांसादर्शने ईश्वरवादः अद्वैतश्रुतेर्मीमांसकव्याख्या** आदि बड़े महत्त्व-पूर्ण दार्शनिक लेख लिखा करते थे। शास्त्रीजीके संस्कृत गद्यपद्य दोनों उच्च श्रेणीके होते हैं। बड़ी खुशीकी बात है कि इधर अब आप अपने गाम्भीर्य्यपरिपूर्ण लेखोंसे अपनी मातृभाषा (बंगभाषा) को भी विभूषित करने लगे हैं। वर्षोंसे आप अजस्र साहित्य-सेवा कर रहे हैं। छोटी मोटी तो आपने कई संस्कृतकी किताबें लिखी हैं किन्तु हालमें आपने पालीव्याकरण नामक एक ग्रन्थ लिखकर अपने पाली साहित्यानुशीलनका अच्छा परिचय दिया है। जैन धर्म्मपर अभीतक आपके जितने लेख निकल चुके हैं उनसे मालूम होता है कि आपने अभीतक विशेषकर श्वेताम्बरीय जैनग्रन्थ देखा है। शास्त्रजीसे मेरा अनुरोध है कि आप दिगम्बरीय जैनदर्शन (परीक्षामुख, प्रमेयकमल-मार्तण्ड, अष्टसहस्री, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिक आदि) ग्रन्थ अवश्य पढ़ें। सम्भव है कि इन ग्रन्थोंको पढ़कर आप और बहुत कुछ जैन दार्शनिक तत्त्व जान सकेगें।

* * * *

जैन इतिहास और जैनसमाज.

हमारी तो यह अभ्रान्त धारणा है कि, जबतक जैनियोंके इतिहासका संस्कार नहीं हो गा। तबतक जैनियोंपर जो अजैनोंकी आक्षेप-वृष्टि होती चली आती है, उसकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायगी। सम्मेद शिखरपर अपने अपने आधिपत्यकी उद्घोषणा करनेके लिये आजकल श्वेताम्बर तथा दिगम्बर जैन आपसमें लड़ रहे हैं। दोनों समाज इतिहास-द्वारा अपनी अपनी प्राचीनता दिखानेके लिये बड़ी बड़ी खोजें कर रहे हैं। आज दो महीने हुए तीर्थक्षेत्र कमिटीकी ओरसे श्रीयुत मौजीलालजी तथा श्रीमान्

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पण्डित झम्मनलालजी सम्मेद शिखर-सम्बन्धी दिगम्बरीय प्राचीन इतिहासकी खोजके लिये "श्री जैनसिद्धान्तभवन" आरा (The Central Jaiu Oriental Library Arrah) को गये थे। वहाँ उन्हें बहुतसी ऐतिहासिक बातोंका पता लगा है। किन्तु मैं अब भी तीर्थ-क्षेत्र कमिटीके अध्यक्षोंको सूचना दिये देता हूं कि, आपको भवनके द्वारा जो ऐतिहासिक सामग्री मिलेगी वह दूसरी जगह कदापि नहीं मिल सकती। 'भवन' आपके इस कार्य्यको करनेके लिये तयार है। दूसरी ऐसी कोई संस्था नहीं है, जहाँ आपको सुलभतया प्राचीन सम्मिलित दैगम्बर इतिहाससामग्री मिल जाय। किन्तु रुकावट इसी बातकी है कि, इस नवजात तथा एकाधार 'भवन' के पास इतने द्रव्य और कार्य्यकर्त्ता नहीं हैं, कि यह सब लोगोंको बिना पूछे ही घर बैठे बरसों जहाँ तहांसे सामग्री मंगवा और ढूंढ़वा कर पहुंचादे। सहायता मिलनेपर यह 'भवन' चाहे जितनी ऐतिहासिक सामग्रीकी आवश्यकता होगी उसकी अवश्य पूर्ति करेगा। मैं समझता हूं कि, तीर्थ-क्षेत्र कमिटी मेरे इस कथनपर अवश्य ध्यान देगी। इतना तो मैं साभिमान कह सकता हूं कि, आज तक भवनने अलभ्य ऐतिहासिक संग्रह किया है। अब इसमें काम करनेवालों तथा द्रव्य देनेवालोंकी बड़ी आवश्यकता है। क्यों कि, बहुत प्राचीन ताड़पत्राङ्कित ग्रन्थ भवनमें लगभग तीन हजार हैं। इनमें ऐसे ऐतिहासिक रत्न भरे पड़े हैं, कि यदि इनकी प्रतिलिपि नागराक्षरमें हो जाय तो, आज फिर वे रत्न दिगम्बर जैन इतिहासको समुज्ज्वलित कर देगें। कर्नाटक-प्रान्तमें कई नागराक्षरके लेखक तयार हो चले। यदि कुछ दाता छः छः महीनेके लिये भी कर्नाटकी लिपिसे नागरी लिपिमें लिखनेवाले दश लेखक दे दें तो, भवन उनकी चिरकृतज्ञताके साथ उनकी सत्कीर्तिका प्रसार तथा जैन इतिहासका उद्धार सदा करता रहे गा। क्यों कि, किसी एक संस्थाका भार बड़ा भारी भार समझना चाहिये। जिस संस्थासे जैन इतिहासके कई मुख्य मुख्य अङ्गोंकी पुष्टि होनेवाली है, उस संस्थामें द्रव्यकी कैसी आवश्यकता है? यह बात किसीको अविदित नहीं है। इस भवनके मुक्तहस्तसे पृष्ठ-पोषक अथवा यों कहिये कि विपन्न-जैन इतिहासके आश्रय-कल्पतरु स्वर्गीय बाबू देवकुमार जी ही थे। आज भी जैनइतिहासकी जो कुछ सेवा यह 'भवन' कर रहा है, वह उन्हींकी पवित्रात्माके प्रभावसे। यह बात तो ठीक ही है कि, कोई विषय-निर्वाचन सर्व-सम्मत नहीं हो सकता। क्यों कि, कोई इतिहासका उद्धार करता है तो कोई तीर्थ की ही अतिशयतासे मुग्ध होकर उसकी रक्षा करने लाग जाता है। कितने लोग प्रान्तिक और माण्डलिक सभासमितियोंसे

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ही धर्म्म तथा समाजकी उन्नति समझकर रात दिन उनके पीछे पड़े रहते हैं, तो इस-पर मुझे एक कविकी उक्ति याद आती है कि:—

मधु मधुरं दधि मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधापि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम् ॥

किन्तु इतना तो सर्व संस्थाओंके स्तम्भीभूत लीडरोंको अवश्य विचारना चाहिये कि, कौनसी संस्था कौनसा काम कर रही है? और इसमें किस बातकी आवश्यकता है?

* * * * *

भवनके दो सच्चे गुणज्ञ पाठक.

आराके जैनी तो **भवन**से कुछ लाभ उठाना जानते ही नहीं। इसकी दूसरी वजह कुछ नहीं, केवल अविद्या तथा दुर्व्यसनताकी ही अधिकता समझनी चाहिये। बड़े अफशोसकी बात है कि जिस प्रख्यात आरा नगरीमें देशदेशान्तरके जैनी आकर अनेक अतिशय-शाली मन्दिर तथा "श्री जैनसिद्धान्तभवन" का दर्शन कर अपनेको कृत-कृत्य मानते हैं सो वहाँहीके जैनी भाई भवनकी ओर कभी भूलकर भी नहीं देखते! किन्तु आज मैं भवनके दो सच्चे गुणग्राही पाठक अजैन विद्वानोंकी गुण-लोलुपता प्रकटित किये देता हूँ। एकतो श्रीयुत बाबू परेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय एम्. ए. हैं। आप स्थानीय कोर्टके सबजज्ज हैं। आप ही "**बंगलार पुरावृत्त**"के लेखक हैं। यह तीन सौ पृष्ठकी पुस्तक बड़ी ही गवेषणा-पूर्ण तथा सार गर्भित है। क्योंकि कुछ दिन हुए **प्रवासीमें** इसकी बड़ी अच्छी समालोचना निकली थी। आप ओंकारवादी हैं। ॐसे ही आप सारी भाषा तथा सारे अक्षरोंकी उत्पत्ति बड़ी विद्वत्ता तथा युक्तिसे सिद्ध करते हैं। आपने एक बड़ा ही पाण्डित्य—पूर्ण भाषाओंका इतिहास लिखा है। आपने उसे भास्करमें छपानेके लिये कहा है। आप बराबर भवनमें आया करते हैं और अंग्रेजी तथा संस्कृतकी ऐतिहासिक पुस्तकें भवनसे लेले कर पढ़ा करते हैं। बल्कि इन किरणोंमें आपका एक "शाकांसम्बत्" शीर्षकका लेख प्रकाशित हुआ है। आप इतिहासके बड़े प्रेमी हैं।

दूसरे श्रीयुत बाबू मंगलचरणजी वकील हैं। आप स्थानीय वकीलोंमें सर्वश्रेष्ठ वकील तथा **आरानागरी—प्रचारिणी सभा**के सभापति हैं। अन्यान्य दर्शनशास्त्रके ज्ञाता होते हुए भी वेदान्त दर्शनपर तो आपका पूर्ण आधिपत्य है। प्रायः बौद्धमतके आपने बहुतसे ग्रन्थ पढ़े हैं। आप न्यायशास्त्रके अन्तिम ग्रन्थ **कुसुमाञ्जलि** तथा **खण्डनखाद्य**को बड़ी आसानीसे लगाते हैं। आप भी जबसे **भवन** स्थापित हुआ तबसे हमेशः भवनमें आते हैं। आपने मूल **समयसार नाटक** तथा **पद्म-**

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुराणको अच्छी तरहसे पढ़ा है। पद्मपुराणके बारेमें तो आपने कहा था कि, इसकी रचना-प्रणाली वाल्मिकीय रामायणसे एकदम मिलती जुलती है, इसलिए यह पुराण भी बहुत प्राचीन है। उपर्युक्त दोनों विद्वानोंकी भवनसे बड़ी सहानुभूति रहती है; इसलिए यह **भवन** आप लोगोंका चिरकृतज्ञ है।

* * * *

महाराज चन्द्रगुप्त और शिक्षासम्पादक.

विगतवर्षकी "शिक्षा" के किसी अङ्कमें इसके सम्पादक महोदयने 'भास्कर' की गत प्रथम किरणमें प्रकाशित महाराज चन्द्रगुप्तके शिलालेखको उद्धृत कर अपना मन्तव्य जनाया था कि इस शिलालेखमें कहीं **चन्द्रगुप्त**का नाम नहीं है, इसलिए चन्द्रगुप्त जैन नहीं हो सकते। मैंने आपके सन्देह निराकरणार्थ इन्हीं किरणोंके द्वितीय पृष्ठमें सप्रमाण **गहाराज चन्द्रगुप्तका इतिहास** शीर्षक एक लेख लिखा है। मैं समझताहूं कि **शिक्षा-सम्पादक** महोदय उसे पढ़कर अपना चन्द्रगुप्त—विषयक सन्देह निवृत्त करेगें। मुझे यह बात विश्वस्तरूपसे ज्ञात हुई है कि आप व्याकरण, साहित्य तथा दर्शनशास्त्रके प्राञ्जल विद्वान् होते हुए भी बहुत वर्षोंसे आरामें **आरानागरी-प्रचारिणी सभा** स्थापित कर हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। विहारके हिन्दी लेखकोंमें आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। आप **शिक्षाको** हिन्दीसाहित्यके बड़े ही उपयोगी लेखोंसे विभूषित किया करते हैं। हमे आश्चर्य्य तो इस बातका है कि आजकलके संस्कृत पण्डित पौराणिक राम-कृष्णकी कथाके सिवा हिन्दूस्तानके इतिहासका नाम भी नहीं जानते तो ऐसी अवस्थामें चन्द्रगुप्तके बारेमें कुछ सन्देह करना ही मैं पण्डितजीकी कृपा समझताहूं। मैं पण्डितजीसे अनुरोध करताहूं आप भास्करके ऐतिहासिक विषयोंपर अवश्य शङ्का प्रशङ्का किया करें। उत्तर देनेमें मुझे जैन इतिहासकी बड़ी प्राचीनता ढूंढ़ निकालनी पड़ती है।

* * * * *

महाभारतका समयनिर्णय

आजकल पुरा तत्त्वान्वेषियोंका ध्यान प्राचीन प्राचीन ऐतिहासिक स्थानोंको खुदवा-कर अनेक विवादग्रस्त समयोंका निर्णय करनेकी ओर विशेष आकृष्ट होरहा है। ताता कम्पनीके दिये हुए द्रव्यसे तथा गवर्न-मेन्टकी पूर्ण सहायतासे आजकल पटना खोदा जारहा है। महा-राज चन्द्रगुप्तके इतिहास निर्णीत करनेहीके लिये यह पटना खोदा जा रहा है। इसके मुख्य अभिभावक संस्कृतज्ञ मि. स्पूनर साहब हैं। आप अंग्रेज होकर भी संस्कृ-तके विद्वानोंसे घंटों संस्कृतहीमें बातचीत करते हैं। सुना जाता है कि हस्तिनापुरमें भी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तुरत्त खोदनेका काम लगनेवाला है। क्योंकि गवर्नमेन्ट बहुत शीघ्र **महाभारत**का समय निर्णीत करना चाहती है । हस्तिनापुर खोदनेकी दूसरी वजह कुछ नहीं, शिर्फ इसी लिये गवर्नमेन्टने इतने लम्बे चौड़े उद्योग करनेके लिये कमर बाँधा है। सब धर्म्मानुयायियोंको शीघ्र सचेत होकर अपने अपने धर्म्मशास्त्र और पुराणोंके साथ वर्तमान निश्चित होनेवाले समयका मिलान करनेके लिये, प्रस्तुत रहना चाहिये । क्योंकि जो समय हम लोगोंने मान रक्खा है, वही ठीक हे—उसमें कुछ फेरफार होही नहीं सकता। ऐसी बिना जड़ फुनुंगीकी अपनी अपनी हठें हठात् छोड़नी होंगी । मेरी विशेष प्रार्थना अपने जैन पण्डितोंसे है कि वे अविश्रान्त पौराणिक–पर्य्यालोचन करें। शायद महाभारतका समय हम लोगोंने श्री १००८ नेमिनाथ बाईसवें तीर्थङ्करके समयमें माना है। अस्तु ! मेरा कहनेका सारांश यह है कि, श्री १००८ महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थङ्करके वर्त्तमान समय २४३९ से लेकर नेमिनाथतीर्थङ्करके समयका कितना अन्तर है–यह निर्णय कर हम सबोंको अपने ऐतिहासिकमार्गको परिष्कृत कर देना चाहिये। आशा है कि जैनी पण्डितोंका ध्यान अवश्य इस ओर आकृष्ट होगा।

* * * * *

मैसोर प्रान्तस्थ शिलालेखोंसे रामायण और महाभारतका सम्बन्ध.

सीताहरणके बाद जो रामचन्द्रजीने लङ्कापर चढ़ाई की थी, सो वह मैसोर ही होकर गये थे। सीताजीकी खबर पक्षिराज जटायुने दी थी। किष्किन्धामें पम्पासरोवरके समीप जो सुग्रीवसे रामचन्द्रजीको मिताई हुई थी, वह किष्किन्धा वर्त्तमान विजयनगरके निकट जो तुङ्गभद्रा नदी है; उसीके नज़दीक है । मैसोर प्रान्तमें इन्हीं रामायणके नायकोंके नामानुसार **रामनाथपुर, लक्ष्मणतीर्थ** आदि अनेक स्थान हैं। उपर्युक्त बातें रामेश्वरपर्वतके निकटवाले मुलुकल मुरुतालुकके शिलालेखमें है।

चिन्तामणि तालुकमें जो कैरव नामक ग्राम है, वही महाभारतका **एकचक्रपुर** कहा जाता है। क्योंकि शेकपुर तालुकमें जो **बेलग्रामी** ताम्रपत्र (Inscription) है, उसीमें यह बात लिखी हुई है कि पाण्डवोकी माता श्रीमती कुन्तीने यहांपर एक मन्दिर बनवाया था। और पञ्च पाण्डवोंने भी **राजसूययज्ञ** करनेके बाद यहाँपर पाँच मन्दिर बनवाये थे। इसके बाद **विराट**की राजधानी **मत्स्यनगरी**में पाण्डवोंने अपने देश निकालेका अन्तिम समय व्यतीत किया था । यह नगरी मैसोरके ठीक उत्तर-पूर्वकोणवर्ती वर्त्तमान धारवाड़ प्रान्तके पानुगल या हानुगलमें है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उपर्युक्त बातें मेरे विचक्षण पाठक निरी गप्प नहीं समझे। अनेक अलभ्य शिला-लेखोंके आविष्कर्त्ता तथा कई इतिहास-ग्रन्थोंके लेखक मि. लुइसराइस (Lowis Riecs) की लिखी "मैसोर और कूर्ग" (Mysore and Coorg) नामकी पुस्तकमें ये सब बातें हैं। यह किताब नयी है। क्योंकि यह १९०९ में लण्डनमें छपी है। उल्लिखित रामायण तथा महाभारत विषयकमीमांसा पाठक मेरी न समझे। ऐतिहासिक विद्वानोंके विचारार्थ मैंने एक विदेशी इतिहासज्ञ विद्वान्की सम्मति प्रकटित की है। यदि ये बातें ऐतिहासिकदृष्टिसे सच्ची निकलेगीं तो हम क्या सभी विद्वद्गणोंको मान्य होगीं।

* * * * *

जैनियोंके व्याकरणका गौरव.

यों तो जैनियोंके **शाकटायनादि** सर्व-प्राचीन व्याकरणकी प्रसिद्धि थी ही, किन्तु अब धीरे २ निष्पक्ष विद्वानोंद्वारा उसकी सर्व-श्रेष्ठता भी प्रकटित की जारही है। कुछ दिन हुए "गौहाटी बङ्गीय साहित्यानुशीलनी सभा" में "कातन्त्र व्याकरण" नामक एक निबन्ध पढ़ा गया था। इसके लेखक श्रीवनमाली चक्रवर्त्ती वेदान्ततीर्थ वेदान्तरत्न एम्. ए. हैं। इस निबन्धके लिखनेमें आपने पाणिनि आदि व्याकरणोंकी बड़ी छानबीन की है। इस लिये यह निबन्ध बड़ाही पाण्डित्यपूर्ण, सारगर्भित तथा उच्च श्रेणीका हुआ है। निबन्धके प्रारम्भमें **कातन्त्र**का अवतरण आपने **कलापचन्द्र** तथा **कथासरित्सागर**की एक आख्यायिकाके आधारपर अवतरित किया है। कलापचन्द्रमें श्रीमत्सुषेणाचार्य्यने लिखा है कि:—

"राजा कश्चिन्महिष्या सह सलिलगतः खेलयन् पाणितोयैः
सिञ्चंस्तां व्याहृतोऽसावतिसलिलतया मोदकं देहि राजन्!
मूर्खत्वात्तन्न बुध्वा स्वरघटितपदं मोदकस्तेन दत्तो
राज्ञी प्राज्ञी ततः सा नृपतिमपि पतिं मूर्खमेनं जगर्ह"॥

अर्थात्—कोई राजा अपनी महिषीके साथ जल-क्रीडा करनेके लिये तालाबको गये थे। तालाबमें पैठकर रानी और राजा दोनों आपसमें पानीके छीटे पडारहे थे। एक बार राजाने बड़े ज़ोर शोरसे छीटे पडाये। रानीने संस्कृतमें कहा कि "मोदकं देहि राजन्!" अर्थात् अब जल मत उछा लिये। मूर्ख राजाने मा+उदकं=मोदकं यह स्वर-सन्धिका रहस्य नहीं जानकर मिठाई मंगा दी। इससे विदुषी रानीको क्रोध होगया और अपने पति राजाकी 'मूर्ख' ऐसा कहकर अवमानना की।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

किम्बदन्ती है कि, इन्हीं शालिवाहन नामक राजाको संस्कृतमें शीघ्र व्युत्पन्न करनेके लिये **सर्ववर्म्माचार्य्यने** कार्त्तिकेयजीकी आराधना कर वरप्रदानके महत्त्वसे ऐसा अपूर्व व्याकरण बनाया।

सुप्रसिद्ध कथासरित्सागरकी आख्यायिकामें लिखा हुआ है कि, प्रतिष्ठान नगराधिपति **सातवाहन** राजाको एक बड़े गुणशाली सर्ववर्म्मा नामक मन्त्री थे। राजा जल-क्रीड़ा प्रसङ्गवश अपनी रानीसे मूर्ख कहे जाकर अवमानित होते हुए खाना पीना छोड़कर बड़े चिन्तित हुए। उनके मन्त्री सर्व्ववर्म्माने राजाको छः महीनेमें संस्कृत के विद्वान् बना देनेका वादा कर उन्हें प्रसन्न किया। और बड़ी कठिन तपस्यासे कार्त्तिकेयजीको प्रसन्न किया। कार्त्तिकेयजीने प्रकटित होकर उन्हें वरप्रदान दिया कि "**सिद्धो वर्ण-समाम्नायः**" यही तुम्हारे रचे अभिनव व्याकरणका प्रथम सूत्र होगा। पीछे सर्ववर्म्माने कार्त्तिकेयजीके वरप्रसादसे यह कातन्त्रनामक एक प्राञ्जल व्याकरण बनाया। इसी प्रकार अवतरण सम्बन्धी अनेक प्रकारके गल्प इसमें उद्धृत किये गये हैं।

कथासरित्सागर कैसा प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ है, यह बात विद्वानोंसे छिपी नहीं है। क्यों कि इस निबन्धके लेखक स्वयं चक्रवर्त्तीजीने भी लिखा है कि, कथा-सरित्सागर एक आख्यायिकाकी पुस्तक है। किन्तु आख्यायिका भी एक वारगी ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें उपेक्षणीय नहीं है। क्योंकि आख्यायिकाकी मूलभित्ति शिर्फ जनश्रुति (चर्चा) है, और जनश्रुति सर्वथा निर्मूल नहीं है। मेरीभी यही राय है कि प्रायः सभी आख्यायिकाएं निर्मूल नहीं होतीं। क्योंकि इस कातन्त्रके सभी बात निर्मूल नहीं है। यह ज़रूर सत्य है कि, इसको सर्ववर्म्माचार्य्यने बनाया है और यह बहुत अपूर्व व्याकरणका ग्रन्थ है। किन्तु शालिवाहनकी जलक्रीड़ाके ज़मानेमें **कुमार**के कृपाकलापसे सर्ववर्म्माचार्य्यने कान्तन्त्रको रचा, यह बात हमे एकदम निर्मूलसी मालूम पड़ती है। और मैं समझता हूं कि, चक्रवर्त्तीजीको यह बात अनैति-हासिकसी जची होगी।

आपने सिद्धान्तकौमुदी, मुग्धबोध तथा कलापादि व्याकरणोंके नियम उद्धृत कर कातन्त्रके नियमनिर्वाचनकी बड़ी प्रशंसा की है। आपकी समझमें कातन्त्रकासा निर्दोष तथा सर्वाङ्गसुन्दर व्याकरण दूसरा है ही नहीं। यों तो आपने इस निबन्धमें पाणिनीय आदि व्याकरणोंके बहुतसे सामासिक तथा अन्यान्य प्राकरणिक नियमोंकी जटिलता और अशुद्धि दिखलाई है, किन्तु मैं पाणिनीय व्याकरणके द्वितीयातत्पुरुष समासका केवल एक नियम दिखाकर चक्रवर्त्तीजीकी व्याकरण-विवेचन-पटुता तथा व्याकरण-रहस्यज्ञता प्रदर्शित करता हूं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पाणिनिने लिखा है—

द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २।१।२४.

अर्थात् श्रितप्रभृति सात शब्दोंके साथ द्वितीयातत्पुरुष समास होता है। किन्तु पाणिनिके परवर्ती वार्त्तिककार कात्यायनने देखा कि, इतनी ही शब्द—सूचीसे द्वितीया तत्पुरुषमें सब शब्दोंका समावेश नहीं होगा। क्योंकि श्रितादिसे भिन्न गमीप्रभृति और कई शब्दोंके साथ द्वितीयातत्पुरुष समास होता है। इसीलिये उन्होंने एक वार्त्तिक बनाया कि:—

"**गमि गाम्यादीनामुपसंख्यानम्**" यहांपर गमी और गामी शब्दका स्पष्ट उल्लेख है। किन्तु कितने शब्द गम्यादिमें परिगण्य हैं, यह निश्चय करना दुरूह है। इसी लिये मुग्धबोधकी टीकामें इसको भी (श्रितादि या अश्रितादि गणको) आकृतिगण माना गया है। नहीं तो "विप्राय वेदविदुषे" (भागवत) सुखेप्सु, द्विषद्वीर्य्य, निराकरिष्णु, हंसमण्डल, द्युतिविष्णु आदि प्रयोग सिद्ध होते ही नहीं। वस्तुतः जिस समय द्वितीयाश्रितातीतपतितादि इस सूत्रकी रचना हुई थी उस समय इतने ही प्रयोग व्यवहृत थे। पीछे भाषा—परिवर्त्तन होनेपर उक्त नये नये शब्दोंकी रचना हुई। इस लिये व्याकरणका सूत्र भी बदल गया। अतः **सर्व-वर्म्माचार्य्य**ने द्वितीयादि तत्पुरुषका पृथक् पृथक् सूत्र नहीं लिखकर एक ही पद्यात्मक सूत्र लिख दिया कि:—

"**विभक्तयो द्वितीयाद्या नाम्ना परपदेन तु।**
समस्यन्ते समासो हि ज्ञेयस्तत्पुरुषस्स च॥"

अर्थात्—द्वितीयादि विभक्तियाँ परवर्त्ती नाम (प्रातिपदिक) के साथ समस्त होती हैं; वही तत्पुरुष समास कहलाता है।

आधुनिक पाणिनीय विद्वद्गण इस विषयमें **सहसुपा** २।१।४ इस सूत्र-द्वारा पाणिनिके उन उन स्थलोंमें अनुक्त विशेष समास करते हैं। ये सुखेप्सु, वेदविद्वान् और प्रियानुरागप्रभृति प्रयोग 'सहसुपेति' सूत्रद्वारा सिद्ध करते हैं।

यहाँपर भाष्यकारने लिखा है कि:—

"**यस्य समासस्य अन्यल्लक्षणं नास्ति इदं तस्य लक्षणं भविष्यति**"

अर्थात् जिस समासका दूसरा लक्षण नहीं है उसका लक्षण यह सहसुपा सूत्र ही होगा। किसी किसी वैयाकरणकी राय है कि वेदं+विद्वान्=वेदविद्वान् यहां द्वितीयातत्पुरुष और प्रियायां+मनुरागः=प्रियानुरागः यहाँ सप्तमीतत्पुरुष समास है। किन्तु उनसे यदि पूछा जाय कि प्राणिनीयके किस सूत्रसे यह समास सिद्ध हुआ है तो उत्तर देनेमें उन्हें

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बड़ी अड़चन होती है। फिर वैयाकरण महोदयको कौमुदीमें चक्कर लगाकर अगत्या कहना पड़ता है कि द्वितीयाश्रितादिसूत्रमें योग विभाग किया गया है। अर्थात् द्वितीया एकसूत्र और श्रितादि एक सूत्र मानकर अवशिष्ट प्रयोगोंकी सिद्धि की जाती है। किन्तु यह ख़ूबी जैनियोंके ही कातन्त्रव्याकरणमें है कि एक ही सूत्रमें तत्पुरुषसमासके सभी प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। इसीप्रकार चक्रवर्तीजीने कातन्त्रकी बड़ी बड़ी ख़ूबियाँ दिखलाई हैं। सर्ववर्म्माचार्य्य केवल वैयाकरण ही नहीं थे। वे जैनसिद्धान्तके अच्छे ज्ञाता थे। क्योंकि "सिद्धो वर्णसमाम्नायः" जो इस व्याकरणका पहला सूत्र है उसमें 'सिद्ध वर्ण' जैनलोग ही मानते हैं। दूसरे वैयाकरण तो ढक्का आदि पदार्थों द्वारा वर्णोंकी उत्पत्ति सिद्ध करते हैं। किन्तु वर्ण स्वतः सिद्ध है, सृष्टि अनादि कालसे चली आती है, ये सब सैद्धान्तिक बात जैनियोंकी ही स्वीकृत है। दूसरे मतावलम्बियोंको नहीं। चक्रवर्तीजीका कथन है कि पाणिनीय व्याकरण इसके बहुत पहलेका है। क्योंकि पाणिनिके समयमें संस्कृतभाषा बोलचालकी भाषा थी। जब यह भाषा मृत हो गयी अर्थात् संस्कृतभाषा जब सिर्फ लौकिकभाषा हुई तब इस व्याकरणका प्रणयन हुआ। मैं भी चक्रवर्तीजीकी इस रायको पसन्द करताहूं। क्योंकि पाणिनीय व्याकरणके पीछे रचेजानेसे ही इस व्याकरणके नियमों (सूत्रों) में इतनी परिष्कृति है तथा इसकी इतनी प्रशंसा होती है। कथा-सरित्सागरकी ऐतिहासिक बातें कितनी निर्मूल हैं इसका उल्लेख मैंने "शाकासम्बत्की उलझन" वाले लेखमें किया है। उसकी पुष्टि इस निबन्धमें चक्रवर्तीजीने भी की है। मैं चक्रवर्तीजीसे अनुरोध करताहूं कि आप जैनियोंके "जैनेन्द्रव्याकरण" तथा "शाकटायनव्याकरण" आदि बडे २ व्याकरणग्रन्थोंका भी पर्य्यालोचन कर ऐसा ही अपना पाण्डित्य–पूर्ण विचार प्रकटित करेंगे। बंगालके नामी २ पण्डितोंने कातन्त्र-व्याकरणके ऊपर कई निबन्ध लिखे हैं। जैसे महामहोपाध्याय श्रीयुत यादवेश्वर तर्क-रत्नजीका "कातन्त्रकलापव्याकरण" स्वनामधन्य महामहोपाध्याय चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारजीका "कातन्त्रछंदःप्रक्रिया" नामक निबन्ध बड़े ही उच्च श्रेणीके हैं। अभीतक इन्हें हमने देखा नहीं है। चक्रवर्तीजीके इस निबन्धकी टिप्पणीमें हमने उल्लिखित दो निबन्धोंका नाम देखा है।

कलकत्तेमें "वंगीय साहित्यपरिषद्" नामक एक बड़ी ओजस्विनी सम्भ्रान्त संस्था है। वहींसे "साहित्यपरिषत्पत्रिका" त्रैमासिकरूपमें निकलती है। इसमें बड़े ही महत्वपूर्ण प्रायः ऐतिहासिक लेख रहते हैं। इसके सभी लेखक लब्ध-प्रतिष्ठ तथा संस्कृत अंग्रेजीके प्राञ्जल विद्वान् हैं। चक्रवर्तीजीके जिस निबन्धपर हमने यह अपनी सम्मति प्रकटित की है, वह सन १३१७ की प्रथम संख्यावाली इसी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पत्रिकामें छपा है। इसके सहकारी सम्पादक गर्वमेन्ट आर्कियोलेजिकल सर्वे विभागके प्रधानाध्यक्ष श्री राखालदास वन्द्योपाध्याय जी हैं। इसीसे आप जान सकते हैं कि यह पत्रिका कैसे महत्त्वकी है। "शकासम्वत्के संस्थापक विक्रमराजा प्रथम शताब्दिमें हुएही नहीं" इसकी पुष्टिके लिये आज तीन वर्ष हुए, बन्द्योपाध्यायजीने इस पत्रिकाकी एक अतिरिक्त संख्या निकालकर कई शिलालेख तथा ताम्रपत्रके साथ लगभग १०० पृष्ठका एक बड़ा ही गवेषणा-पूर्ण निबन्ध लिखा है। भास्करकी आगामी किरणोंमें हम उसे अवश्य प्रकाशित करेंगे.

* * * * *

कर्नाटक देशमें भवनद्वारा नागरीका प्रचार.

मूड़ बिद्रीके भण्डारमें जैनधर्म्मकी बड़ी अलभ्य पुस्तकें हैं। भवनको जब उन पुस्तकोंकी नकल करानेकी आवश्यकता हुई तो, वहाँ नागरी लिपिके लिखनेवाले एक भी लेखक नहीं मिले। वहाँकी लिपि कर्नाटकीय तथा भाषा भी वही है। कर्नाककीय लिपि प्रायः जापानी लिपिकी प्रतिकृतिसी है। वहांके लोग अपनी मातृभाषा तथा लिपिके ऐसे अनन्य भक्त हैं कि, दूसरी भाषा अथवा लिपि उनके पास फटकने नहीं पाती। आजसे दोतीने वर्ष हुए "श्रीजैन सिद्धान्तभवन" के सेक्रेटरी श्रीमान् बाबू करोड़ीचन्दजी तीर्थयात्रा करके उधरके भण्डारोंके उद्धार तथा दर्शन करनेके लिये जब मूड़बिद्रीमें पहुंचे तो. वहाँकी पाठशालाके छात्रोंको पारितोषिकका प्रलोभन देकर नागराक्षर पढ़ने और लिखनेके लिये प्रोत्साहित किया। अब वहाँके विद्यार्थी धड़ाधड़ सुन्दर नागराक्षर लिखरहे हैं। बल्कि टूटी फूटी हिन्दीमें पत्र भी लिख लेते हैं। उन लोगोंकी कई चिट्ठियाँ भवनमें आगयी हैं। वहाँसे सैकडों शास्त्र प्रतिलिखित होकर भवनमें आगये। मैं काशी तथा आराकी नागरी प्रचारिणी सभाओंसे अनुरोध करताहूं कि वे ऐसे ही हिन्दी तथा नागरीका जहाँ नामनिशान नहो वहाँ नागरीका प्रचार कर अपने उद्देशोंको पूरा करें; अन्यथा घर बैठे २ जहाँ तहाँ राजाओंके प्रास शिर्फ मेमोरियल भेजनेसे हिंदी तथा नागरीका प्रचार कभी नहीं होसकता। मैं आशा करताहूं मेरे इस अनुरोधपर नागरी-प्रचारिणी सभाएं अवश्य ध्यान देगीं।

* * * * *

वह दिन कब आयगा.

आजकल जो जाति विद्या-रसिका होकर जिस कामको करनेके लिये कमर बाँधती है, उसे वह बड़ी खूबसूरती और प्रतिष्ठाके साथ झट कर डालती है। विद्याकी मूल भित्ति केवल पुस्तक तथा प्रतिभा समझनी चाहिये। हमारे पूर्वाचार्य्योंने जो अपनी प्रतिभा-प्रधानताकी पराकाष्ठा दिखलाई है वह किसीसे छिपी नहीं है। बाकी रही पुस्तक-सो जैनि-

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

योंकी पुस्तकोंकी याद करनेसे मनस्ताप रोंगटे रोंगके संतप्त किये देता है । यदि अबसे भी जैनी अपनी अवशिष्ट मौलिक सर्वस्व पुस्तकोंकी रक्षा तथा प्रचारका उद्योग करें तो निस्सन्देह हम लोगोंकी भावी धार्म्मिक अथवा सामाजिक अवनतिकी सबल आशङ्का विनष्ट होजाय ।

आजकल यवनजातिने विद्याको अपना लिया है । वह नये नये विद्यालय तथा विश्व-विद्यालय खोलनेके फिक्रमें हमेशः लगी रहती है । जो कलकत्ता नगरी बंगालियोंकी 'आमी' 'तुमी' की ध्वनिसे मुखरित हुई रहती है, वहां भी मुसल्मानोंके कई फारसी और अरबीके मदरसे हैं । उनमें ऊंचेसे ऊंचे दर्जेकी पढाई होती है, अथवा जिस मोहमयी (मुम्बई) पुरीमें शिर्फ ' इकड़े ' ' तिकड़े ' की सुश्राव्य टरें सुन पड़ती हैं, वहां भी Urdu School (उर्दूका मदरसा) का साइन बोर्ड चन्द्रमाकासा चमक रहा है । इसकी वजह यही है कि मुसल्मानोंने अपने साहित्यकी सामग्री सम्पन्न कर विद्या-प्रचारके लिये असावधानता तथा आलस्यको दूर फटकार रक्खा है ।

बांकीपुरमें खुदाबक्स ख़ांजीकी लायब्रेरीकी प्रशंसा हिन्दूस्तानमें कौन कहे, इंगलैण्ड तथा जर्म्मनके बड़े २ नामी विद्वानोंने उसकी रिपोर्टें देखकर मुक्तकण्ठसे की है । सचमुच हस्तलिखित फारसी और अर्बी ग्रन्थोंका संग्रह भारतवर्षमें ऐसा कहीं नहीं है । खुदाबक्सखाँ अपनी लायब्रेरीमें बैठ कर हमेशः यह कहा करते थे कि:—

अगर फिर्दौस बर्रू ऐ ज़मीनस्त ।
हमीनस्त वो हमीनस्त वो हमीनस्त ॥

अर्थात्—कहीं स्वर्ग है जगमें तो फिर ।
यही स्वर्ग है यही स्वर्ग है ॥

मैं श्रीजिनवाणी मातासे प्रार्थना करताहूं कि आप वह समय शीघ्र दिखावें कि जैनग्रन्थसंग्रहस्नेही तथा जैनइतिहासप्रेमी जैनसन्तान **भवन**में बैठकर खुदाबक्स-खांके ऐसा **स्वर्ग** और **भवन**का साम्य-संयोजक पद्य गाया करे ।

* * * *

भारतका अर्णवयान

बाबू राधाकुमुद मुकुर्जी एम्. ए. ने इस नामकी एक अंग्रेजीमें पुस्तक लिखी है । अंग्रेजीमें इसका नाम " Indian shipping " है । इसम कई प्राचीन जहाजोंके काल्पनिक चित्र भी दिये गये हैं । आपने इस पुस्तकमें भारतीय प्राचीन नौ-निर्म्माण शिल्पकी उन्नतिका अच्छा चित्र खींचा है । बड़ी मार्मिक दृष्टिसे आपने इस बातको दिखाया है कि पहले

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भारतवासी वाणिज्यादि व्यापारके लिये बेरोकटोक जहाजोंमें बैठकर विदेशोंमें जाते थे। और इस पुस्तकमें यह बात बड़ी विशदतासे दिखलाई गयी है कि, पहले जमानेमें वर्णविचार केवल चार ही वर्णपर निर्भर नहीं था। हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस वगैरह जन्तु भी वर्णव्यवस्थाके किलेमें घिरे थे। और कहांतक कहा जाय काष्ठ भी चारो वर्णोंमें विभक्त थे। काष्ठका ब्राह्मणक्षत्रियादि विचार करके जहाज बनाई जाती थी। इसके प्रमाणमें आपने इस पुस्तकमें एक श्लोक उद्धृत किया है कि:—

" लघु यत् कोमलं काष्ठं सुघटं ब्रह्म-जाति तत्।
दृढाङ्गं लघु यत् काष्ठमघटं क्षत्र-जाति तत् ॥ "

साहित्य नामक बंगला मासिक पत्रमें श्रीयुत पंचकौड़ी बन्द्योपाध्यायजीने इस पुस्तककी बड़ी प्रशंसाके साथ समालोचना की है। आखीरमें बन्द्योपाध्यायजीने लिखा है कि, परिष्कृत अंग्रेजी भाषामें इस पुस्तकको लिखकर श्रीयुत राधाकुमुदजीने पाश्चात्य विद्वन्मण्डलीमें बड़ी भारी प्रतिष्ठा प्राप्त की है, किन्तु इसे यदि वंगभाषामें आप लिखतें तो, आपकी प्रतिष्ठा हो अथवा न हो, किन्तु आपकी यह पुस्तक बंगाली विद्वानोंके लिये •ज्ञानाञ्जनशलाकाका काम अवश्य देती। यह सचित्र पुस्तक ढाईसौ पृष्ठकी है। इंगलैंडके **लंगमैनसने** इसे छापकर प्रकाशित किया है।

* * * * *

भारतीय प्राचीन झलक

हम लोग घर बैठे बैठे अभिनव पदार्थोंके प्रेमी होकर पुरातत्त्ववेत्ताओंकी प्राचीन खोजपर विश्वास नहीं करते। बंबईसे दक्षिण पांचकोसपर एक गुफा है। यहां स्टीमरसे आना पड़ता है। इसकी रक्षा गवर्नमेन्टद्वारा होती है। पर्वतके कुछ ऊपर चढ़कर गुफामें जाना पड़ता है। वहांका दृश्य देखते ही बनता है। गुफामें कई मूर्तियाँ हैं। इन्हें देखनेसे तो माल्लम होता है कि, यहां शायद हिन्दूधर्म्मकी प्रधानता हो, किन्तु गुफाके पूर्व ओर एक बहुत पुरानी दिगम्बर मूर्ति पद्मासन लगाए बैठी है। आसपासमें यक्षयक्षिणी भी देख पड़ती थी। आश्चर्य्य है कि, सभी धार्मिक मूर्तियोंका यहां खूब सम्मेलन हुआ है।

बंबईसे पन्द्रह कोश पश्चिमकी ओर एक **" कनेली गुफा "** है। बरौली स्टेशन उतर कर आठ माइल पैदल जाना पड़ता है। लगभग १५० वहां गुफाएं हैं। इस पर्वतके नीचेसे ऊपरतक गुफा ही गुफा है। किसी किसी गुफामें इतनी बडी बड़ी दालानें हैं कि, उनमें दो दो हजार मनुष्य सावकाश बैठ सकते हैं। गुफाओंकी हरेक दीवालके अगलबगलमें कुछ लिखा हुआ है। मुझे तो माल्लम हुआ कि कर्नाटकीय लिपि है, किन्तु बहुतेरे विद्वान् कहते हैं कि, ये पाली अक्षर हैं। गुफाओंमें जो मूर्तियां मैंने देखी हैं, वे प्रायः बौद्ध मूर्त्तियां थीं, किन्तु सुना जाता है कि, यहां दो चार दिगम्बर जैनमूर्त्तियां भी हैं। खैर जो हो इनके देखनेसे भारतीय प्राचीन झलक एकबार झलक जाती है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुस्तक-पर्य्यवेक्षण.

जिनवाणी माताकी पुकार—

इसके लेखक बाबू परमेष्ठीदासजी लमेचू तथा प्रकाशक बाबू उदयराजजी बद्रीदास जैन हैं। इसकी किमत शिर्फ **मातृ-सेवा** है। आधा आनेका टिकट पोस्टेजके लिये भेजकर बाबू उदयराजजी बद्री दास जैन--नं. ७७ बड़तलास्ट्रीट कलकत्तेके पतेसे इसे सर्वसाधारण जैन मंगा सकते हैं। प्रारम्भमें " मातृवन्दना " यह ध्रुपद लयकी कविता बड़ी ही भक्तिरसप्लुत हुई है। बाबू मक्खनलाल लमेचूके " निवेदन " पढनेसे धार्मिक आवेश होजाता है। और मालूम होता है कि, इसके लेखके मानसभित्तिपर श्रीजिनवाणी माताकी वर्त्तमान हीनावस्थाका चित्र चित्रित होगया है। तत्पश्चात् इसके प्रमुख लेखक श्रीपरमेष्ठीदास लमेचूकी उर्दू वजनकी " मातृपुकार " नामकी दस पृष्ठमें कविता है। लेखकके विशुद्ध भावकी मैं मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करताहूं। आपका कविता-विषय बड़ाही उच्चत्तम है। आपके पद-पदसे जिनवाणीमाताकी भक्तिका उद्रेक-बिन्दु टपकता है। यद्यपि इस कविताके शब्द-चयन तथा छन्दश्शृंखलाकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है, तौभी मुझे तो यह पूर्ण आशा है कि, इसका विषय-सौन्दर्य्याधिक्य पाठकोंका ध्यान इन क्षुद्रच्युतियोंकी ओर जाने ही नहीं देगा।

आज इसे (" जिनवाणी माताकी पुकार " को) यह **भास्कर** अपनी स्नेहमयी किरणोंके क्रोड़ान्तर्गताकर पाठकोंकी सेवामें पहुंचा कर अनुरोध करता है कि, आप इसे एक बार तो अवश्य साद्यन्त पढे कि जिससे आप लोगोंको धार्मिक अथवा सामाजिक अवस्थाका दृश्य ज़रूर दृग्गोचरीभूत होजायँ।

* * * *

अनुभवानन्द—

इसके लेखक "जैनमित्र" के प्रख्यात अनुभवी सम्पादक श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी हैं। यह जैनमित्रके तेरहवें वर्षके उपहारमें उपहृत हुआ है। जैनमित्र-कार्य्यालय-हीराबाग बम्बईके पतेसे यह ।।) आनेमें मिलता है।

गत वर्षके जैनमित्रमें यह प्रकाशित होचुका है। उसीसे उद्धृत कर यह अबकी बार पुस्तकाकार छपाया गया है। इसमें **अगमदुर्गम, अद्भुत चोरी** आदि ५६ शीर्षक (Heading) हैं। १२८ पृष्ठकी इस छोटीसी पुस्तकमें ब्रह्मचारीजीने जैन-

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिद्धान्त तथा जैनदर्शनका कूटकूटकर रहस्य भरदिया है। दार्शनिक तथा सैद्धान्तिक विचारोंको इस ढंगसे लिखा गया है कि, हठात् उन्हें पढनेकी रुचि समुद्भूत होती है। कहीं कहीं पारिभाषिक शब्द ज्योंके त्यों रख दिये गये हैं, इसलिये जैनियोंको तो नहीं, किन्तु अजैनोंके समझनेमें ज़रा कठिनाई पड़ेगी। प्रायः उर्दूकवि गद्य या पद्य दोनोंमें हरेक शब्दपर अपनी अनुप्रासप्रियता दिखाते हैं। अभी हिन्दीको यह सौभाग्य प्राप्त ही नहीं है, किन्तु आपने इस अनुभवानन्द हिन्दी गद्य जैनदर्शनमें भी अनुप्रासकी अच्छी छटा दिखाई है। जैसेः—पृष्ठ १६ पं. २ " चिज्ज्योतिविलासी, अविनाशी, अत्यानन्दधामप्रवासी, कर्म्मराहुग्रसनरहित, विभावमेघाडम्बरविरहित, स्वभाव—परिणमन—विकाशसहित " । कहीं कहीं आपका वाक्यदैर्घ्य तो संस्कृतगद्यकाव्यकी याद दिलाने लगता है और कहीं कहीं आपकी हिन्दी प्राचीन हिन्दीकी परमाणु विकिरण करने लगजाती है। मैं समझताहूं कि, यह अनुभवानन्द भी हिन्दी साहित्यकोशके कुछ अभावकी अवश्य पूर्ति करेगा। प्रूफ संशोधकों अथ प्रेसकर्म्मचारियोंकी अनवधानतासे इसमें तीन पृष्ठका अशुद्धिपत्र लगाया गया है। जब मैं इससे मिलाकर पढने लगा. तो देखा कि, इसके अतिरिक्त भी अन्यान्य कई अशुद्धियां अभी रह गयी हैं। जैसे पहले ही पृष्ठमें अशुद्धिपत्रके सिवा २ पंक्तिमें **क्षोभितमन** [क्षुब्धमन] ६ पं. **दृष्टा** [द्रष्टा] ८ पं. **खेदित्त** [खिन्न] ऐसे असंख्य पद हैं। मैं आशा करताहूं कि, इसकी दूसरी आवृत्तिमें ब्रह्मचारीजी स्वयं इसका संशोधन कर इसे संशुद्ध करेगें। अस्तु, मैं अपने सभी ग्राहकोंसे साग्रह अनुरोध करताहूं कि आप सब इसे मंगाकर बार बार पढ़ें। इसके प्रत्येक बार पढ़नेसे नई नई जैनदार्शनिक ज्योति इससे छिटकती है। इसकी लागत तथा विषयके अनुसार इसकी किमत आठ आना बहुतही कम है।

* * * * *

विद्वद्रत्नमाला—

इसके रचयिता " लेखक—रत्न " और जैनहितैषीके सुयोग्य सम्पादक श्रीनाथूराम प्रेमीजी हैं। इस मालामें जिनसेन और गुणभद्राचार्य्य, पण्डित—प्रवर आशाधर, श्री अमितगतिसूरि, श्रीवादिराजसूरि, महाकवि मल्लिषेण और श्रीसमन्त भद्राचार्य्य ये सब विद्वद्रत्न उपगुम्फित हैं। यह माला विगत वर्षके जैनहितैषीमें प्रकाशित हो चुकी है। वही संगृहीत होकर पुस्तकाकारमें जैनमित्रके तेरहवें वर्षके उपहारमें दी गयी है।

मैं जब अपने जैनइतिहासक्षेत्रकी ओर दृष्टि फेरता हूं तो इसकी उच्छृङ्खलता तथा अनुक्रमराहित्य ही सब जगह दिखाई देता है, तो ऐसी अवस्थामें समाजको

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

क्या कर्त्तव्य है वह स्वयं विचार सकता है । ऐसे तो सभी इतिहास–लेखक प्रायः भूलके शिकारके लक्ष्य बने रहते हैं, किन्तु हमारे इतिहासमें तो भूलें होनी सर्वथा सम्भावित हैं । क्यों कि हमारे समाजने आजतक अन्यान्य कई संस्थाए स्थापित कीं किन्तु ऐतिहासिक संग्रहकी ओर कुछ ध्यान ही नहीं दिया । इसलिये दूसरेने हमे अन्धे समझकर अनुग्रहतया अथवा अननुग्रहतया जो बुरी भली ऐतिहासिक राहें पकड़ा दी हैं उन्हींके सहारे आचार्य्योंकी ओट लेकर हमलोग चल रहे हैं । यदि सुगम परिष्कृत सच्चे मार्गसे समाजको जानेके लिये कहा जाय तो वह " पुरानी लकीर का फकीर बनकर " चौंक उठेगा और उस राहसे जानेके लिये कभी सहमत नहीं होगा। इन्हीं सब दोषोंको हटानेके लिये स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीने श्री. जैनसिद्धान्तभवन नामक यह जैन ऐतिहासिक संग्रहालय खोला तथा वहांसे यह भास्कर निकलने लगा । उल्लिखित मालाके समुद्ग्रंथिता हमारे प्रेमीजी भी जैन इतिहासकी परिष्कृतिके लिये बड़े उद्योगशील होरहे हैं । इसकी साक्षिता आपकी यह विद्वद्रत्नमाला ही पर्य्याप्त है । भास्करकी प्रथम किरण प्रकाशित होनेके पहले ही इस **माला**के कई रत्न जैनहितैषीमें प्रकाशित होचुके थे । उनमें जिनसेनाचार्य्य और गुणभद्राचार्य्यका ऐतिहासिक परिचय तो आपने इसका प्रथम रत्न किया है । योंतो प्रेमीजीने छः हो विद्वद्रत्नोंके लिये अपनी अनुभवपूर्ण मास्तिष्किक शक्तियोंसे बड़ी बड़ी ऐतिहासिक खोजें की हैं किन्तु जिनसेन और गुणभद्राचार्य्यके विषयमें आपका परिश्रम विशेष प्रशंसनीय है ।

देवसेनसूरि के दर्शनसारकी गाथा के अनुसार प्रेमीजीने जिनसेन के बाद पद्म नन्दी इनके बाद विनयसेन तत्पश्चात् गुणभद्रको क्रमशः आचार्य्य पदवी धारण करने को लिखा है । मैं यह बात निरी निर्मूल नहीं कहता हूं किन्तु **सेनगण**की पट्टावली में इनका नाम नहीं है और महा पुराणमें भी इनका वर्णन कहीं नहीं आया है। पहल समयमें आचार्य्यपद विद्याके अनुसार लोगों को दिया जाता था । यदि पद्मनन्दी सेनंगणमें मान लिये जायं तौ भी सम्भव है कि पद्मनन्दी और विनयसेनकी अपेक्षा गुणभद्र अधिक विद्वान् थे । इस लिये जिनसेनके बाद गुणभद्र ही आचार्य्य-पट्टाधीश हुए । एक जगह टिप्पणीमें स्वयं प्रेमीजीने भी लिखा है कि पद्मनन्दी नन्दिसंघके आचार्य्य मालूम पड़ते हैं ।

एक जगह और आपने लिखा है कि विक्रमके १३६ वर्ष पीछे श्वेताम्बर-सम्प्रदाय अलग हुआ है । किन्तु यह बात एकदम निर्मूल मालूम होती है. क्यों कि यह बात सर्वमान्य तथा सर्वप्रसिद्ध है कि **भद्रबाहुस्वामी**के समयमें दिगम्बरसम्प्रदायसे श्वेताम्बरसम्प्रदाय अलग हुआ है ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थानपरिचयमें आपने एक जगह लिखा है कि नवम शताब्दिमें दिगम्बर आचार्य्योंके चरित्रमें कुछ शिथिलता आगई थी कि जिससे आचार्य्य लोग राजसभाओंमें जाने आने लग गये थे । मैं समझता हूं कि ऐसा मान लेनेसे एक ऐतिहासिक विषयपर बड़ा ही आघात पहुंचता है । राजसभाओंमें जाने आनेसे आचार्य्योंके चरित्र भले ही शिथिल हों, किन्तु महाराज **चन्द्रगुप्त**की राजसभामें **भद्रबाहु स्वामी** बराबर जाते आते थे और चन्द्रगुप्त भी उन्हें बड़े आदरसे बुलाते थे ।

पार्श्वाभ्युदय के काव्यसौष्ठवकी समालोचना करते हुए प्रेमीजीने एक जगह लिखा है कि " केवल अपने अध्ययन और अपनी जांचके भरोसे हमारा यह कहना तो बड़े भारी साहसका कार्य्य होगा कि महाकवि जिनसेनकी कविता **कविकुलगुरु** कालिदासकी कविताके जोड़ेकी है " ।

यहां पर मुझे प्रेमीजीसे यह कहना है कि प्रेमी जी ! आपहीके अध्ययनाध्यापनके आधारपर जिनसेनाचार्य्यके काव्यके उत्कर्षापकर्षकी परीक्षा सर्वथा अवलम्बित नहीं है । इनके काव्यकी सर्वश्रेष्ठता कई अजैन ऐतिहासिक विद्वानोंने भी निष्पक्षपातसे दिखलाई है । प्रेमीजीके उपर्युक्त वाक्यमें एक बड़ा भारी रहस्य है । किन्तु स्थानाभाव तथा अवकाशाभावके कारण उसे मैं अभी नहीं प्रकटित कर सकता । किन्तु मैं इतना तो अवश्य कहूंगा कि प्रेमीजीने यह वाक्य लिखनेमें भी बड़े भारी साहसका काम किया है । मैं समझता हूं कि इसके लिखनेका दूसरा कारण कुछ नहीं । कुछ दिनोंसें प्रेमीजीमें पक्षपातराहित्यकी मात्रा हदसे ज्यादा बढ़ी हुई है ।

मैं विद्वद्रत्नमालाको साद्यन्त पढगया हूं सही, किन्तु ऐसी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तकका ऐतिहासिक पर्य्यवेक्षण एकही बार करनेसे मुझे सन्तुष्टि नहीं हुई, इसलिये आगामी किरणोंमें भी मैं अवश्य करूंगा । प्रेमीजीने इसकी प्रस्तावनामें ही पाठकोंको सूचित कर दिया है कि यह जब छप रही थी तो मैं बीमार था, इस लिये इसमें अशुद्धि रह जानेकी सम्भावना है । किन्तु जब मैंने इसे पढ़ा तो **अनुभवानन्द**से थोड़ी अशुद्धि मिली । उसमेंभी प्रायः बहुत ऐसी हैं कि जो जैनहितैषीमें अबतक रह जाती हैं । जैसेः—

विद्व. पृ.	पं.	
१०	३	जिसने इस टीकाको **सम्पादन की** है ।
३०	११	अर्थोंकी रचना की है, श्रीपाल नामके मुनिने **जिसे सम्पादन की है** ।
३२	१२	श्रीजयसेनगुरुने .... जयधवल टीकाको **पूर्ण की** ।
४७	१०	उसने .... वसुन्धराको वशमें **कर ली** ।
५०	१	वसुन्धराको मैंने दूषित **की थी** ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

५५ १३ **उसे** .... सुजा **दी** ।
६२ १४ कविने .... अनुयोगोंके विषयों**को** संग्रह कर **दिये हैं** ।
८० ५ **इसे** अमोघवर्ष प्रथम**ने** संस्कृतमें **बनाई थी** ।
८१ ३ **उसे** .... तीन चार राजाओं**ने** ... **धारणकी** ।
८२ ६ श्रीहर्ष**ने** ... ... नगरी **को लूटीथी** ।
८६ ८ जिस**ने** .... राजाओं**को** .... आज्ञानुवर्ती **किये थे** ।
९२ १६ शहाबूद्दीन गोरी**ने** .... दिल्ली**को** अपनी राजधानी **बनाई थी** ।
१०१ ८ आशाधर**ने** धारनगरी **को छोड़ दी** ।
१३७ १९ **कर्त्ता ने** काष्ठासंघके उत्पादक **बतलाये** तो लोहाचार्य्य**को** हैं ।
१६१ ४ भीम**ने** चंद्रदेशीय लोगों**को जीते** ।
१६१ ४ जिस**ने** भस्मक व्याधि**को** भस्म **करदी** ।
१६१ १५ स्वामीजी तत्काल ऋषि बनगये । मस्तकपर **जटा बढ़ालिये** ।

उल्लिखित सोलह वाक्योंकी प्रधान क्रियाएं हिन्दीव्याकरणोंके नियमानुसार एक वचन, पुँल्लिङ्ग और अन्यपुरुषके अनुसार होनी चाहिये थीं । अन्तिम वाक्यमें उद्य कर्त्ता मानने पर भी जटाके अनुसार क्रिया **बढ़ाली** होनी चाहिये थी ।

ऐसे वाक्य तो जैनहितैषीमें प्रेमीजीके सम्पादनके पहले विधिरूपसे लिखे जाते थे, किन्तु प्रेमीजी अब इन्हें विधि निषेध दोनों समझकर लिखते हैं । अधिकतर विधिरूपसे लिखते हैं । इसका उदाहरण मैं विगत हितैषीसे निकाल कर देता हूं । जैसेः—

जै. भा. पृ. पं.

६–७ ३२१ २२ जिन्हों**ने**.....अपनी आत्मा**को** इतनी उन्नत नहीं **की है** ।
,, ३२७ २४ मुर्शिदाबादवालों**ने** ....**उन्हें** स्थापित **करायेथे** ।
,, ३३६ १ जिस**ने** ..... हिंसाकठोरता**की** कीचड़**को** धो **बहाई** ।
५ २३७ १ एक ज़रासी बात**को** ... उस**ने** .....बढ़ा **दी है** ।
,, २७० १ **इसे**.....मारवाडी स्टोर्स**ने** प्रकाशित **की है** ।

इसीप्रकार जैनहितैषीमें ऐसे व्याकरण-विरुद्ध वाक्य खूब लिखे जाते हैं । शायद प्रेमीजीने 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इस नीतिवाक्यके अनुसार हिन्दीके सर्व-श्रेष्ठ लेखक तथा सरस्वतीके सुसम्पादक खुद द्विवेदीजीके गत जनवरी महीनेकी १ म संख्यावाली सरस्वतीके ११ पृष्ठकी २२ वीं पं० में अध्यापक एडवर्ड हेनरी पामरवाले लेखके "नीचे उनकी एक उर्दू कविता उद्धृत की जाती है । **जिसे** उन्हों**ने**.....एक कविताकी वजनपर लिखीथी" इस वाक्यको आदर्श मानकर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लिखा हो, सो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि प्रेमीजी इसके प्रतिकूल भी कभी कभी लिख देते हैं। और द्विवेदीजीका तो ऐसा वाक्य मैंने शायद और नहीं देखा है।

स्वाधीनतामें जॉनस्टुअर्ट मिलका जीवनचरित जो प्रेमीजीने लिखा है, उसमें भी प्रायः ऐसे वाक्य बहुत मिलते हैं। जैसेः—

पृ. २६ प. २३ " जो बातें वास्तवमें बुरी होती थीं, उन्हींके विषयमें उसके ऐसे मनोभाव, होते थे। **जिन्हें** लोगोंने बुरी मान **रखी** है "।

पृ. २८ पं. २ " **उन्हें** उसने प्रतिनिधिसत्ताकराज्यपद्धतिसे कम **समझे** "।

पृ. ४७ पं. ७ " विचार और सिद्धान्त थे **उन्हें** साफ साफ शब्दोंमें लिखकर दे **दिये** "।

पृ. ५१ पं. ३ " उन्होंने **उसे** सन् १८७० में स्वीकार कर**लीथी** "।

मालामें एक वाक्य और है, जो प्रेमीजी बराबर लिखते हैं, जिसको और दूसरे लेखक शायद ही लिखते हों। यदि लिखें भी तो वह भ्रमात्मक ही समझना चाहिये। जैसेः—

पृ.	पं.	**वाक्य.**
४	२०	पद्यग्रन्थमें खण्डेलाका राजा खण्डेलगिरि **बतलाया** है।
५	१	नन्दिसंघकी पट्टावलीमें यशोभद्रको.....प्रारम्भसे **बतलाया** है।

यहां **बतलाया** है यह क्रिया बड़ी ही भ्रमपूर्ण मालूम पड़ती है। क्योंकि सकर्म्मक धातुके आसन्नभूतकी क्रियाका कर्त्ता 'ने' सविभक्तिक रहना चाहिये। यदि यहां कर्त्ता उह्य (understood) मानलिया जाय, तौ भी ठीक नहीं। क्योंकि बिना शान गुमानके धड़ामसे 'ने' सविभक्तिक कर्त्ता किसीने इस प्रकार उह्य माना ही नहीं। इस लिये मैं समझता हूं कि प्रेमीजी और लेखकोंके अनुसार ऐसी जगह **बतलाया गया है** ऐसा लिखा करें तो अच्छा होगा। क्योंकि यहां क्रियाके पूर्ववर्त्ती **राजा** आदि पद कर्मकर्तृत्व दोनों रूपसे प्रयुक्त हो जायगा। विद्वद्रत्नमालामें संस्कृतके बहुतसे पद बहुत ही संशोध्य हैं।

जैसेः—वि. पृ. ७४ पं, ७ " जितनी **संक्षेपता**से यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है" बंगला पुस्तकोंमें '**हासता**' लिखा रहता है। ठीक इसी जोड़का **संक्षेपता** भी हो जायगा। इसके बदले **संक्षिप्तता** लिखा जाता तो अच्छा होता।

मुझसे यह ज़रूर अनुचित हुआ है कि, विद्वद्रत्नमालाकी प्रस्तावनामें प्रेमीजीसे सूचित करनेपर भी मैंने जान बूझकर व्यर्थ उनकी दोषोद्घोषणा की है, किन्तु मैं प्रेमीजीसे निवेदन किये देता हूं कि, आपने जिन अशुद्धियोंके लिये सबोंको सूचित किया था वे तो हैं ही। उन्हें मैंने एकदम छोड़दिया है, किन्तु जिनका सम्बन्ध

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आपके संशोधित **जैनहितैषी**में अबतक चला आता है उन्हींका यहां ज़रासा जिक्र किया है। सुना जाता है कि बहुतेरे हिन्दीहितैषियोंने आपसमें यह सलाह की है कि, व्याकरणाधिक्य तथा व्याकरणकी नियमपालनपरायणताहीने संस्कृतभाषाको मृतभाषा (Dead language) बना दिया है, इस लिये हम लोगोंको हिन्दीव्याकरणोंके नियमोंका प्रसार अथवा जो नियम बन गये हैं, उनका विशेष स्वीकार कभी नहीं करना चाहिये। शायद इन्हीं हिन्दीसुधारकोमेंसे हमारे एक प्रेमीजी भी हों। हम जैनियोंको इस बातका गौरव मानना चाहिये कि, अन्यान्य अजैन हिन्दीपत्रसम्पादकोंकी प्रेमीजीके हिन्दीभाषाधिपत्यपर बड़ी श्रद्धा है। सचमुच आपकी विशुद्ध हिन्दी पढ़ती बार चह-चहाती हुई चीडियोंकीसी बोल उठती है। बहुत वर्षोंसे आपने अपने अदम्य अध्यवसाय तथा स्वभावसुन्दर मुहाविरेदार हिन्दीसे जैनहितैषीको आदर्श बना रक्खा है। इस लिये मैं अपने पाठकोंसे सविनय निवेदन करताहूं कि आप सब **सरस्वती** आदि हिन्दीके प्रधान प्रधानपत्रोंसे सुप्रशंसित तथा सुसमालोचित और जैनहितैषीके सम्पादकद्वारा विरचित इस विद्वद्रत्नमालाको अवश्य खरीदकर पढें। यह हिन्दीका आनन्द, तथा जैन इतिहासका विज्ञान एक साथ कराती है। इस विद्वत्तापूर्ण १७४ पृष्ठकी विद्वद्रत्न-मालाका मूल्य ॥.) कहीं कम है। (शेष आगे)

जिनपूजाधिकार-मीमांसा—

इसके लेखक देवबन्दनिवासी श्रीयुत जुगल किशोरजी मुख़्तार हैं। जैनहितैषीके क्रोड़पत्रमें यह वितरित हुई है।

इसे हमने पढ़ा तो मालूम हुआ कि इस पुस्तकके लिखे जानेका कारण तथा मूल-भित्ति दस्से और बीसोंका झगड़ा ही है। यद्यपि इस भास्करका अथवा मेरा इस झगड़ेसे कुछ सम्बन्ध नहीं है तौभी यहां यह कहदेना मैं उचित समझताहूं कि मुख़्तार साहबने जो जिनपूजाके लिये सभी वर्णोंको अधिकार दिया है, सो बहुत ठीक है। पूजाका अर्थ सत्कार और पूज्य श्रद्धा भी है। किन्तु जहां आपने पूजाका अर्थ शिर्फ मूर्त्तिप्रक्षालनादि रूढ़ि मानलिया है, सो ठीक नहीं। क्योंकि ऐसा माननेसे एक ऐतिहासिक विषयकी बड़ी हानि होती है। वह यह है कि मन्दिरोंके बाहर जो **मानस्तम्भ** लगाये जाते हैं, उनका यही अभिप्राय है कि अस्पृश्य वर्णोंके आनेकी यही सरहद है। वे इसको लांघकर आगे नहीं जा सकते। बल्कि मानस्तम्भोंमें अप्रतिष्ठित मूर्त्तियाँ भी रहती हैं कि जिनपर इतर वर्ण अक्षत आदि चढ़ा सकते हैं। पूजा कई प्रकारकी होती है। जिन्हें (स्पृश्य-वर्णोंको) प्रक्षालन आदि करनेका अधिकार है, वे सब पूजा करें और जिन्हें मानस्तम्भ तक अधिकार है, वे मूर्त्तिस्तुति, स्तोत्र, ध्यान, जप, तप, तथा दर्शन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दूरहीसे बड़ी स्वच्छन्दतापूर्वक करसकते हैं । उनके लिये वे ही पूजा हैं । यह पुस्तक मुख़तार साहेबने बड़ी गवेषणासे लिखी है । इस लिये हमे आशा है कि हमारे ध्वजाधारी पण्डित-गण मुखतार साहेबकी इस मीमांसापर अपनी सुमीमांसा प्रकटित कर एक निष्पक्ष जैन विद्वान्का उत्साह बढायेगें ।

पत्रपरिचय.

सचित्र हिन्दी-मासिक मनोरंजन—

इसके सम्पादक श्री ईश्वरी प्रसादजी मिश्र हैं । इसके आकार प्रकार बड़े सुन्दर तथा आवरकपत्र कहीं नेत्ररंजक है । बाबू मैथिली शरण गुप्तजी तथा पं. रूपनारायण पाण्डेयजी ऐसे 'खड़ी बोली' की कविताके उद्भट कवियोंकी इसमें हृदयहारिणी कविता रहती है तथा मनोरंजन-प्रधान अन्यान्य साहित्यक लेख भी अच्छे रहते हैं ।

'नाकमें दम' यह लेख यद्यपि अनुवाद तथा मनोरंजनके सार्थकता-सूचक रूपसे इसमें निकल रहा है, किन्तु अबकी बारके सातवीं संख्यावाले "मनोरंजन" का "नाकमें दम" तो अश्लीलताके मारे पढ़ने वालोंको नाकोदम किये देता है । मैं तो समझताहूं कि गुरुशिष्य तथा पितापुत्र परस्पर एक दूसरेको इसे पढकर नहीं सुना सकता । इसके लेखक जी. पी. श्री वास्तवजी बड़े विनोदप्रिय हैं । वैनोदिक शब्द आपके सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं । यदि आप चाहेंगे तो इसको आगामी संख्यासे दूसरे ढंगसे लिख सकते हैं । जो हिन्दी जाननेवाले मराठी मासिक मनोरंजनकी मनोरंजनता देखकर तरस रहेथे वे अब इस हिन्दी मनोरंजनका तनमनसे आदर करें। इसका वार्षिक मूल्य २।) बहुत ही कम है । इसके मंगानेका पताः—**मैनेजर—मनोरंजन—आरा.**

नागरीहितैषिणीपत्रिका—(साहित्यपत्रिका.)

यह बिहारकी गौरवकारिणी आरा नागरीप्रचारिणी सभाकी मुखपत्रिका है । सभाने बड़ी कृपा करके भास्करके परिवर्त्तनमें सम्मिलित ९ वाँ १० वाँ अङ्क भेजेथे । इनमें काव्यतीर्थ व्याकरणतीर्थ पण्डित सकलनारायण पाण्डेयजीकी 'हिन्दीलेखन-प्रणालीकी शुद्धता,' और बाबू अवधविहारीशरण जी. बी. ए. का "मेगस्थनिज" ये साहित्यके लिये बड़े ही उययुक्त लेख हैं । अन्यान्य लेख भी सुपाठ्य हैं । बाबू दामोदर सहायजीकी "विनयानुताप" यह खड़ी बोलीकी कविता बहुत अच्छी है ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

किन्तु " **लगाये** जीभ औ नाकोंको जैसे स्वाद खुशुबूमें " यहां **लगाये** यह क्रिया इस कविताको पड़ीबोलीमें परिणत करती है। ऐसे तो **परतीत** आदि दो चार शब्द चिन्तनीय हैं, किंतु खड़े बोलनेवालोंने अपनी बोलीमें इन्हें अभीतक स्थान दे रक्खा है; आगे इनको निष्कासन करेगें या आश्वासन यह वे ही जानें । ऐसे ऐसे उपयोगी लेखोंसे समलंकृत होनेपर भी इसका वार्षिक मूल्य १॥) भला किसको नहीं कम जचेगा?

मंगानेका पता:—**नागरीप्रचारिणी सभा—आरा—**

इन्दु—

यह सचित्र हिन्दीका मासिक पत्र है । इसके सम्पादक हिन्दीविज्ञोंके परिचित श्री अम्बिका प्रसादजी गुप्त है । इसकी ३ री कलाकी ६ वीं और ७ वीं किरण हमारे पास समालोचनाको आई थीं । इनमें छोटे बडे बाईस लेख हैं । सभी लेख सुपाद्य तथा मार्मिक हैं । अनेक उपाधिधारी विज्ञानवेत्ता बाबू महेशचरण सिंहजीका " योग्य सन्तान पैदाकरना " यह लेख बड़े महत्वका है । पण्डित रूपनारायणजीकी । " अधाखिलाफूल " कविता तो बड़ी ही मानसद्राविका है । पाण्डेयजीकी कविता प्रायः गुप्तजीकीसी सर्व—प्रशंसनीय होचली है । 'इन्दु' में लेख वास्तवमें हमेशः उपयोगी निकलते हैं । विज्ञ पाठक इसकी सुधामयी कलासे अपनेको अवश्य आप्यितृप्त करें । इसका वार्षिक मूल्य ३॥)

सम्पादक या प्रकाशक—' इन्दु ' **बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त**—बनारस सिटी—

जैनहितैषी—

इसके सम्पादक श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी हैं । अन्यान्य दिन्दी मासिकपत्रोंमें जिस तरह सरस्वतीकी प्रतिष्ठा है उसीप्रकार हमारे जैनपत्रोंमें भी जैनहितैषीकी बड़ी प्रतिष्ठा है । इसकी वजह यह है कि प्रेमीजी इसको सदा सामयिक तथा उपयोगी लेखोंसे बिभूषित किया करते हैं । विशेषकर निराश्रित जैनइतिहासको भी आपने इसमें बहुत दिनोंसे स्थान दे रक्खा है । प्रेमीजीके ही सम्पादक—सिंहासनासीनत्वमें जैन-हितैषीने अपनी इतनी चारो तरफ कीर्त्तिकौमुदी फैलाई है । प्रेमीजी जैनइतिहास, जैनसमाज तथा हिन्दीसाहित्यके लिये रातदिन कितनी जीतोड़ मेहनत करते हैं? यदि लोगोंको यह जानना हो तो जैनहितैषीका गत पांचवा भाग मंगाकर प्रेमीजीका "तीर्थपर्य्यटन" यह लेख अवश्य पढ़ें। मैं आशा करताहूं कि ऐसे अमूल्य पत्रको केवल वार्षिक मूल्य २) देकर हमारें जैनीभाई इसके अवश्य ग्राहक होंगे । ज्यादा नफा यह है कि दोही रुपयेमें ग्राहकोंको सालमें उपहारकी पुस्तकें भी बहुत अच्छी अच्छी मिल जाती हैं।

पता:—**मैनेजर जैनहितैषी**—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय—हीराबाग—बम्बई ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सत्यवादी—

"महाराष्ट्रीयखण्डेवालदिगम्बरजैनपंचमहासभा" का यह मासिक मुखपत्र है। इसके सम्पादक पण्डित उदयलालजी काशलीवाल हैं। अभीतक इसके नव अङ्क निकल चुके हैं। पण्डितजी बड़ी स्पष्टवादिता, सत्यवादिता तथा निर्भीकतासे इस पत्रमें अपनी सामाजिक उलझनोंको प्रकाशितकर उनको सुलझानेके लिये चेष्टा करते हैं। इसमें अन्यान्य लेख भी अच्छे रहते हैं। सत्यवादी दिगम्बरसाधुओंमें जो हठधर्मी और मूर्ख हैं, उन्हें देखकर और पत्रोंके ऐसा "टुक टुक दीदम दम न कशीदम" नहीं लगाये रहता, बल्कि उनकी खूब खबर लेता है। मैं अपने पाठकोंसे अनुरोध करताहूं कि आप सब एक वर्षके लिये भी इसके ग्राहक बनकर इसकी सत्यवादिताकी जांच कर लें। ऐसे उपयोगी पत्रके लिये वार्षिक मूल्य १।) केवल नामका है।

पता:—सम्पादक, **सत्यवादी**—पो० गिरगांव-बम्बई।

जैनमित्र—

यह "दिगम्बरजैनप्रान्तिकसभा बम्बई" का मुखपत्र है। यह बहुत पुराना पाक्षिक पत्र है। इसके सम्पादक श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी हैं। आपका सम्पादकीय स्तम्भ बड़ा ही पाण्डित्यपूर्ण होता है। सौभाग्यसे आजतक इसको सभी सम्पादक कृतविद्य तथा धर्म्म-धुरीण मिलते गये। ब्रह्मचारीजी जैन दार्शनिक तथा धार्मिक लेख लिखनेमें बड़े सिद्ध-हस्त हैं। इस पत्रको सर्वाङ्ग सुन्दर बनानेमें आप सदा सचेष्ट रहते हैं। जैनमित्रकी सम्पादकीय टिप्पणीमें दार्शनिक तथा धार्मिक विषय अधिक रहते हैं। ब्रह्मचारीजी यदि अपनी विचारपूर्ण टिप्पणीमें साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विषयोंको भी आश्रय दिया करें तो कहीं अच्छा होगा। अस्तु हमारे पाठक जरूर इस पत्रके ग्राहक बनें। इसका सालाना चन्दा २) कुछ अधिक नहीं है। पता—**जैनमित्र-कार्य्यालय**, हीराबाग—बम्बई.

धन्यवाद-धारा.

कारंजासिंहासनाधीश श्री १०८ मान् भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्तिजी महाराज इस भवनके बड़े ही शुभचिन्तक हैं। आपके मनमें भवनकी भव्य-भावनाएँ सदा प्रोच्छलित होती रहती हैं। गत वर्षमें आपने भवनमें १५१) नक्द और एक अत्यन्त प्राचीन नागराक्षरमें लिखित **गोमट्टसार**जी देकर जो अपनी उदारता तथा विद्वत्ताका

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जो परिचय दिया है, वह और भट्टारकोंके लिये आदर्शभूत तथा अनुकरणीय है। आप हमेशः भवनकी भलाईके लिये अपनी शुभसम्मति दिया करते हैं। जैनशास्त्रके एक अच्छे मर्मज्ञ आप ऐसे सहायक पाकर यह भवन फूले नहीं समाकर अपने उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये बड़ी बड़ी आशाएँ करता हुआ चिरकृतज्ञता-पूर्वक आपको सहस्रशः धन्यवाद-प्रदान करता है।

* * * *

कारंजासिंहासनाधीश श्री १०८ मान् भट्टारक वीरसेनजी महाराज भी भवनके परम अन्तरङ्ग हितैषी हैं। पर साल आपने बहुत पुराने कर्नाटकीय लिपिमें ताड़पत्र-लिखित जैनधर्म्मके सैकडों ग्रन्थ सुरक्षामिमित्त तथा प्रतिलिपि करनेके लिये **भवन**में देकर जैनसाहित्य तथा धर्म्मका तो उदात्त उपकार किया है तथा भवनको अनुग्रह-भाजन बनाया है। वास्तवमें जैनधर्म्म, जैनसाहित्य तथा जैनइतिहासके उद्धारके लिये भवनको ऐसे ही ऐसे सुधीश्रेष्ठ सच्चे सहायकोंकी आवश्यकता है। आपकी इस अनुपम उपकृतिसे उपकृत होकर भवन आपपर असाधारण धन्यवादधाराका अभिवर्षण करता हुआ आपकी कृपादृष्टिका सदाभिलाषी बनता है।

* * * *

स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीके परमश्रद्धास्पद श्री १०८ मान् नेमीसागरजीवर्णी भवनके प्रधान पृष्ठपोषकोंमेंसे एक हैं। भवनकी प्रख्याति तथा ग्रन्थ-संग्रहके लिये आपने आजतक जो अभावनीय परिश्रम किया है वह स्वर्णाक्षरमें लिखने योग्य है। कौन ऐसा जैनी होगा जो आपकी शान्तिपिपासिता, जैनधर्म्मसम्मानबुद्धिता, मधुर-भाषिता और उपदेश-दक्षता देखकर जैनधर्मकी प्रभावनाके लिये प्रभावित न होजाय। बहुत दिनोंतक आपने अपने पादपद्मपरागसे आरा पुरीको पवित्रित किया है। अब लगभक दोवर्षसे अपने प्रान्त (कर्नाटक) में जैनधर्म्मकी निर्वाणोन्मुख ज्योतिको, सुप्रज्वालित कर रहे हैं। आपके करकमलारोपित, अभिषिक्त तथा परिवर्द्धित यह भवन आज आपकी सेवामें धन्यवादोपहार लेकर उपस्थित होता है। आशा है कि आप इसे स्वीकार कर भवनको पूर्ववत् अपनी वत्सलमयी कृपादृष्टिसे चिरस्थायी बनानेकी कृपा करेंगे।

* * * * *

श्रीमान् सेठ विनोदीराम बालचन्द-झालरा पाटन और श्रीमान् रामलालजी जैन—हेड् क्लार्क सप्लाई ऑफिस—जालन्धर छावनी ये दोनों महोदय **भवन**के बड़े परमहितैषी हैं। आप लोगोंने इसके अजीवन सभासद (Life member) होकर अपनी आदर्श उदारताका परिचय दिया है। इस लिये भवन आप लोगोंको असंख्य धन्य-वाद देता हुआ आशा करता है कि, आप सब ऐसे ही सदा वात्सल्य-वृष्टि करते रहेंगे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मैं जब कलकत्तेसे बंबई आया, तो मुझे भास्कर लिखनेके लिये कई किताबोंकी आवश्यकता हुई। श्रीयुत दानवीर जैनकुलभूषण सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जे. पी. ने बंबई एसिआइटिक सोसाइटीसे सैकड़ों पुस्तकें मंगादीं, तथा श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीने अपने कार्य्यालयसे आवश्यकतानुसार कई ग्रन्थ दिये. इसलिये ऐसे उदार तथा समाज-हितैषियोंकी उपकृतिसे पूर्ण उपकृत होकर मैं इन दोनो महोदयोंको कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूं।

सचित्र दिगम्बर जैन.

भास्कर तथा भवनके परम शुभचिन्तक मासिक दिगम्बरजैनका परिचय मैंने भूलसे **पत्रपरिचय** वाले शीर्षकमें पाठकोंको नहीं कराया। यह लोकमान्य पत्र गुंजरातीमें निकलता है। इसके सम्पादक जैनसाहित्यसेवियोंके चिरपरिचित श्रीयुत मूलचन्द किसनदास कापड़ियाजी हैं। कापड़ियाजीकी वक्तृत्वशक्ति तथा लैखिकशक्ति दोनों एकसे एक बढी हैं। आपने इसपत्रको अपनी सर्वश्रेष्ठ सम्पादनशैली तथा विशुद्ध विषयविवेचनसे बड़ा ही उन्नत बनारक्खा है। दिगम्बरजैनमें सामाजिक अथवा धार्म्मिक लेख बड़ी मार्म्मिक दृष्टिसे लिखे रहते हैं। इसका दिवालीका अङ्क तो सालमें लाजबाब निकलता है। समाजके अथवा धर्म्मके जितने सच्चे साधु तथा गृहस्थ उद्धारक हैं, उनके परिचयपूर्वक चित्र निकाल कर कापड़ियाजी उनके सामाजिक तथा धार्म्मिक उत्साह और दूने बढ़ाते हैं। वार्षिक उपाहारकी पुस्तकें भी प्रायः बहुत अच्छी रहती हैं। यद्यपि इसकी भाषा गुजराती है किन्तु इतनी सरल रहती है कि इसका आशय हिन्दीभाषाभाषी भी बड़ी आशानीसे समझ सकते हैं। इसलिये मैं अपने हिन्दी जानने वाले ग्राहकोंसे भी अनुरोध करता हूं कि वे इसके ग्राहक अवश्य बने। बार्षिक मूल्य १॥।) कुछ बेजां नहीं है।

पताः—मैनेजर—दिगम्बर जैन—चन्दावाड़ी—सूरत।

आवश्यक-सूचना.

विलम्ब-निवेदन.

जब मैं भास्करकी पहली किरण निकाल चुका, तो सामग्रीसम्पन्नतया इसकी दूसरी किरण भी निश्चित समयसे दोचार दसरोज पहले ही प्रकाशित कर पाठकोंकी सेवामें पहुंचा देनेकी तैयारियाँ बाँधने लगा। पहले तो भास्करका ऐतिहासिक विषय ही कठिन रक्खागया है, उस परभी सरस्वती आदि पत्रोंने 'भास्कर'के कई विषयोंकी निर्मूलता दिखानेकी कृपा की।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बस बात क्या थी बिलम्ब होनेकी सूरत धीरे धीरे दिखाई देने लगी । जब मैं बम्बई चला आया तो, और कई बातोंकी असुविधा हुई । ऐतिहासिक प्रमाणोंके लिये शिला-लेख खोजने तथा उनके ब्लॉक बनवानेमें भी बहुत देर लगी । खैर कुछ देर ही सही, किन्तु दूसरी किरणके साथ साथ अब तीसरी किरणमें भी देर होने लगी । जिस समाचारपत्रको निजका प्रेस नहीं है, उन्हें निश्चित समयसे विचलित होना तो स्वभाव-सिद्ध है । सो प्रेसके फेरमें मैं भी पड़ा । बंबईके " लक्ष्मीनारायणप्रेसमें " भास्करके तीन फर्मे छपने पाये थे कि वहां धड़ा धड़ चूहे गिरने शुरु होगये । प्रेसकर्मचारी घर जा बैठे । अब भास्करके उछलकूद करने तथा अस्त व्यस्त होने पर भी कौन सुनता है ? आखीरमें हमे यहांके प्रसिद्ध ' इन्दु ' प्रेसमें सब मैटर देने पड़े । इस प्रेसमें कर्म-चारियोंकी इतनी अधिकता है कि, अगर प्रतिदिन मैं एक फर्मा मांगता तो, यह एक क्या दो फर्मे देनेको तयार; इसलिये इसने भास्करके दोनों किरणें बड़ी आसानीसे छापदीं । दोनों किरणोंके प्रकाशित होनेका समय हो ही गया था, इस लिये पाठकोंको पढ़नेमें सुभीता होनेके लिये दो अलग अलग जिल्द नहीं करके मैंने एक ही जिल्द करदी ।

दो एक महिनेकी देर होजानेसे मेरे विज्ञ पाठक अवश्य उकता गये होंगे. किन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि, जिस सरकारी एसिआइटिक सुसाइटियोंकी जर्नलके लिये सैकडों वैतनिक कर्म्मचारी विद्वान् हमेशः कटिबद्ध रहते हैं–ऐतिहासिक बखेड़ोंमें पड़कर वहांकी भी जर्नलें महीनोंकी कौन कहे ? वर्षों पीछे पड़ी रहती हैं । इन किरणोंकी ऐतिहासिक खोज करनेमें कितनी मेहनत हुई है, पाठकोंसे यह कहना फिजूल है । क्योंकि " हाथकंगनको आरसी क्या ? "

मैं अपने पाठकोंको यह दृढ़ आशा दिलाये देताहूं कि, किरणोंके प्रकाशित होनेमें निश्चित समयसे एकाध महीना इधर उधर हो जावे, यह दूसरी बात है । किन्तु वर्षमें आप लोगोंकी सेवामें भास्करकी चार किरणें अवश्य पहुं जायंगी । मैं आशा करताहूं कि, ऐतिहासिकपत्र इस भास्करके बिलम्बका कारण अनिवार्य्य समझकर इसके शुभानुध्यायी पाठक सदा अपने उदार आशयाकाशमें भास्करको अवकाश देगें ।

* * * * *

अबकी बार जो भास्करमें हरिवंश पुराण तथा पद्मपुराणके मंगलाचरण और प्रशस्ति दी गयी हैं, अथवा सेनगणकी पट्टावली प्रकाशित की गयी है, सो भवनमें उनकी दूसरी प्रति नहीं मिलनेसे प्राचीन संस्कृत तथा लिपिकी वजहसे इनमें कुछ कुछ अशुद्धि रहगयी है । इनकी दूसरी प्रति मिलानेके लिये मैंने यहां बहुत तलाशी, किन्तु

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मिली ही नहीं। जहां तहां तो मैंने संशोधन करवा दिया है, किन्तु जो विशेष सन्देहास्पद है वह रह ही गया। इसलिये यदि जैनविद्वद्गण उनका संशोधनकर मुझे सूचित करनेकी कृपा करेंगे तो उनकी बड़ी कृपा होगी। दूसरी बात यह भी मैं कह देना उचित समझता हूं कि, भास्करमें जो संस्कृतका अनुवाद हुआ है वह भावानुवाद है। और अनुवादक पण्डित भी मेरे अजैन कर्म्मचारी हैं। इसलिये सम्भव है कि उन्होंने जैनपारिभाषिक शब्दोंका व्युत्पत्त्यनुसार औरका और अर्थ किया होगा, अथवा वे शब्द ज्योंके त्यों रख छोड़े होंगे। इसलिये पाठक अनुवादके भावार्थ ही की ओर विशेष ध्यान देंगे।

* * * *

कार्य्याधिकतासे हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनाचार्य्य और पद्मपुराणके कर्त्ता रविषेणाचार्य्यका परिचय इन किरणोंमें मैं नहीं देसका। सम्भवतः अगामी किरणमें दूंगा।

* * * * *

भास्करके पहुंचनेमें विलम्ब होनेसे मेरे कई सहयोगी तथा सहयोगिनियोंने जो एकही बार दर्शन देकर फिर दर्शनद्वारा कृतार्थ करनेकी कृपा नहीं की है, उनसे निवेदन है कि, वे भास्करका विषयकाठिन्य देखकर इसे अपने साहयोगिक स्नेह तथा दर्शनसे वञ्चित न रक्खें। भास्कर अवश्य प्रकाशित होगा तथा अपने सहयोगी तथा सहयोगिनियोंकी सेवामें ज़रूर उपस्थित होगा।

* * * *

भास्करके शीघ्रतासे छपनेसे तथा एक ही संशोधकको संशोधन करनेसे मात्रा तथा पदपार्थक्यादिकी जहाँ तहाँ अशुद्धियाँ रहगयी हैं। जैसेः—

क्रमभङ्ग—पृ. ५ पं. ८ 'भरी हुई है कीर्ति **जिस**की' ऊपरकी पङ्क्तिमें एक जगह जिनकी है यहाँभी वही होना चाहिये।

पृ. २२ पं. ५ बे यूसुन जातिको.....विनष्ट **करचुके** यहाँ वेकी जगह उन्होंने और कर चुके की जगह करदिया होने चाहिये।

पदपार्थक्य—पृ. ४९ प. २० प्राकृतिक रचना, चतुरता यहाँ कौमाकी जगह—हाइफेन चाहिये। ऐसे ही इसकी आगेकी पाँतिमें भी भाव—गाम्भीर्य्य, अलङ्कार सौन्दर्य्य इन समस्त पदोमें भी अर्द्ध विश्राम (,) पड़गया है। और इसकी क्रिया जो 'कर देती है' वह करदेते हैं चाहिये। पृ. २१ पं. ३ दिखाना है (दिखाने हैं)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पृ. ५६ योऽधीति (योऽधीती) ऐसी अशुद्धि तीन जगह हुई है।

पृ. ७८ पं. २ 'निर्भयता प्राप्त करना लिखा है' यहाँ लिखागया है चाहिये।

पृ. १०० पं. ९ पड़ा (पड़े) प. १० खड़ा (खड़े) इसी प्रकारकी कुछ कुछ अशुद्धि रहगयी है। मैंने चाहा था कि एक अशुद्धिपत्र लगादें, किन्तु पीछे देखा कि मासिकपत्रोंमें अशुद्धिपत्र लगाना ज़रा बुरा मालूम पड़ता है और पाठक भी उससे मिलाकर पढ़नेकी कृपा शायद ही करते हैं, अतः पाठकोंको इसके लिये सूचित कर देना ही मैंने बस समझा।

* * * *

इन दोनों किरणोंमें दस चित्र हैं। जिन चित्रोंका जहां जहां उल्लेख है, वहां वहां उन्हें संयोजित करदिया गया है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रीजैनसिद्धान्त-भास्करके नियम।

(१) यह पत्र तीन तीन महीनेपर प्रकाशित हुआ करेगा।

(२) सर्वसाधारणके लिये डाक व्यय-सहित इसका वार्षिक मूल्य ३) रुपया है, किन्तु राजा महाराजाओंके सम्मानार्थ १००) रु. रहेगा। प्रति किरणका मूल्य १) रु. है। बिना अग्रिम मूल्यके यह पत्र नहीं भेजा जा सकता। इसकी पुरानी प्रतियां देनेके लिये "भवन" बाध्य नहीं होगा। यदि पुरानी प्रति मिलेगी भी तो उसका मूल्य कुछ विशेष लिया जायगा।

(३) यदि किसीको पता बदलवाना हो तो वे सम्पादक-कार्य्यालय कलकत्तेसे पत्र व्यवहार कर ठीक कर लेवें।

(४) यदि नियमित तिथिपर पाठकोंके यहां "भास्कर" नहीं पहुंचे तो वे हमें सूचना दें। हम डाकखानेमें इसकी पूरी खोज करके ठीक कर देगें।

(५) लेख, समालोचनाके लिये पुस्तक, बदलेके पत्र, मूल्य और प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र सम्पादक "श्रीजैन-सिद्धान्त-भास्कर" नं. ९ जगमोहन मल्लिक ष्ट्रीट कलकत्तेके पतेसे आना चाहिये। किन्तु "भवन" के सहायतार्थ द्रव्य, शास्त्र और पुरातत्व-सम्बन्धी शिलालेखादि मन्त्री "श्रीजैन-सिद्धान्त-भवन आरा" के पतेसे भेजना चाहिये।

(६) किसी ऐतिहासिक अथवा सैद्धान्तिक लेख प्रकाशित करने वा न करने तथा लौटाने वा नहीं लौटानेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। यदि कोई लेख सम्पादक लौटाना चाहें तो उनका डाकव्यय और रजिष्ट्रीका खर्च लेखकको देना पड़ेगा। अन्यथा नहीं लौटाया जासकता।

(७) अधूरे लेख नहीं छापे जायंगे। स्थानके अनुसार लेख एक वा अधिक किरणोंमें भी प्रकाशित होते रहेंगे।

(८) इस पत्रमें ऐतिहासिक अथवा सैद्धान्तिक लेखोंके सिवा राजनैतिक आदि विषयोंकी चर्चा तक भी नहीं की जायगी।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चित्रसूची ।

(१) चन्द्रगिरि पर्वतपरका शिलालेख नं. २

(२) सिंगरी गौड़ाके खेतका शिलालेख नं. ६

(३) सिंगरी गौड़ाके खेतका शिलालेख नं. ७

(४) चन्द्रगिरि (पर्वत)

(५) पूर्वभागकी चंद्रगुप्तवस्ती

(६) उत्तर भागकी चन्द्रगुप्तवस्ती

(७) दीवारपर नक्काशी कीहुई और खोदित मूर्तिवाली चामुण्डराय वस्ती लम्बाई.

(८) दक्षिण भागकी चामुण्डरायवस्ती.

(९) श्री १००८ बाहुबली स्वामीके चरणके समीपवाला चामुण्डरायका शि लेख.

(१०) चामुण्डरायके शिलालेखसहित श्री १००८ बाहुबली स्वामीके चर धारका पहाड़.

इस ऐतिहासिक पत्रको " इंदुप्रकाश प्रेस " में दामोदर सांवळाराम यंदेने प्रकाश सेठ पदमराज रानीवाले कलकत्तेवालेके लिये मुद्रित किया ।

Ac. Gunratnasuri MS

Jin Gun Aradhak Trust